फ्रान्स का इतिहास

डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी

फ्राँस का इतिहास

फ्राँस का इतिहास

डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रकाशक :
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद-211 001

प्रथम संस्करण : 1999

मूल्य : 80/-

आवरण :

मुद्रक :
वीणा प्रिन्टिग प्रेस
92, दिलकुशा पार्क, नया कटरा
इलाहाबाद-211 002

प्रकाशकीय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने भारतीय इतिहास से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन किया है। आज जबकि विश्व सिमटता जा रहा है और अन्यान्य देशों से भारत और भारतीय बुद्धिजीवियों का संपर्क बढ़ता जा रहा है, विश्व के प्रमुख देशों के इतिहास से अपने देश की भावी पीढ़ी को परिचित कराना परमावश्यक हो गया है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने 1974 में 'लघु प्रकाशन योजना' के अन्तर्गत 'इंग्लैण्ड की शासन प्रणाली' पुस्तक का प्रकाशन किया था। इस पुस्तक को राजनीति शास्त्र के अध्येताओं ने सराहा था। उसी क्रम में "फ्रान्स का इतिहास" पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के मध्यकालीन इतिहास विभाग के विद्वान रीडर डा० हेरम्ब चतुर्वेदी ने जब "फ्रान्स का इतिहास" के प्रकाशन का प्रस्ताव किया, तो इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया गया; क्योंकि फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रभाव सारे विश्व पर पड़ा था। फ्रान्स की समृद्ध, कला, साहित्य और संस्कृति की भी किंचित झलक इस पुस्तक में प्रस्तुत करके चतुर्वेदी जी ने इसे और भी उपयोगी बनाने का प्रयास किया है। इसके प्रकाशन के लिए उन्हें "हिन्दी वाङ्मय निधि" से जो पांच सहस्र रुपये की राशि प्राप्त हुई थी, उसे उन्होंने एकेडेमी को प्रदान करने की कृपा की है। इसके लिए एकेडेमी उसके प्रति आधार ज्ञापित करती है।

विश्वास है, यह पुस्तक अध्ययन - अध्यापन में रत पाठकों को परितुष्टि प्रदान करेगी।

15 अगस्त, 1999

महेन्द्र प्रताप
सचिव

विषय-सूची

प्रस्तावना

शायद हमें इतिहास-प्रेम भी 'जेनेटिक' विरासत के रूप में प्राप्त हुआ है। हमारे पितामह स्वर्गीय न्यायमूर्ति बृजकिशोर चतुर्वेदी बार-एट-लॉ (म. प्र. उच्च न्यायालय), पिता स्वर्गीय शरद चन्द्र चतुर्वेदी एवं चाचा श्री भरतचंद्र चतुर्वेदी, आई. ए. एस (सेवा निवृत्त) तीनों ने ही विश्वविद्यालय स्तर पर इतिहास विषय का अध्ययन किया था। पितामह तो शोध के लिए (रिलेशन्स ऑफ नवाब-वज़ीर्स ऑफ़् अवध विद द ईस्ट इण्डिया कम्पनी) विलायत तक गए, किंतु, ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रचलित, प्रेरित एवं आश्रय-प्राप्त 'साम्राज्यवादी (इम्पीरियल) स्कूल ऑफ हिस्ट्री' के मानकों के प्रतिकूल होने के कारण, वह थीसिस अटक ही गई। इसी प्रकार, पूज्य पिताजी ने भी व्यवसायिक प्रतिष्ठानों की नौकरी से पूर्व, माधव कालेज, उज्जैन में इतिहास के प्रवक्ता के रूप में अध्यापन किया था, अत: हमारा इतिहास विषय का अध्ययन-अध्यापन और उसपर लेखन भी ऐतिहासिक अपरिहार्यता प्रतीत होती है।

'फ्रँास का इतिहास' तो शायद उऋण होने का एक माध्यम साबित हो। मानव-समाज को फ्राँसीसी समाज का अवदान बहुत तो है ही, बहुत महत्वपूर्ण भी है। उसी वृहद् मानव-समाज के एक प्रतिनीधि के रूप में सम्भवत: उसका ऋण चुक जाए। हिन्दी-प्रदेश के वासी होने के नाते, अपनी मातृ-भाषा के भी ऋण के बोझ को शायद कुछ कम कर सकूँ।

लेकिन, इस पुस्तक का विषय, विचार तथा प्रेरणा हिन्दी आन्दोलन के अग्रणी नेता व विचारक, स्वर्गीय पंडित श्रीनारायण जी चतुर्वेदी से मिली थी। वे 'हिन्दी वांङ्मय निधि' के अन्तर्गत हिन्दी के पाठकों के लिए, प्रत्येक राष्ट्र के वस्तुपरक इतिहास पर पुस्तक लिखवाकर एक पूरी श्रंखला विश्व के प्रमुख राष्ट्रों के इतिहास की-तैयार करना चाहते थे। फ्रँास के इतिहास - लेखन का दायित्व हमको सौंपा गया। उनके मृत्योपरान्त दो वर्षों तक पाण्डुलिपि ऐसी ही पड़ी रही - प्रकाशन के सारे प्रयास निष्फल ही रहे। अब शायद इसके प्रकाशन से अपने परिवार

के एक बुज़ुर्ग से किए गए वादे की पूर्ति एवं उनके प्रति श्रद्धान्जलि भी सही अर्थों में अर्पित हो जाएगी।

हमारी स्कूली शिक्षा एक कौन्वेन्ट स्कूल (संत जोज़फ इलाहाबाद) में हुई थी। किन्तु, उसके साथ ही, "एलिमेन्ट्री" हिन्दी पढ़ने वाले हम, यदि हिन्दी भाषा में दक्ष हो सके तो उसके लिए हम अपने नाना, स्वर्गीय रायबहादुर हुकुमचंद्र चतुर्वेदी के ही ऋणी हैं। उनकी तथा नानी की स्नेहछाया में ही हमारा बचपन व अध्यापन-काल बीता। अत: हिन्दी के सशक्त संस्कारों के लिए इन दोनों का ही ऋणी हूँ - शायद अब उऋण हो सकूँ !

इस पुस्तक के लेखन-क्रम में पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति में जो भी कमी हुई, उसके लिए अपने परिजनो से क्षमा-प्रार्थी हूँ-विशेषकर, परिवार के चार छोटे बच्चों से, जिन्हें समय नहीं दे पाया !

किन्तु यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी इसका श्रेय श्रद्धेय प्रोफेसर शैलनाथ जी चतुर्वेदी को जाता है, जिन्होंने हिन्दी वांङ्मय निधि के अध्यक्ष के नाते हमें आर्थिक सहायता प्रदान कर, यह कार्य सुलभ बनाया। श्री हरिमोहन जी मालवीय, अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद ने सहायता के आधार पर हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी जैसी गरिमामयी संस्था से इसे प्रकाशित करके, सामान्य पाठक, लेखक व हिन्दी जगत पर बड़ा उपकार किया है।

□

डॉ० हेरम्ब चतुर्वेदी

आमुख

सम्भवतः इतिहास और हिन्दी-दोनों से ही हमने जो पाया व निरन्तर प्राप्त कर रहे हैं, उससे भी अऋण हो सकें। यह पुस्तक इतिहास एवं हिन्दी प्रेमियों को सादर समर्पित है !

हमें प्रसन्नता है कि हिन्दी वाङ्मय निधि के सहयोग से प्रकाशित 'फ्रांस का इतिहास' हिन्दी के सुधी पाठकों के हाथों में पहुँच रहा है। इसके पूर्व निधि के सहयोग से 'तमिल साहित्य का इतिहास', 'सल्तनतकालीन प्रमुख इतिहासकार', 'देश के अभिधान' तथा 'पाँचवीं-सातवीं सताब्दियों का भारत' शीर्षक पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं।

हिन्दी वाङ्मय निधि की अवस्थापना हिन्दी के अनन्य सेवक पद्मभूषण पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी की पीड़ा का प्रतिफल है। उन्हीं के शब्दों में "हिन्दी भाषी जनता को ऐसे विषयों पर पुस्तकें नहीं मिल पातीं जिनसे उसे कूपमण्डूकता से निकाला जा सके और भारत का उपयोग तथा कर्त्तव्यपरायण नागरिक बनाया जा सके। मैं अफसोस करके रह जाता हूँ कि अनेक मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक पुस्तकें जो अंग्रेजी में उपलब्ध हैं, हमारे हिन्दी पाठकों को पढ़ने को नहीं मिल सकतीं।

यह स्थिति मेरे चित्त में इतनी अशान्ति उत्पन्न कर रही है कि मैं कुछ करने के लिये बाध्य हो गया हूँ। इस विषय पर व्यावहारिक दृष्टि से कई वर्षों से विचारता रहा और अन्त में मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि मुझे कुछ करना ही चाहिए चाहे वह कितना ही कम क्यों न हो। ऐसी पुस्तकें सामान्य पाठक को सुलभ कराने के प्रयोजन से मैंने पचीस हजार रुपए जमाकर 'हिन्दी वाङ्मय निधि' के नाम से एक निधि बनाने का निश्चय किया।" स्वर्गीय चतुर्वेदी की इच्छा के अनुरूप निधि उस दिशा में सतत प्रयत्नशील है।

फ्रांस योरोप ही नहीं विश्व के महत्त्वपूर्ण देशों में से एक है। योरोप के पश्चिमी भाग में एटलाण्टिक महासागर के तट पर अवस्थित फ्रांस योरोप का तीसरा सबसे बड़ा देश है। उसके पश्चिम में इंग्लिश चैनल के पार इंग्लैंड है और तीन ओर वह बेल्जियम, लग्ज़ेमबर्ग, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, इटली और स्पेन

की सीमाओं से लगा हुआ है। परिणामतः उसकी भूमि विभिन्न जातियों का संगमस्थल बनी। इनमें एक फ्रेंक जाति थी जिसके आधार पर इस भू-भाग का नाम फ्रांस पड़ा।

योरोप में प्रागैतिहासिक युग से लेकर आधुनिक युग तक मनुष्य के विकास में जो भी स्थितियाँ आयीं, फ्रांस का इतिहास उन सबका साक्षी है। राजतंत्र-सामन्तवाद से लोकतंत्र में परिवर्तन की प्रक्रिया के स्वरूप का निदर्शन भी फ्रांस के इतिहास में होता है। अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तार्द्ध में योरोप का सांस्कृतिक नेतृत्व फ्रांस कर रहा था। फ्रेंच यूरोप के अभिजात्य वर्ग की भाषा बन गयी थी। कला के क्षेत्र में भी फ्रांस शीर्षस्थ था। फ्रांस का वास्तु योरोप के अन्य देशों का आदर्श बन गया। 1789 की महान् क्रांति ने क्रांति ने स्वतंत्रता, भातृत्व और समानता का सन्देश सारे विश्व को दिया। अपनी दीर्घकालीन इतिहास-यात्रा के अनन्तर फ्रांस का विशिष्ट व्यक्तित्व उभरा जिसने योरोप ही नहीं दूरस्थ देशों को भी प्रभावित किया।

हिन्दी वाङ्मय निधि के अनुरोध पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में उपाचार्य डा० हेरम्ब चतुर्वेदी ने विश्व के एक महत्त्वपूर्ण देश फ्रांस का इतिहास लिखने की कृपा की है। हमें विश्वास है कि सरल भाषा एवं सुबोध शैली में प्रस्तुत यह पुस्तक सुबुद्ध हिन्दी पाठकों को रुचिकर लगेगी। उनके प्रोत्साहन से हिन्दी वाङ्मय निधि को बल मिलेगा और वह स्व० चतुर्वेदी जी द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुसरण करती रहेगी।

□

शैलेन्द्र नाथ कपूर
प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं
पुरातत्त्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय
सचिव
हिन्दी वाङ्मय निधि

53, खुर्शेदबाग
लखनऊ

भूमिका

इतिहास पढ़ते-पढ़ाते ढ़ाई दशक से अधिक बीत जाने के बाद, हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, कि, वस्तुत:, मानव के विकास का क्रमबद्ध अध्ययन ही इतिहास है। अत: इतिहास में व्यक्तियों का इतना महत्व नहीं है - और, यदि, है भी, तो मात्र उनका, जो अपने युग की प्रवृत्तियों को आत्मसात करने में सक्षम और सफल होते हैं - तब वे लोग किसी विशेष काल व क्षेत्र-खंड को प्रतिबिम्बित करने या उसका प्रतिनिधित्व करने के परिणामस्वरूप, उस खंड के महत्वपूर्ण प्रतीक हो जाते हैं ! इस प्रकार, इतिहास, मूलत: मानव-सभ्यता का अध्ययन ही है। उत्पत्ति से लेकर, वर्तमान तक के मानव के संपूर्ण विकास का वृहद् अध्ययन एक ही स्थान पर संकलित कर के, प्रस्तुत करना सम्भव नहीं हो पाता है, अत: इस अध्ययन की सुलभता के लिए इतिहासकार, या तो कोई भू-खंड अथवा क्षेत्रीय अथवा भू-राजनीतिक इकाई का चयन कर लेता है, ताकि, उसके विश्लेषणात्मक अध्ययन के माध्यम से वह मानव-विकास को निरूपित कर सके कभी-कभी, वह इस भू-खंड के अध्ययन हेतु भी मात्र एक निश्चित काल-खंड का चयन करता है, ताकि, उसकाल में-अर्थात् मानव-विकास के उक्त चरण में क्या उपलब्ध हो पाया है-इसके अध्ययन के द्वारा उस देश या क्षेत्र का सूक्ष्म या 'माइक्रो' अध्ययन कर सके। इस 'माइक्रो' अध्ययन के माध्यम से मानव के सर्वांगींण विकास का क्रम-बद्ध अध्ययन सुलभ व सम्भव हो पाता है।

हमने भी उपरोक्त के आधार पर, एक क्षेत्र या देश-विशेष का चयन किया है, ताकि, उसके माध्यम से, मानव-विकास के वस्तुपरक अध्ययन पर पर्याप्त प्रकाश डाल सकें। फ्रँास का चुनाव भी बहुत ही सहज था। पाश्चात्य विश्व के अध्ययन-क्रम में फ्राँस, स्वाभाविक रूप से, मानव-मन को आकर्षित करता है। जो राष्ट्र, जहाँ की भाषा एवं संस्कृति, शताब्दियों तक पाश्चात्य विश्व को संपूर्णता में, प्रभावित करती रही हो, उसके अध्ययन की उत्कंठा कोई आश्चर्य नहीं है ! उत्सुकता का दूसरा आधार या बिंदु है-फ्रँसीसी क्रान्ति (1789 ई०)। यदि, दसरे यूरोपीय देशों के साथ फ्रँास का तुलनात्मक अध्ययन करें, तो स्पष्टत:

प्रमाणित हो जाएगा, कि, उन देशों की स्थितियाँ यदि, फ्राँस से बदतर नहीं त बेहतर भी नहीं थी- कमोबेश वैसी ही हालत पूरे यूरोप की थी। किंतु, क्राँति का सूत्रपात फ्राँस में ही संभव था-तो उसका कारण फ्राँस की जन-मानस की चेतना थी। फ्राँसीसी जनता की चेतना, वास्तव में, फ्राँसीसी सांस्कृतिक परिवेश का परिचायक और प्रतीक थी ! यदि, साम्राज्ञी मेरी एन्तोनियत, क्राँति पूर्व, पुरातन राज-वैभव, राज-समृद्धि एवं राज-संस्कृति की प्रतीक थीं, तो, सम्राट लुई षोडश (xvi) निरंकुशता का चरित-नायक था और, ऐबे सिये जैसे व्यक्तित्व उसी प्रबुद्ध चेतना के प्रतीक थे, जिनके परिणामस्वरूप, फ्राँस में 'क्राँतिकारी परिस्थितियों' का निर्माण, स्वभावतः सम्भव हो सका, जिसके चलते, 1789 ई० में फ्राँस में क्राँति हो गई ! यही नहीं, 1789 ई० की इस फ्राँसीसी क्राँति ने स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के सिद्धान्तों को आधुनिक विश्व के मूल-मंत्र के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इन सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार-सिर्फ यूरोप में ही नहीं और वह भी मात्र अठारहवीं-तथा उन्नीसवीं शताब्दियों के ही यूरोप में ही नहीं हुआ, अपितु, बीसवीं शताब्दी के एशिया एवं अफ्रीका महाद्वीपों के देशों के स्वतंत्रता-आन्दोलनों में भी, उसकी प्रतिध्वनियाँ गूँजी थीं !1789 ई० के पश्चात, विश्व के किसी भी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक आंदोलन में शायद ही उक्त फ्रँसीसी क्राँति की झलक न दिखी हो - इस दृष्टिकोण से, यदि वे फ्राँसीसी क्राँति की पुनरावृत्ति नहीं लगीं हों, तो भी उक्त क्राँति की प्रतिध्वनियाँ अपने में समायोजित किए हुए अवश्य थीं ! यही नहीं, जब-जब भी किसी निरंकुश सत्ता का पतन हुआ है-तो चाहें एशिया हो या अफ्रीका या दक्षिण अमरीका और या तो भारत का ही कोई प्रदेश या प्रान्त हो, न जाने कैसे ढ़ेरों मेरी एन्तोनियत भी मिली हैं - तब क्यों न फ्राँसीसी संस्कृति इतिहास के सामान्य छात्रों एवं पाठकों को आकर्षित करे ?

अतः ऐसे समृद्ध सुसंस्कृत एवं प्रभावशाली फ्रॅास का तथा वहाँ की विश्व-व्यापी विरासत का विकास कैसे हुआ-यह भी सहज रूप से इतिहास के विद्यार्थियों के लिए-जिज्ञासा का विषय बन जाता है। आखिर कौन से अतीत से, या, किस पृष्ठ-भूमि से, इस फ्राँस की उत्पत्ति एवं विकास हुआ-यह जानने की बेचैनी भी होनी स्वाभाविक ही है और यह बेचैनी तब और भी अधिक बढ़ जाती है, जब फ्राँस का प्रारम्भिक व प्राचीन इतिहास, तथ्य और मिथ्या के मध्य कहीं धुँधलके में घुल-मिल जाता है। तब पुरातात्विक अवशेषों, जनश्रुतियों एवं लोक-साहित्य के माध्यम से उसकी पुनर्रचना करना सम्भव हो पाता है। शायद, फ्राँस

प्रमाणित हो जाएगा, कि, उन देशों की स्थितियाँ यदि, फ्रँास से बदतर नहीं तो बेहतर भी नहीं थी- कमोबेश वैसी ही हालत पूरे यूरोप की थी। किंतु, क्राँति का सूत्रपात फ्राँस में ही संभव था-तो उसका कारण फ्रँास की जन-मानस की चेतना थी। फ्रँासीसी जनता की चेतना, वास्तव में, फ्रँासीसी सांस्कृतिक पारिवेश का परिचायक और प्रतीक थी ! यदि, साम्राज्ञी मेरी एन्तोनियत, क्राँति पूर्व, पुरातन राज-वैभव, राज-समृद्धि एवं राज-संस्कृति की प्रतीक थीं, तो, सम्राट लुई षोडश (xvi) निरंकुशता का चरित-नायक था और, ऐबे सियें जैसे व्यक्तित्व उसी प्रबुद्ध चेतना के प्रतीक थे, जिनके परिणामस्वरूप, फ्रँास में 'क्राँतिकारी परिस्थितियों' का निर्माण, स्वभावतः सम्भव हो सका, जिसके चलते, 1789 ई० में फ्रँास में क्राँति हो गई ! यही नहीं, 1789 ई० की इस फ्राँसीसी क्राँति ने स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के सिद्धान्तों को आधुनिक विश्व के मूल-मंत्र के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इन सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार-सिर्फ यूरोप में ही नहीं और वह भी मात्र अठारहवीं-तथा उन्नीसवीं शताब्दियों के ही यूरोप में ही नहीं हुआ, अपितु, बीसवीं शताब्दी के एशिया एवं अफ्रीका महाद्वीपों के देशों के स्वतंत्रता-आन्दोलनों में भी, उसकी प्रतिध्वनियाँ गूँजी थीं !1789 ई० के पश्चात, विश्व के किसी भी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक आंदोलन में शायद ही उक्त फ्रँसीसी क्राँति की झलक न दिखी हो - इस दृष्टिकोण से, यदि वे फ्रँासीसी क्राँति की पुनरावृत्ति नहीं लगीं हों, तो भी उक्त क्राँति की प्रतिध्वनियाँ अपने में समायोजित किए हुए अवश्य थीं ! यही नहीं, जब-जब भी किसी निरंकुश सत्ता का पतन हुआ है-तो चाहें एशिया हो या अफ्रीका या दक्षिण अमरीका और या तो भारत का ही कोई प्रदेश या प्रान्त हो, न जाने कैसे ढ़ेरों मेरी एन्तोनियत भी मिली हैं - तब क्यों न फ्रँासीसी संस्कृति इतिहास के सामान्य छात्रों एवं पाठकों को आकर्षित करे ?

अतः ऐसे समृद्ध सुसंस्कृत एवं प्रभावशाली फ्रँास का तथा वहाँ की विश्व-व्यापी विरासत का विकास कैसे हुआ-यह भी सहज रूप से इतिहास के विद्यार्थियों के लिए-जिज्ञासा का विषय बन जाता है। आखिर कौन से अतीत से, या, किस पृष्ठ-भूमि से, इस फ्रँास की उत्पत्ति एवं विकास हुआ-यह जानने की बेचैनी भी होनी स्वाभाविक ही है और यह बेचैनी तब और भी अधिक बढ़ जाती है, जब फ्रँास का प्रारम्भिक व प्राचीन इतिहास, तथ्य और मिथ्या के मध्य कहीं धुँधलके में घुल-मिल जाता है। तब पुरातात्विक अवशेषों, जनश्रुतियों एवं लोक-साहित्य के माध्यम से उसकी पुनर्रचना करना सम्भव हो पाता है। शायद, फ्रँास

प्रमाणित हो जाएगा, कि, उन देशों की स्थितियाँ यदि, फ्रँास से बदतर नहीं तो बेहतर भी नहीं थी- कमोबेश वैसी ही हालत पूरे यूरोप की थी। किंतु, क्राँति का सूत्रपात फ्राँस में ही संभव था-तो उसका कारण फ्रँास की जन-मानस की चेतना थी। फ्रँासीसी जनता की चेतना, वास्तव में, फ्रँासीसी सांस्कृतिक परिवेश का परिचायक और प्रतीक थी ! यदि, साम्राज्ञी मेरी एन्तोनियत, क्राँति पूर्व, पुरातन राज-वैभव,, राज-समृद्धि एवं राज-संस्कृति की प्रतीक थीं, तो, सम्राट लुई षोडश (xvi) निरंकुशता का चरित-नायक था और, ऐबे सिये जैसे व्यक्तित्व उसी प्रबुद्ध चेतना के प्रतीक थे, जिनके परिणामस्वरूप, फ्रँास में 'क्राँतिकारी परिस्थितियों' का निर्माण, स्वभावतः सम्भव हो सका, जिसके चलते, 1789 ई० में फ्रँास में क्राँति हो गई ! यही नहीं, 1789 ई० की इस फ्राँसीसी क्राँति ने स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के सिद्धान्तों को आधुनिक विश्व के मूल-मंत्र के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इन सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार-सिर्फ यूरोप में ही नहीं और वह भी मात्र अठारहवीं-तथा उन्नीसवीं शताब्दियों के ही यूरोप में ही नहीं हुआ, अपितु, बीसवीं शताब्दी के एशिया एवं अफ्रीका महाद्वीपों के देशों के स्वतंत्रता-आन्दोलनों में भी, उसकी प्रतिध्वनियाँ गूँजी थीं !1789 ई० के पश्चात, विश्व के किसी भी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक आंदोलन में शायद ही उक्त फ्रँसीसी क्राँति की झलक न दिखी हो - इस दृष्टिकोण से, यदि वे फ्रँासीसी क्राँति की पुनरावृत्ति नहीं लगीं हों, तो भी उक्त क्राँति की प्रतिध्वनियाँ अपने में समायोजित किए हुए अवश्य थीं ! यही नहीं, जब-जब भी किसी निरंकुश सत्ता का पतन हुआ है-तो चाहें एशिया हो या अफ्रीका या दक्षिण अमरीका और या तो भारत का ही कोई प्रदेश या प्रान्त हो, न जाने कैसे ढ़ेरों मेरी एन्तोनियत भी मिली हैं - तब क्यों न फ्रँासीसी संस्कृति इतिहास के सामान्य छात्रों एवं पाठकों को आकर्षित करे ?

अतः ऐसे समृद्ध सुसंस्कृत एवं प्रभावशाली फ्रॅास का तथा वहाँ की विश्व-व्यापी विरासत का विकास कैसे हुआ-यह भी सहज रूप से इतिहास के विद्यार्थियों के लिए-जिज्ञासा का विषय बन जाता है। आखिर कौन से अतीत से, या, किस पृष्ठ-भूमि से, इस फ्रँास की उत्पत्ति एवं विकास हुआ-यह जानने की बेचैनी भी होनी स्वाभाविक ही है और यह बेचैनी तब और भी अधिक बढ़ जाती है, जब फ्रँास का प्रारम्भिक व प्राचीन इतिहास, तथ्य और मिथ्या के मध्य कहीं धुँधलके में घुल-मिल जाता है। तब पुरातात्विक अवशेषों, जनश्रुतियों एवं लोक-साहित्य के माध्यम से उसकी पुनर्रचना करना सम्भव हो पाता है। शायद, फ्रँास

का यह इतिहास मानव-सभ्यता के विकास-क्रम को समझने में एक सहायक भूमिका अदा करे और हम इस प्रकार ऐतिहासिक नैरन्तर्य को भी सहजता से समझ सकेंगे।

यूँ तो समय के विकास-क्रम की भाँति ही, इतिहास-लेखन का क्रम भी अबाध रूप से चलता ही रहता है, किन्तु समय की माँग एवं विषय की विशेषताओं के चलते, इसकी परिभाषा, विषय-वस्तु, आधार एवं अवधारणा में परिवर्तन स्पष्टत: दृष्टिगोचर होता है। इतिहास की पहचान इतिहासकार की वस्तुपरकता पर निर्भर रहती है-यदि वह किसी युग, संस्था, व्यक्ति, व्यक्तित्व, विचार, प्रवृत्ति या प्रवाह का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर रहा है, तो उसे प्रयास करना चाहिए, कि, वह उस युग का साक्षात्कार पाठकों से प्रत्यक्ष करा दे। कहीं पर भी पूर्वग्रहों को या अपनी अवधारणा को उस युग-विशेष पर (जिसका अध्ययन कर रहा हो) आरोपित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। अपितु, दूसरी ओर, एक सार्थक प्रयास यह होना चाहिए, कि, अन्य इतिहासकारों (पूर्ववर्ती या समकालीन) के पूर्वाग्रहों एवं अवधारणाओं को भी छानकर-अलग करके, एक वास्तविक, वस्तुपरक, वैज्ञानिक और व्यवस्थित चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सके। और ऐसा चित्र सफलतापूर्वक तैयार करने के लिए आवश्यक होता है, कि, पूर्ववर्ती तमाम इतिहासकारों के पूरे परिवेश को समझकर ऐतिहासिक तथ्यों को, उसी प्रकार पूर्वाग्रहों आदि से मुक्त कर दे, जैसे कि कोई सुघड़ माली-दाने-तिनके, झाड़-झंकार निकालकर एक सुव्यवस्थित फुलवारी तैयार करता है। ठीक उसी प्रकार के दायित्व का निर्वहन एक इतिहासकार को भी करना पड़ता है।

किसी भी बड़े इतिहास-कैनवास को एक विस्तृत पटल पर 'पेंट' या चित्रित करने के उपरान्त, यदि, उसे कैमरे के माध्यम से पासपोर्ट-आकार की फोटो बनाने का प्रयास किया जाए, तब थोड़ी-बहुत कमी रह जाना स्वाभाविक ही है-यह कमी दो विभिन्न तकनीकों के बीच के साम्य के अभाव के कारण अपरिहार्य होती है। फ्राँस के इतिहास को दूरबीन से देखकर प्रस्तुत किया है, अत: सूक्ष्म या माइक्रो-अध्ययन पूर्णत: सम्भव नहीं हो सका है, फिर भी, 'माइक्रो' और 'मैक्रो' की संपृक्त तकनीकों का प्रयोग यथासम्भव किया गया है। इतिहास-अध्ययन लेखन या बिल्कुल उन अंधे व्यक्तियों द्वारा हाथी के वर्णन की भाँति ही है और उससे कहीं अधिक भी है। उसे जितना स्पर्श या ऐन्द्रिय ज्ञान से समझ आए और जैसा अनुभव हो-वह दृष्टि-विहीन व्यक्ति उस हाथी को वैसा ही वर्णित कर दे-अपनी ओर से बिना कुछ जोड़कर या घटाकर। यह कार्य समकालीन

इतिहासकार का है। कई दशकों या शताब्दियों बाद, यदि कोई उस विशेष काल-खंड अथवा क्षेत्र या देश के इतिहास की पुनर्रचना करता है, तो उन चारों-पाँचों दृष्टि-हीन व्यक्तियों द्वारा किए गए हाथी के वर्णन को समायोजित करके, संपूर्णता में, इतिहास-चित्र प्रस्तुत कर दे-तभी वह वस्तुपरकता और वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरा उतरकर, इतिहासकार के दायित्व का निर्वहन सफलतापूर्वक कर सकेगा। शायद इन्हीं मानकों को ध्यान में रखकर लिखा गया, फ्राँस का इतिहास, सुधी पाठकों को रूचिकर भी लगे और इतिहासकार की पैनी निगांहों को अखरे भी न ! यदि दोनों कसौटियों पर यह कार्य (पुस्तक-रूप में) खरा उतरेगा, तो लेखक की मेहनत और प्रयास सार्थक होगा !

□

[1]

फ्राँस का प्रारम्भिक इतिहास

फ्राँस की भूमि पर मनुष्य के प्रथम प्रमाण, अंतर हिमानी युग-तुलनात्मक-रूप से गर्म वाले काल के प्राप्त होते हैं। पुरातत्व में प्राप्त उनके अवशेषों, विशेष तौर पर प्राकृतिक जन-जीवन के अवशेषों के द्वारा यही ज्ञात हुआ है। सिएन (Seine), मार्न् (Marne), Yonne (योन), ओई (Oise), तथा सोम्म (Somme) नदियों के कछारों में उत्खनन द्वारा प्राप्त किए गए उपकरणों ने फ्रँास के प्रागैतिहासिक काल पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। गुफ़ाओं में अंकित चित्रों से विशेषतया, बारहसिंगों, घोड़ों व बैलों के जो चित्र विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त हुए हैं वे इसकी पुष्टि करते हैं।

इसके पश्चात् का युग पत्थरों को बारीक कारीगरी द्वारा उपकरण बनाने का युग है - जब मनुष्य अधिक साधन-सम्पन्न, अधिक कर्मशील व अधिक शक्ति-शाली था। इसी काल में कृषि विकसित हुई; कपड़ों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ; भवन-निर्माण व मिट्टी के बर्तन का निर्माण भी शुरू हुआ था। लौह से परिचित तो मनुष्य काफी समय से था - इस युग में वह कांस्य निर्मित करने की कला भी सीख गया - ताँबे में रांगा के मिश्रण से कांस्य के उत्पादन ने उपकरण - निर्माण की प्रक्रिया को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया तथा मनुष्य की क्रियाशीलता में भी अभूतपूर्व वृद्धि कर दी ! ताँबा तो इस पूर्ण क्षेत्र में ही प्राप्त होता था, किंतु, रांगा सुदूर क्षेत्रों में (ब्रिटिश आईल्स में कौर्नवाल नामक स्थान पर), ही प्राप्त होता था - इस प्रकार से, व्यापार-मार्गों की नींव भी इसी काल में पड़ गई थी !

इतिहास के संधिकाल में, विशाल व घने जंगल इस पूरे क्षेत्र में व्याप्त हो गए तथा आदि मानव ने जंगल के विरूद्ध भी संघर्ष इस काल में शुरू कर दिया। जंगलों से कृषि योग्य भूमि का उद्धार करने की प्रक्रिया व भू-उद्धार के विकास के प्रमाण हमें प्रर्याप्त रूप से प्राप्त हुए हैं।

ईसा सन् से अनेक शताब्दियों पूर्व का वर्णन करने वाले इतिहासवेत्ताओं के मतानुसार यूरोपीय महाद्वीप के पश्चिमी छोर पर एक सु-परिभाषित क्षेत्र था, समुद्र व पर्वत-श्रंखलाओं के विभाजनों से स्पष्ट सीमाओं के साथ एक निश्चित भौगोलिक इकाई की पहचान सुगम थी। इस भौगोलिक इकाई-जो बाद में फ्राँस के नाम से प्रसिद्ध हुई थी – के दक्षिण में भूमध्यसागर व पायरनीस पर्वत श्रृंखला; पश्चिम में – अटलांटिक महासागर; तथा, पूर्व में ऐल्प्स पर्वत-श्रृंखला – सीमाओं का निर्धारण करती थी। इस प्रकार से तीन दिशाओं में निश्चित प्राकृतिक सीमाओं वाले क्षेत्र को ईसवी की प्रथम सदी तक सम्राट जूलियस सीज़र की प्रतीक्षा करनी पड़ी, जिसने फ्राँस को चौथी प्राकृतिक सीमा-राईह्न क्षेत्र के रूप में प्रदान कर दी !

एक लम्बे समय तक इस सुपरिभाषित सीमाओं वाले क्षेत्र का कोई नाम नहीं था। ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी से गौलिया (Gallia) अथवा गौल (Gaul) के सम्बोधन का प्रयोग इस क्षेत्र के लिए किया जाने लगा ! गौल की सुपरिभाषित प्राकृतिक सीमाएँ अभेद्य नहीं थीं – पायरनीस व ऐल्प्स दोनों ही पर्वत श्रृंखलाएँ अपने दर्रों के लिए प्रसिद्ध थीं और राइह्न, जिसे कि सुलभता से पार किया जा सकता था – उसके द्वारा भी इस भौगोलिक क्षेत्र की घाटी में उत्तर व मध्य युरोप से, जनजातियों के रूप में लोगों का आगमन शुरू हो गया ! सु-परिभाषित व स्पष्ट सीमाओं के साथ – साथ, सभी ओर से जुड़ा हुआ गौल सौभाग्यशाली था, किंतु, ये ही भौगोलिक तत्व उसके दुर्भाग्य के लिए भी उत्तरदायी साबित हुए – सदैव आक्रमणकारियों को लालायित करता-सबका ध्यानाकर्षण का केंद्र बना रहा ! अतः अनेक शताब्दियों तक, गौल, अनेक जनजातियों के क्रमिक आक्रमणों का क्रीड़ा-स्थल रहा है तथा, इसी कारण से, इन जनजातियों का विशाल मिश्रण-स्थल भी रहा है !

छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में इस सुपरिभाषित क्षेत्र वाले देश (यदि आप ऐसे सम्बोधन की अनुमति दें तो) में जो जनजातियाँ मौजूद थीं उन्हें लिग्यूर्स (Ligures) या लिग्यूरियन कहा गया है तथा ग्रीक ने उन्हें AiyveG और ये संपूर्ण पश्चिम यूरोप में ही फैल गए थे। तत्पश्चात्, दक्षिण से आइबेरियन (Iberiams) जनजाति के आगमन से लिग्यूरियन पृष्ठ-भूमि में ठकेल दिए गए; यही नहीं, मारसियल्स (Marseilles) के क्षेत्र में ग्रीकों (Greeks) का आगमन सर्वाधिक महत्वपूर्ण था – गौल्स (Gauls) के जनक माने जाने वाले केल्ट्स (Celts) के आक्रमण-भी लिग्यूरियन को समाप्तप्राय करने में उत्तरदायी तत्व

साबित हुए।

लिग्यूरियन की स्मृति एवं नाम रोह्न (Rhone) के पूर्व में तथा, ऐल्प्स के दक्षिण ढ़लान पर आज भी शेष हैं – वे फ्राँस के उत्तर में बसे थे। जबकि, आईबेरियन जनजाति के लोग दक्षिणी फ्राँस के क्षेत्र में अधिक बसे थे। अत: रोह्न के पश्चिम में, एक्यूटानिया में तथा पायरनीस के दोनों तरफ आइबेरियन स्मृति चिंहों के अवशेष अभी भी हैं।

वास्तव में, दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक केल्ट् जनजाति वालों ने गौल को अपने देश के रूप में स्वीकार नहीं किया था–वे लगभग पूर्ण यूरोप में ही फैले हुए थे। लगभग इसी समय, गौल में केल्ट्स जनजातियों को उत्तर से एक अन्य आक्रमणकारी जनजाति का सामना करना पड़ा, इनका संशोधित नाम गौल्स था। वस्तुत: शीघ्र ही, गौल के क्षेत्र में, उत्तरी मैदानों से आई सभी जातियों–जनजातियों को गौल कहकर ही सम्बोधित किया जाने लगा ! अत: तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में यूरोप के इस पश्चिमी क्षेत्र में बसे लोग गौल अथवा गौल्स के नाम से पहचाने जाने लगे !

यह भी सम्भव है, कि, चौथी शताब्दी ईसा पूर्व तक जिन विभिन्न लोगों ने गौल को विजित किया वे थोड़ा–बहुत साम्य रखते थे। उनकी भाषाएँ लगभग मिलती–जुलती थी तथा, आचार–विचार तक एक समान थे। अत: मारीय मैदे्लियन मारतिन का मत अधिक तार्किक प्रतीत होता है, कि, ये विजेता जिन्होंने फ्राँस के इस प्राचीन क्षेत्र पर विजयश्री प्राप्त की थी, एक जटिल गुट था, जिसकी भाषाओं की समानता ही एक प्रमुख तत्व था।[1] उनकी राजनीतिक प्रभुसत्ता, एक भूमध्यसागर को छोड़कर शेष यूरोप मे फैली हुई थी– ऐल्प्स व एड्रियाटिक सागर से एशियाई रूस के घास के मैदानों अथवा स्टैप्स (Steppes) तक; तथा बाल्टिक सागर के तट से लेकर उत्तरी यूनान तक ! पोइसन महोदय इन्हें आर्य मानते हैं।[2] वे तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में एशिया माइनर तक भी पहुँच गए थे। किंतु, अनुशासन के अभाव में एवं अपनी संस्थाओं की अन्तरनिहित अराजकता के कारणवश, वे अपनी राजनीतिक प्रभुसत्ता को बनाए रखने में सक्षम नहीं हो सके और अंतत: यूरोप के उसी पश्चिमी क्षेत्र में पराजित होकर, अपना गृह–राज्य मानकर रहने लगे ![3]

इस समय ऐसा प्रतीत होने लगा, कि, राष्ट्र–राज्य की मौलिक आवश्यकताएँ व आधारभूत अर्हताओं की पूर्ति हो रही थी और गौल–एक पृथक राष्ट्र–राज्य

के रूप में उभरने के लिए अंगड़ाई लेने लगा था। केल्ट् जनजाति ने अपनी पूर्वगामी जनजातियों को पूरी तरह से अपने में समाहित कर लिया था-और उनको भी जो बाद के आक्रमणों के दौर में इस क्षेत्र आए। अत: यूनानी व रोमनों ने गौल में बसे लोगों को एक ही नाम से सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया-जो किसी जाति विशेष का द्योतक, न होकर इस संपूर्ण क्षेत्र व क्षेत्र-वासियों का सम्बोधन था! इस प्रकार से संगठित गौल लोगों के पास एक समुदाय के विकास का ठोस आधार भी था - उनके पास समान रीति-रिवाज, समान धर्म व धार्मिक मान्यताएँ, समान भाषा आदि सब कुछ था-बस एक ही तत्व का अभाव था, किंतु, वो ही तत्व मौलिक व अपरिहार्य था : उनकी एकता का संगठित राजनीतिक स्वरूप तथा संस्थाओं का विकास जो इस संगठन के सांतत्य के लिए आवश्यक था उनके काल में गौलिक शहर थे; छोटे-छोटे गौलिक राज्य भी थे; किंतु, कोई गैलिक राष्ट्र-राज्य की परिकल्पना नहीं थी। प्रत्येक राज्य स्वतंत्र और पृथक राजनीतिक ईकाई की भाँति कार्य करता रहता था तथा पारस्परिक संघर्ष में भी रत रहता था। उनके समाज की विशेषता ही थी-कट्टर व्यक्तिवाद तथा उसी के परिणामस्वरूप, राजनीतिक अराजकता !

रोम द्वारा गौल की विजय से न केवल गौल का राजनीतिक परिदृश्य परिवर्तित हो गया, अपितु, उसके विकास-क्रम को एक नई दिशा तथा चेतना प्राप्त हो सकी और वह एक राष्ट्र-राज्य के रूप में संगठित भाव से उभरने में सफल हो सका। कैमिले जूलियन जैसे विद्वान रोम द्वारा राजनीतिक सत्ता हरण को व्यर्थ में ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता पर तुषाराघात-अत: इसे राष्ट्रीय अपमान मानते हैं'[4] क्योंकि, जब राष्ट्र की अवधारणा ही विकसित न हो पाई हो-तो राष्ट्रीय अपमान कैसा? रोम द्वारा विजय के फलस्वरूप ही गौल को एक राजनीतिक संविधान प्राप्त हो सका जिसके अभाव में वह कभी भी एक राष्ट्र-राज्य के रूप में उभरने में समर्थ न हो पाता। गौलवासियों को एक सशक्त संगठन की आवश्यकता थी और, घनघोर व्यक्तिवादी होने के कारण वे स्वत: तो कभी भी ऐसा संगठन निर्मित न कर पाते। अनेक शताब्दियों तक जन-जातियों का अक्रामक प्रवेश ऐसे ही होता रहता और वे भी क्रमश: पूर्ववर्ती जनजातियों में सम्मिलित होते रहते, किंतु, राष्ट्र-राज्य की परिकल्पना साकार न हो पाती। यही नहीं, रोम द्वारा विजित होने के उपरान्त गौल को तीन-सौ वर्षों का लम्बा शाँति का काल प्रास हो गया, जो उनके लिए शांति का सर्वाधिक लम्बा काल का। राहईन-क्षेत्र में सुरझा का अभेद्य कवच भी रोम ने ही प्रदान किया और सैंन्य-अनुशासन भी। जहाँ गौल

ने फ्राँस के निर्माण के कुछ अस्फुट एवं अव्यवस्थित तत्व ही प्रदान किए थे, वहीं रोम द्वारा इस विजय ने व्यवस्था प्रदान कर दी।

रोम से आकर गौल को विजित करनेवाले प्रसिद्ध सेनानायक जूलियस सीज़र के आग्मन से पूर्व, गौल के निवासी मूलतः तीन भागों में विभक्त से हो गए थे। ऐदुइ (Aedui) जो सा ओन (Saone) लोइर (Loiee) एवं साइन (Seine) के मध्य के क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित किए हुए थे; अरवरनी (Arverni) जो अधिकार अथवा मैत्री-संधियों के माध्यम से केंद्रीय गौल के पठार के स्वामी थे। साथ ही, रोह्न (Rhone) लोइर (Loive) एवं एलाइर (Allier) की घाटियों के मध्य के तमाम मार्गों पर भी उनका आधिपत्य स्थापित था। और, अन्त में, सुइसियोन अथवा सोइसोन्नाइस (Suessiones or Soissonnais) थे, जिनका आइन (Aisne) तथा ओइस (Oise) के मध्य के क्षेत्र पर स्वामित्व था। अतः, शक्ति एवं समृद्धि भूमध्यसागर से उत्तरी सागर के मध्य की व्यवसायिक धुरी पर एकत्रित और संगठित हो रही थी।[5] इन तीन वर्गों पर आधारित - संगठित गौल-निवासियों की पारस्परिक शत्रुता व वैमनस्य ने ही सीज़र द्वारा गौल-विजय का मार्ग प्रशस्त किया।

किन्तु, सीज़र के आगमन से पूर्व हमें मारसील्य्स (Marseilles) का इतिहास अथवा विकास-क्रम जानना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि, अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति व व्यवसायिक हितों के रक्षार्थ उन्होंने रोमन सैनिकों को निरन्तर निमंत्रित किया और अपने साथ-साथ गौल को भी अन्ततः ले डूबे !

लगभग 600 ईसा पूर्व, भूमध्यसागर के लिग्यूरियन तट पर, आइ 'ओनिया (Ionia) के एक शहर फोसिया (Phocea) से आए लोगों ने मारसील्य्स की स्थापना की। प्रारम्भ में यह एक शक्तिहीन उपनिवेश था' जहाँ आन्तरिक क्षेत्र में विभिन्न जन-जातियों से उनकी प्रतिद्वन्दिता चलती रही, वहीं, दूसरी तरफ, सामुद्रिक व्यवसाय में कारथेज (Carthage) एवं, एट्रस्कन (Etruscans) निवासियों की कट्टर प्रतिद्वन्दिता का भी सामना करना पड़ा और, शनैः शनैः अनेक बंदरगाहों व बाजारों की स्थापना के साथ-साथ, निचले राइह्न क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित कर के, बर्बर पश्चिम तथा हेलेनिक पूर्व के मध्य का समस्त व्यापार अपने हाथों में केंद्रित कर लिया। हाँलाकि, मारसील्य्स ने गौल का हैलेनीकरण नहीं किया, फिर भी, उसने इतना तो कर ही दिया, कि, पहली बार गौल के समस्त दक्षिण तट पर हैलेनिक सीमा निर्मित कर दी तथा, इस प्रकार, गौल के क्षेत्र को पूर्वी

भूमध्यसागर की सभ्यता के प्रभाव के अन्तर्गत ला ही दिया और यह प्रभाव ईसाई मत के प्रथम प्रसार; धर्म-युद्धों; पुनर्जागरण से होता हुआ काफी अरसे तक सुस्पष्ट रूप से यहाँ स्थापित रहा।

अन्ततः मारसीयल्स के कारण ही, रोमवासी गौल में प्रविष्ट हो सके। सर्वप्रथम उसने इन रोमन सैनिकों का उपयोग अपने प्रतिद्वन्दियों-एट्रूस्केन् व कारथेज-वासियों के अभियानों के प्रतिरोध के लिए किया। फिर उसने अपने-आपको रोम व स्पेन के मध्य व्यापार का मध्यस्थ बना डाला और, तदुपरान्त, उसने गौल की विभिन्न जनजातियों को नियंत्रित करने हेतु रोमन-सैनिकों को आमंत्रित कर दिया। और, साथ ही, अपने तथा अपने साथ-साथ गौल की परतंत्रता को भी निमंत्रण दे डाला।

[2]

गौल पर रोमन आधिपत्य का काल

लूसियन रोमियर के मतानुसार, रोम-वासियों ने मात्र यश के लिए अपनी सभ्यता का प्रसार नही किया। उनके गौल विजित करने के निश्चित, किंतु, भिन्न उद्देश्य थे। उन्हें भूमि की तलाश थी जो उन्हें यहाँ सुलभ ही उपलब्ध थी; संसाधनों की तलाश थी, जिसका वे भरपूर लाभ उठा सकें ; तथा, निरन्तर आक्रमणों के विरूद्ध एक सुरक्षा-आधार भी गौल के रूप में प्राप्त करने की सम्भावना प्रतीत हो रही थी और, फिर, जैसा कि ऊपर स्पष्ट कहा जा चुका है, मारसीयल्स की नीति का भी रोम-वासियों के गौल-आगमन में कम योगदान नहीं था। पूर्व में भी रोम-वासियों अर्थात् सैनिकों ने समय-समय पर धन के बदले में सैन्य-सहायता प्रदान की थी, किंतु, अब की बार उनकी नियत और इरादे बिल्कुल ही फर्क थे। उन्हें जहाँ, एक तरफ, अपने गरीब नागरिकों के लिए जमीन की तलाश थी वहीं, दूसरी तरफ, अपने व्यापारियों के लिए विकास-द्वारों की आवश्यकता भी थी रोमन-सैनिक आए-उन्होंने दो युद्धों के सहारे रोह्न (Rhone) घाटी साफ कर दी-गौल वासियों को पूर्ण पराजित कर, अखर्नी के शासक बिट्युइट (Bituit) को विश्वासघात द्वारा गिरफ्तार कर लिया।

सर्वप्रथम अपने-आप को रोह्न से पूरब वाले क्षेत्र में सुस्थापित करने के पश्चात्, नदी पार कर के उन्होंने अपनी विजय-पताका स्पेन की सीमाओं तक विस्तृत कर दी और गौल के समस्त भूमध्य-सागरीय क्षेत्र पर रोमन आधिपत्य स्थापित हो गया और गौल का औपनिवेशिकरण प्रारम्भ हो गया। विजित क्षेत्रों में रह रही जनजातियों के साथ विजेताओं का व्यवहार उनकी योग्यता व समसामयिक परिस्थितियों पर निर्भर था। विजेताओं द्वारा लगाए जाने वाले अधिभ ार और अवैध वसूली का बोझ जहाँ इन जनजातियों पर पड़ा वहीं, उन्होंने इसके विरूद्ध विद्रोह भी किए और अंततः ये प्रान्त 'लैटिनीकरण' का महत्व समझ सके।

रोमवासियों के दक्षिण गौल में इस प्रकार से बस जाने के लगभग पच्चीस वर्ष पश्चात् यह सुस्पष्ट हो गया, कि, स्वतंत्र गौल-विभक्त और दुर्बल होकर

मध्य युरोप से हो रहे निरन्तर बर्बर आक्रमणों से कैसे अपने-आप को सुरक्षित एवं संरक्षित रख पाएगा। गौल के लोगों ने ही रोमन सहायता की आशा करनी शुरू कर दी और इन परिस्थितियों में 1 जनवरी 58 ईसा पूर्व को गौल के रोम-अधिकृत क्षेत्र में प्रशासन का दायित्व सँभाल चुके जुलियस सीज़र को अपना सुनहरा अवसर प्राप्त हो गया। किंतु, संपूर्ण गौल विजित करने में इस महान् विजेता को भी अनेक वर्ष लग गए। जबकि, सीज़र के ही मतानुसार, गौल की सेनाओं में अनुभवहीनता व एक सीमा तक अनुशासन-हीनता भी थी और उसकी अपनी सैन्य-टुकड़ियाँ अथवा लीजन्स (Legions) पेशेवर सैनिकों द्वारा निर्मित थीं। गौल की सेनाओं की परम्परागत शैली रोमन-विकसित तकनीकि, अनुशासन एवं अनुभव के आगे टिक नहीं सकी। साथ ही, सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था के कारण वह गौल की योजनाओं की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेता था, और उसका लाभ उठाने में भी सफल था। जूलियस सीज़र ने 58 ईसा पूर्व से 51 ईसा पूर्व तक युद्धों के द्वारा गौल विजित किया-इस कार्य का सम्पादन दो चरणों में सम्पन्न हुआ-प्रथम चरण में, गौल लोगों के लिए जूलियस सीज़र एक संरक्षक था, जो बर्बर जनजातियों के आक्रमणों से मुक्ति दिलाने आया था। किंतु, गौल-अभियान के दूसरे चरण में, सीज़र अपने वास्तविक स्वरूप में उभर कर आया। गौल-वासियों ने उसे एक विजेता के रूप में पाया, जो उन्हें परतंत्र करने आया था। सीज़र ने युद्धारम्भ-एदुई (Aedui) के अनुरोध पर, हेलवेशियन (Helvetian) आक्रमण का प्रतिरोध करने हेतु किया था। वह शनैः शनैः सैन्य- अभियानों का नेतृत्व करते-करते, उत्तरी सागर के तट तक पहुँच गया और अब उसका वास्ता उत्तरी गौल निवासियों से पड़ा जो अपने वनों के रक्षार्थ उठ खड़े हुए, किंतु, सीज़र की श्रेष्ट सेनाओं के आगे उनका बस नहीं चल सका। किंतु, 54 ईसा पूर्व तक गौल - वासियों को सीज़र के वास्तविक उद्देश्यों की जानकारी मिल गई और, अन्ततोगत्वा, अपरिहार्य होकर ही रहा तथा स्वतंत्रता के संग्राम का श्रीगणेश हो गया। ऐब्यूरोन्स (Eburones) के प्रमुख एम्बिओरिक्स के नेतृत्व में, उत्तर-निवासी सीज़र के विरूद्ध उठ खड़े हुए और, शीघ्र ही, उनकी सफलता से प्रभावित और प्रेरित होकर, ऐड्रेनेस (Ardennles) से लोयर (Loire) तक का क्षेत्र विद्रोही हो गया। प्रतिक्रियास्वरूप एक बार फिर सीज़र ने आक्रमण किया और उनका सफलतापूर्वक दमन किया। किंतु, गौल के निवासी षडयन्त्रकारी हो गए और सुनियोजित ढंग से विद्रोह की शुरूआत 52 ईसा पूर्व में, आरवर्नी (Arverni) के नए प्रमुख वर्सिन्ज्टोरिक्स (Vercingetorix) के नेतृत्व में हुई।

ऐदुई, रेमी एवं लिंगोन्स को छोड़कर, शेष सभी गौलवासी एकीकृत रूप से रोम के आधिपत्य के विरूद्ध संघर्षरत हो गए और इस युवा सेनापति ने सीज़र के सौभाग्य को अनर्थ के कगार तक तो ला ही दिया था। उसने समझ लिया था, कि, उन्हें पराजित करने के लिए यह आवश्यक था कि उनकी एकीकृत शक्ति को विभाजित करके निरन्तर परेशान किया जाए व थकाकर विनष्ट किया जाए; प्रत्यक्ष युद्ध से वह सदैव बचता रहा तथा, विद्रोही लोगों के मध्य संवाद बनाए रहा। किंतु, सीज़र एक अनुभवी सेनापति था, जिसने प्रारम्भिक पराजयों के पश्चात् अपनी सैंन्य-शक्ति पुनर्गाठित करनी शुरू कर दी और, अन्ततोगत्वा, गौल के स्वतंत्रता संग्राम को दबाने में पूर्णतः सफल हो गया।

इसके पश्चात् तो लगभग पाँच शताब्दियों तक गौल रोम पर आश्रित रहा। वस्तुतः, यह भी स्पष्ट है, कि, यदि गौल-वासियों ने बर्बर आक्रमणों के विरूद्ध सीज़र की सहायता न ली होती तो भी आक्रान्ताओं से तो उनका राज्य पद-दलित होता ही, तब शायद जनसंख्या व जनजातियों के परिवर्तनों से गौल का स्वरूप ही बदल जाता। जबकि, रोमन प्रभाव के चलते व ईसाई-धर्म से भी प्रभावित होकर, गौल इतना सक्षम तो हो ही गया था, कि, बाद के आक्रमणों के दौरान (जो रोमन साम्राज्य के पतन के काल में शुरू हुए थे-) हाँलाकि, उनका प्रतिरोध तो सफलतापूर्वक न कर सका था, फिर भी, उन्हें अपनी सभ्यता के रंग में ढ़ालने में सफल रहा।

तार्किक निर्माण, संस्थाओं का विकास रोम की सांस्कृतिक विशेषता थी। उन्होंने न तो गौल का व्यक्तित्व निर्मित किया और न ही उसकी एकता की दिशा में कोई ठोस कार्यवाही की। किंतु, उन्हें एक ताना-बाना व व्यवस्था प्रदान करके, रोम-वासियों ने गौल को सुस्पष्ट रूप से परिभाषित अवश्य कर दिया! रोम के आधिपत्य के बाद ही लोगों को ज्ञात हो सका कि गौल की भौगोलिक सीमाएँ क्या हैं -जहाँ प्रकृति ने स्वाभाविक सीमाएँ निर्धारित नहीं की थी - उत्तर व पूर्व में-रोम-वासियों ने सीमाएँ निश्चित कर दीं और आश्चर्यजनक रूप से ये सीमाएँ आज भी वैसी ही हैं-बावजूद सैकड़ों युद्धों तथा अनेक परिवर्तनों के ! वस्तुतः रोम द्वारा प्रदत्त गौल की सीमाएँ यूरोप की सर्वाधिक रक्त-रंजित सीमा प्रमाणित हुई हैं।

इस प्रकार से भूमध्यसागर के विशाल तट पर एक विशिष्ट साम्राज्य की स्थापना सम्भव हो सकी, जिसके अंतर्गत विभिन्न सभ्यताएँ पनप सकीं-तो उसमें रोम द्वारा प्रदत्त एक संरक्षात्मक व्यवस्था का भी महत्वपूर्ण योगदान था। रोम

ने पराजित लोगों के संस्कार-रिवाज़ वैसे ही रहने दिए, किंतु, अपनी सेना व अपनी विधि-संहिता सब पर समान रूप से थोप दी। किंतु, यह भी एक ऐतिहासिक विरोधाभास है, कि, विजेता देश ने अपने सुदृढ़ व सशक्त संस्थाओं के माध्यम से विजित देश की स्वतंत्रता को ही संरक्षित करने का योगदान दिया। रोम ने ही अपने इस नव-विजित प्रान्त को एक एकीकृत मुद्रा-व्यवस्था प्रदान कर दी। नई संस्थाओं के माध्यम से नए राज्य की अवधारणा परिपक्व होने लगी तथा आन्तरिक एकता के नए युग का सूत्रपात हुआ। जर्मनी में रोमन-प्रवेश के प्रयास की असफलता ने गौल के एकीकरण को और भी सहायता पहुँचाई-क्योंकि, तब गौल, बर्बर जर्मनी के विरूद्ध रोमन साम्राज्य का सीमान्त प्रहरी बनाया गया। और, इसके अतिरिक्त, विकल्प भी क्या था ? जूलियन जैसा विद्वान भी मानता है, कि, रोमन विजेताओं ने गौल की सीमा पर एक स्थायी शत्रु को छोड़कर गौल-वासियों को एकता तथा मतैक्य का ज्ञान प्रदान कर दिया। जब औगस्टस (Augustus) और उसके उत्तराधिकारियों ने राह्इन नदी के तट पर रोमन साम्राज्य की सीमा निर्धारित कर दी तो उसी समय से, उन्होंने गौल का भविष्य भी पूर्व-निर्धारित कर दिया।

रोमन साम्राज्य के अंग बनकर व्यतीत किया गया काल, कृषि के लिए रवासतौर पर अत्यधिक समृद्धि का काल था। रोम के ही निर्देशन में गौल-वासियों को यह आभास हो पाया, कि, ईश्वर ने उनकी जमीन को कितनी उर्वरता प्रदान की है। इस प्रकार, आर्थिक सम्पन्नता (जो पूर्व में भी समृद्ध-विस्तृत व्यापार से प्राप्त थी) को एक ठोस आधार प्राप्त हो गया। रोम के आधिपत्य काल में गौल की सेनाएँ - उस सैन्य-संगठन व अनुशासन से अवगत हो, उसकी अभ्यस्त हो गईं जिसने उनकी निडरता व लड़ाकू-क्षमता में चार चाँद लगा दिए। इसीलिए रोमन साम्राज्य की गौल को देन, अथवा उसके ऐतिहासिक विकास में योगदान का मूल्यांकन करते हुए मारीय-मादेलियन-मारतिन ने ठीक ही कहा है, कि इससे गौल की तीन प्रमुख विशेषताएँ मुखरित हो गई थीं: उनकी भूमि का विशेष स्वरूप व उर्वरता; उनकी सेनाओं की अभूतपूर्व क्षमता; तथा साधारण बुद्धिमता, शाब्दिक-सामर्थ्य एवं वाक्-पटुता, जिसने प्रसिद्ध न्यायविदों अथवा विधिवेत्ताओं को भी जन्म दिया।[9] इसी प्रकार शाँति व्यवस्था प्रदान करके, रोमन प्रशासन ने गौल वासियों को एक ही स्थान पर निवास या प्रवास करने का प्रोत्साहन प्रदान किया, जिससे अपनी भूमि के प्रति आकर्षण व मातृ-भूमि का सा प्रेम या भावना जागृत हुई,जिससे आगे चलकर फ्राँस में राष्ट्र-राज्य का उद्भव सम्भव हो सका!

साम्राज्य का पतन - ईसाई मत का प्रचार-व-बर्बर आक्रमण:

तीसरी शताब्दी के अन्त के करीब रोमन साम्राज्य अनेक घटनाओं से अत्यधिक प्रभावित हुआ-प्रभावित हुआ प्रारम्भ में तो ऐसा प्रतीत हुआ, कि, ये साधारण घटनाएँ मात्र हैं, जिनके कोई दूरगामी परिणाम नहीं होंगे, किंतु, इन्हीं ने रोमन साम्राज्य की पूर्ण संरचना को ही परिवर्तित कर दिया। जैसे ही साम्राज्यी पद पर नियुक्ति के निश्चित नियम का परित्याग रोम में हुआ, वैसे ही उत्तराधिकार के लिए, प्रत्येक सम्राट के पश्चात्, प्रतिद्वन्दिताऐं तथा खूनी संघर्ष प्रारम्भ हो गए, जिससे राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त हो गई; फिर, बर्बर जनजातियों ने भी राह्इन की सुरक्षा को ध्वस्त कर दिया और वे गौल में फैल गए-जिससे विनाश लीला शुरू हो गई और, अन्त में, इस फैलती हुई अराजकताओं ने राजनीतिक विद्रोहों को जंम दिया-जिससे आरजकता भी पूर्ण हो गई।

रोमन समाज में व्याप्त इस अराजकता ने समाज में भेद-भाव को जन्म दिया-एक तरफ समृद्ध सम्पत्ति-सम्पन्न लोग थे तो, दूसरी तरफ,जन-सामान्य, जो लगभग दासता के स्तर पर जी रहे । इस अराजकता ने सामन्तवाद को प्रेरित किया, क्योंकि, मूलत: कृषक देश में ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक सुरक्षा और सम्पन्नता अभी शेष थी, अत: शहरी जनसंख्या के एक भाग ने भी ग्रामों की तरफ पलायन शुरू किया और इस पूरी प्रक्रिया ने विकेंद्रीकरण को बल प्रदान करके छोटी-छोटी स्वतंत्र राजनीतिक इकाईओं का जन्म दिया।[10]

जिस समय समाज पर से राजसत्ता का नियंत्रण शिथिल होने लगा-हाँलाकि, वे चाहते थे और प्रयासरत थे, कि, यह नियंत्रण बना रहे-उसी समय एक ऐसी नई शक्ति का इस क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ, जिससे आस्था जुड़ी थी और यह था ईसाई मत। ईसाई मत ने लोगों का ध्यान व आस्था ईश्वर की और खींचकर राज्य से विमुख कर दिया, जिससे राज्य की मान्यता और साख पर और भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि, पाँचवी शताब्दी (ईसवी) के बर्बर आक्रमणों ने रोमन-गौल राज्य का हिंसात्मक अन्त अवश्य किया, किंतु, इस अन्त अथवा पतन की प्रक्रिया तो-जैसा ऊपर विदित हो ही चुका है - दो सौ वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हो गई थी। वस्तुत: साम्राज्य का विभाजन तो तीसरी शताब्दी में ही धीरे-धीरे शुरू हो चुका था।

गौल में इसाई धर्म रोम से नहीं, अपितु, पूर्व से आया-यूनान अथवा सीरिया

के व्यपारिक जहाजों के माध्यम से- जो प्रोवेन्स (Provence) के तट पर नित्य आते थे। शीघ्र ही, ये दक्षिण व मध्य गौल में फैल गए और राइ्इन क्षेत्र तक हम आसानी से ईसाई समुदाय के प्रमाण प्राप्त करते हैं। सर्वप्रथम इन्होंने शहरी क्षेत्रों में अपना प्रभाव स्थापित करने में सफलता प्राप्त की-ग्रामीण जनता उस भाषा से कदापि परिचित नहीं थी, जिसमें अधिकांशत: प्रचार होता था-वे लैटिन तो कम ही जानते थे-यूनानी से तो बिल्कुल ही अनिभिज्ञ थे। अत: ग्रामीण जनता का धर्म परिवर्तन बहुत धीमी गति से ही सम्भव हो पाया। अत: ईसाई धर्म को गौल के गावों की तुलना में-शहरों में अधिक अनुकूल वातावरण मिला।

एशिया माइनर (Asia Minor) से आ रहे धर्म प्रचारक तो आस्था – हैलेनिक (Hellenic) संस्कृति के मूल तत्व भी लाए- अधिक मानवीय, प्रभावशाली व सम्मोहक होने के कारण-वे लैटिन धर्माधिकारियों से भी अधिक सफल रहे, लेकिन, उनका एक गुण उससे भी अधिक प्रभावकारी रहा और वो था-दानशीलता। अत: वे एक प्रकार से पूरे रोमन साम्राज्य के नैतिक मूलाधार पर ही प्रहार कर रहे थे और इसी के परिणामस्वरूप प्रारम्भिक प्रचारकों का अन्त बहुत क्रूर रहा! किंतु, शहादत के लिए तत्पर प्रचारकों को इससे बल और प्रेरणा ही प्राप्त हुई, जिसके फलस्वरूप गौल में तीसरी शताब्दी के अन्त अथवा चौथी शताब्दी ईसवी के प्रारम्भ में, बीस बिशप-क्षेत्र निर्धारित होकर, बीस बिशप कार्यरत् हो गए थे। फिर 313 ईसवी में जब सम्राट कौन्सटैन्टाइन (Constantine) ने मिलान की विधि (Edict of Milan) के द्वारा ईसाई मत को साम्राज्य में मान्यता प्रदान कर दी तो धर्म परिवर्तन में एक बाढ़ सी आ गई। बिशपों को एक नैतिक अधिकार प्राप्त हो गया-यहाँ तक कि, रोमन, गौल के प्रशसनिक पतन के दौरान वे शहरों के संरक्षक की भूमिका का भी निर्वहन करने लगे-गौल के सामाजिक जीवन के भाग्य निर्माता तो वे हो ही गए !

रोमन साम्राज्य के विभाजन के समय तक तो यूनानी शहरों व इटली के अतिरिक्त गौल ही ईसाई मत का मुख्य आधार था। फ्राँस में ईसाई मत के कुछ अवशेष आज भी मिल जाते हैं-सबसे प्राचीन है मिनरवे (Minerve) का वह शिलालेख, जो अब नारबोन संग्रहालय में सुरक्षित है-जिससे स्पष्ट होता है, कि, पाँचवी शताब्दी के मध्य से पूर्व बिशप रसटिकस ने एक पूजाघर का निर्माण करवाया था। सबसे प्राचीन-वास्तविक चर्च छठवीं शताब्दी का है-जो पोइटर्स में सेंट जौन की बैपिस्ट्री के नाम से प्रसिद्ध है।

ग्रामीण क्षेत्र में 'साई-धर्म का प्रचार ईसा की चौथी शताब्दी से ही प्रारम्भ हो पाया। इस कार्य का श्रीगणेश सेंट मार्टिन नामक एक साधु ने किया जो उससे पूर्व एक सैनिक व सेनाधिकारी रहा था। उनकी दयालुता, मानवीयता तथा दानशीलता के चलते उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त हुई, जो इसी बात से प्रमाणित हो जाती है, कि, आज भी फ्राँस में सेंट मार्टिन के नाम के सैंकड़ों चर्च मिल जाते हैं। सेंट मार्टिन के शिष्यों ने उनके धर्म-प्रचार के कार्य को और भी गति प्रदान की तथा अभूतपूर्व सफलता भी प्राप्त की।

ऐसा साम्राज्य जिसका नियंत्रण शिथिल पड़ रहा था; जिसका अन्तरिक ढाँचा कमजोर हो गया था; जिसमें राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त थी-स्वभावतः बाह्य आक्रमणों के लिए आकर्षण स्थल हो ही गया। अतः तीसरी शताब्दी के अन्त होते-होते अनेक जर्मन जनजातियाँ साम्राज्य के पश्चिम क्षेत्र में प्रविष्ट होकर बस गई थीं। उन्होंने मजदूरों व कृषक-मजदूरों के रूप में कार्य करना भी प्रारम्भ कर दिया था। उन्हें सैनिक के रूप में भी बड़ी संख्या में स्थान मिलने लगा। हूण नेता अटीला के नेतृत्व में, हाँलाकि, बर्बर सेनाओं को निष्फल व 451 ई० में पराजित भी होना पड़ा था। किंतु, तीन दशक बाद तो वे यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रतीत हो रहे थे।

इस प्रकार पांचवी शताब्दी के अन्त तक रोमन-गौल तीन जर्मन राज्यों में विभक्त हो-पूरी तरह से जर्मन-गौल में परिवर्तित हो चुका था। प्रथम क्षेत्र था-लौईयर (Loivre) से पायरनीस तक; भूमध्यसागर से महासागर तक तथा, स्पेन भी विजित कर लिया गया था-यहाँ पर विसीगौथ्स (Visigoths) का आधिपत्य था तथा इनकी राजधानी टूलूस (Toulouse) थी; दूसरे क्षेत्र में रोह्न व सो 'ओन की लगभग समस्त घाटियाँ सम्मिलित थीं-इसे बुर्गुन्ड़ियों का राज्य कहते थे; तीसरा शेष क्षेत्र सेलियन फ्राँक (Salian Franks) लोगों का था-इनके अधीन समस्त उत्तरी भाग था (राह्इन से लोइर; तथा मोरवन से उत्तरी सागर तक)। उनका शासक ही फ्राँस के प्रथम वंश का संस्थापक था।

प्रारम्भिक आक्रमणों अथवा बलपूर्वक प्रवेश के पश्चात् तो, बाद में ये बर्बर जनजातियाँ शनैः शनैः आती रहीं और यहाँ पर बसती रहीं; जहाँ रोम के प्रभाव में शहरीकरण की प्राक्रिया सशक्त हुई थी, वहीं फ्राँक-शासन जो सैन्य व ग्रामीण स्वरूप का था-उसके कारण, अन्ततोगत्वा, सामन्तवाद की प्रवृत्तियाँ ही सशक्त हो सकतीं थीं। साथ ही, विजयश्री प्राप्त एवं आधिपत्य स्थापित करने की शक्तियों

का प्रवाह उत्तर से हो रहा था, अतः फ्राँस की एकता भी उत्तर से ही प्रभावित होनी थी। इसीलिए लियौन्स (Lyons) के स्थान पर पेरिस नई राजधानी हो गई। इस पूरी प्रक्रिया में एक विरोधाभास भी मिलता है– वे क्षेत्र जो रोम के अधीन सुलभता से आ गए–उन्हीं क्षेत्रों ने फ्राँसीसी एकता में सम्मिलित होने में सर्वाधिक विलम्ब किया, उदाहरणार्थ दक्षिणी दक्षिण, पश्चिमी एवं पश्चिमी क्षेत्र–।

ऐसा प्रतीत होता है तथा इतिहास ने प्रमाणित भी कर दिया है, कि, इन तमाम बर्बर जनजातियों में फ्राँक ही युद्ध के लिए सर्वाधिक अनुशासित व प्रशिक्षित थे। उनका नेतृत्व 481 ई0 से क्लोविस (Clovis) को अपने पिता चाइल्ड्रिक (Childeric) की मृत्योपरान्त प्राप्त हुआ। 486 ई0 में उसने अपना गौल विजय अभियान का सफलतापूर्वक श्रीगणेश किया। क्लोविस का दिमाग बहुत तेज था उसकी दूरदृष्टि, समझ, विश्लेषणात्मक क्षमता व सामरिक दक्षता अद्‌भुत थी। उसने यह तक भली–भाँति समझ लिया था कि, यदि, उसे कैथोलिक धर्माधिकारियों का समर्थन व आम–जनता की संस्तुति प्रास हो जाए तो उसका गन्तव्य सुलभ हो जाएगा अतः उसने 496 ई० में ईसाई मत स्वीकार कर लिया। बर्गन्डी के शासक गोंडेबाउड जो कि एक कट्टर इसाई परिवार का था– उसकी पुत्री से बिशपों ने क्लोविस का विवाह भी करवा दिया और इसी के पश्चात्, 500 ई० में उसने बर्गुन्डी के शासक को; तथा 507 ई0 में विसिगोथ शासक को पराजित (कर मृत्यु के घाट भी उतार दिया) करने में सफलता प्रास की। इसी प्रकार, शेष प्रमुख फ्राँक जनजातियों के प्रमुख को पराजित कर अपने मार्ग से हटा दिया। इस प्रकार क्लोविस ने एक विशाल गैलो – जैर्मैनिक (Gallo-Germanic) राज्य की स्थापना कर ली थी, जिसमें संपूर्ण गौल के अतिरिक्त, पायरनीस से लेकर वेसर, (weser) तक का जर्मनी का क्षेत्र भी सम्मिलित था। उसे गौल के ईसाई बिशप का समर्थन सदैव मिलता ही रहा। 511 ई० में पेरिस में उसकी मृत्यु हो गई और यही चर्च में (जो बाद में संत जनेवीयूव (St Genevieve) के नाम से प्रसिद्ध हुआ) दफना दिया गया।

क्लोविस ने एक प्रकार से गौल के इतिहास की धारा ही मोड़ दी। यह निश्चित हो गया, कि, अब गौल का शासन व संगठन दक्षिण से उत्तर की ओर नहीं होगा अपितु, उत्तर से दक्षिण की ओर होगा तथा अपने फ्राँस विजेताओं के नाम पर उसका भी नाम भविष्य में फ्राँस ही हो जाना है !

▭

[3]

फ्राँक-आधिपत्य-इस्लाम का आक्रमण-फ्राँस राज्य की शुरुआत

क्लोविस के वंशजो-उत्तराधिकारियों, जिन्हें प्राय: मैरोविन्जियन (Merovingian) कहकर सम्बोधित किया जाता है - ने लगभग दो सौ चालीस वर्षों तक शासन किया - प्रभावकारी शासन तो वस्तुत: डेढ़ शताब्दी तक ही स्थापित रहा-तत्पश्चात्, वास्तविक सत्ता महल के मेयरों के हाथों में स्थानांतरित हो गई, जिन्होंने कैरोलिंग्यिन (Carolingian) वंश की नींव डाली।

मैरोविन्जियन काल के गौल के इतिहास की वास्तविकता तीन प्रकार के विरोधाभासों को प्रतिबिम्बित करती है: औस्ट्रेशिया (Austrasia) नामक पूर्वी क्षेत्र, जो कि जर्मैनिक प्रभाव का क्षेत्र था, तथा न्यूस्ट्रिया (Neustria) था पाश्चिमी क्षेत्र, जो केल्टिक एवं रोमन पारम्पराओं को संजोए हुए था; फ्राँक क्षेत्र, अर्थात् औस्ट्रेशिया व न्यूसट्रिया का सम्मिलित प्रान्त तथा, फ्राँक के सैन्याधिकार वाले एक्यूटैनिया एवं बर्गुन्डी के मध्य प्रतिद्वन्दिता सुस्पष्ट थी; और अन्तत:, बर्गुन्डी तथा एक्यूटैनिया के ही मध्य परस्पर विरोध। अत: इस पूर्ण विभाजन से ऐसा प्रतीत होता है, कि, मैरोवियन शासक-गौल के नहीं अपितु फ्राँस के शासक थे।[11] इस काल में भी ईसाई चर्च के स्तर में वृद्धि ही होती रही। वह मात्र धार्मिक व नैतिक जीवन पर ही प्रभुत्व नहीं जमाए हुए था-बल्कि समकालीन बौद्धिक जीवन का प्रतिनिधित्व भी करता था।[12]

मैरोवियन शासक अपने लुँज-पुँज हाथों में सत्ता केंद्रित न रख सके और वह अधिक से अधिक महल के मेयरों के हाथों में सिमटती चली गई। आखिर महल के मेयर के क्या कार्य थे ? संपूर्ण फ्राँक राज्य प्रशासन की भाँति ही महल के मेयर के कार्य भी सुपरिभाषित नहीं थे। वस्तुत:, यह तो उस व्यक्ति पर पूर्णत: निर्भर था जो मेयर के पद पर आसीन हो। जैसे-जैसे इस वंश का पतन सुनिश्चित गति से होने लगा, वैसे-वैसे महल के मेयर मंत्री से भी अधिक

महत्वपूर्ण हो गए-वे शासक की ही भाँति कार्य करने लगे थे-कर-निर्धारण; उनकी वसूली; सैन्य सेवाओं की माँग अथवा उसके लिए आदेश देना; युद्ध-घोषणा; शाँति-स्थापना; तथा विदेश सम्बधों का निर्धारण आदि।

अत: क्लोविस के वंशजों के हाथ से सत्ता-क्राँति के कारण नहीं 'बल्कि' अपने कारण गई-क्योंकि, अपनी अक्षमता के कारण वे उन कार्यों को बिल्कुल भी सम्पादित नहीं कर सके, जिसके लिए राजतंत्रीय व्यवस्था को स्थापित कर, मान्यता प्रदान की गई थी। व्यवस्था स्थापित करने के स्थान पर उनकी दुर्बलता, पारस्परिक मतभेदों व भ्रष्ट आचरण ने अराजकता को ही प्रोत्साहित किया। अपने आप को शिक्षित करने के स्थान पर वे चर्च को ही भ्रष्ट संस्था में परिवर्तित करने में संलग्न हो गए। वे ईसाई मत के संरक्षक-प्रचारक का कार्य भी नहीं कर पाए, अपितु, उनके ही काल में बर्बर जातियों के आक्रमणों सें गिरजाघरों का भी विनाश हुआ और चर्च ने अपनी सुरक्षा के दृष्टिकोण से अपना राजनीतिक विकल्प भी निर्धारित करने का निश्चय किया।

वस्तुत: आठवीं शताब्दी के आगमन के काल में यह निर्णय अपरिहार्य हो चला था क्योंकि ईसाईयों को पश्चिम के साथ ही उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण से भी खतरे के चिंह दृष्टिगोचर होने लगे थे। किंतु, दक्षिण में यह खतरा सर्वाधिक घातक साबित हो सकता था-अरब विजय का अग्रिम चरण बस यहीं पड़ना था-यह युद्ध तथा विकास का तार्किक क्रम था। अत: इस पश्चिम की सुरक्षा कौन करता ? यह प्रश्न यक्ष प्रश्न का रूप धारण कर चुका था - फ्राँक शासित गौल हतोत्साहित हो इस दायित्व के लिए पूर्णत: अयोग्य था। यह एक संकट की घड़ी में योग्यता की तलाश का समय था। और, अन्तत:, इस काल की आवश्यकतानुसार व्यक्तित्व वाला व्यक्ति भी तेजी से उभरने लगा - यह था-एक फ्राँक ही - चार्ल्स - मार्टेल (Charles-Martel), जिसका अतीत आपराधिक था। तीन वर्षों में उसने अपनी शक्ति इतनी संगठित कर ली थी, कि, उसका आधिपत्य आस्ट्रेशिया, न्यूस्ट्रिया तथा बर्गुण्डी तक स्थापित हो गया था। वह एक्यूटैनिया व सेक्सन को भी पराजित कर चुका था। अत: 732 ई० में उसने अरब सेनाओं का प्रतिरोध किया तथा उन्हें पूर्णत: पराजित कर, गौल को अन्तत: इस्लाम से सुरक्षा प्रदान कर दी। इसी कारणवश वह धर्म का संरक्षक घोषित हो, चर्च की सहानुभूति अर्जित करने में भी सफल रहा। इसी के छोटे पुत्र 'पेपिन द शौर्ट' (अथवा छोटे कद-वाला) ने ईसाई धर्म के लिए ही-उनकी सुरक्षा-

संरक्षण हेतु-कार्य किए और लाभ व यश भी कमाया - 751 ई० में वह नया शासक निर्वाचित हो गया। पोप स्टीफ़न द्वितीय जो लोम्बार्ड आक्रमणों से आतंकित था-उसने भी पेपिन से सहाएता माँगी, और उसने सहायता का प्रण लिया। पोप ने 28 जुलाई 754 ई० को पेपिन को शासक घोषित किया तथा यह भी उद्घोषणा की, कि, उसका विरोध करने वाला धर्म से भी च्युत माना जाएगा-और, इस प्रकार, एक निर्वाचित शासक - दैवि - सिद्धान्त के राजत्व से परिपूर्ण शासक में परिणित हो गया।[13]

उसी वर्ष (754 ई०) पेपिन ने पोप का ऋण भी उतार दिया। सर्वप्रथम उसने लोम्बार्डों से बातचीत करने का प्रयास किया फिर, आल्प्स पार करके सूसा में उन्हें पराजित कर, रेवेना तथा बाइज़ानटाइन साम्राज्य के ग्यारह अन्य शहर पोप को प्रदान कर-उस पैपल राज्य की स्थापना कर दी, जो 1870 ई० तक वैसे ही चलता रहा था। शेष जीवन वह अपने राज्य को सुदृढ़ करने व व्यवस्थित करने में व्यस्त रहा तथा 24 सितम्बर 768 ई० में चौवन वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। उसी का बड़ा पुत्र चार्लमेन (Charlemgne) अर्थात 'चार्ल्स-बड़ा' था। वह एक बड़े राज्य का उत्तराधिकारी बना जिसमें संपूर्ण प्राचीन गौल व लगभग समस्त जर्मनी भी सम्मिलित थे। विरासत के अतिरिक्त वह सौभाग्यशाली भी था, कि, एक पूर्ण निरंकुश शासक की भाँति लगभग आधी शताब्दी या पचास वर्षों तक शासन करने का अवसर मिला था। उसने युद्ध खूब लड़े व जीते किंतु ये नवीन विजयों के युद्ध न होकर शांति व्यवस्था कायम रखने या अवज्ञाकारिता उन्मूलन के युद्ध थे। किंतु, हां उसी के शासन में इटली भी व्यवहारिक-रूप से, उसके अधीन आ गया था।

अब चार्लमेन ने अरबों का प्रतिरोध अभियान शुरू किया, जो गौल के दक्षिण को आंतकित किए हुए थे। यह एक लम्बा संघर्षपूर्ण अभियान रहा, किंतु अन्त में, वह पायरनीस के दोनों ओर एक सुरक्षा क्षेत्र निर्मित व उसे सुदृढ़ करने में सफल रहा। उसने सेक्सनों के भी विरूद्ध बत्तीस-वर्षीय अभियान चलाया और अन्ततः विजयी रहा। जो रोम-वासी भी न कर सके थे-वह चार्लमेन ने कर दिखाया-अपने अ-परिष्कृत ढंग से ही सही,० उसने जर्मनी को एक निश्चित स्वरूप प्रदान कर दिया। जिन क्षेत्रों में रोमन सभ्यता भी न पहुँच सकी थी- चार्लमेन वहां भी प्रविष्ट होने में सफल हुआ इसने डेनों, स्लावों, अवारों को वापस ढ़केलने में भी सफलता प्राप्त की। इन युद्धों व सैन्य-अभियानों के पीछे

एक उद्देश्य था-कैथोलिक यूरोप को एकीकृत करना और चार्लमेन इसमें पूर्णतः सफल भी रहा। उसने कैथोलिक यूरोप को बर्बर इस्लामी आक्रमणों से एक सुदृढ़ सुरक्षा कवच भी प्रदान कर दिया। 800 ई० में क्रिसमस की रात वह सन्त पीटरं गिरजाघर में प्रार्थना कर रहा था, कि, पोप लियो ने अप्रत्याशित भाव से उसको साम्रज्यी मुकुट पहना दिया।

चार्लमेन के साम्राज्य के दो आधार तत्व थे। एक भौतिक था-सैन्य प्रभुत्व तथा, दूसरा, नैतिक था-धर्मावलम्बन। किंतु, ये दोनो ही स्थायी साबित नहीं हुए, क्योंकि, उसका साम्राज्य लगभग एक शताब्दी तक ही चला। इसकी एक विशेषता थी, कि, यह पूर्णतः युरोपीय था, इसने एकीकृत यूरोप के विचार को पनपाकर सशक्त कर दिया (कि, बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में यह साकार हो रही है!) था। इस साम्राज्य का पतन कोई दुर्घटना नहीं थी, अपितु, पतन के कारण इसमें अन्तर्निहित थे। यह इतना विस्तृत था, कि, सैन्य व प्रशासनिक नियंत्रण सम्भव नहीं था; दूसरे, उत्तराधिकार में साम्राज्य के विभाजन के सिद्धान्त की भी अहम् भूमिका थी; तीसरे, प्रत्येक क्षेत्र व प्रान्त को स्वतः सुरक्षा करनी थी-जिसके फलस्वरूप सैन्य व अन्य सभी संसाधन एकीकृत रूप से प्रयुक्त न हो सके; चौथे, व्यक्तिगत सम्बंधों की जटिलता एवं बाहुल्य ने एक यूरोपीय राज्य के विचार को साकार रूप धारण करने में विशेष अवरोधक का कार्य किया। फिर, अनततः, प्रशासनिक सुव्यवस्था के अभाव में राज्य का एकीकृत रूप में संगठित रह पाना सरल नहीं था। 814 ई० में चार्लमेन की मृत्यु के साथ ही साम्राज्य का विभाजन उसके उत्तराधिकारियों में नियमानुसार होने लगा तथा अगस्त 843 ई० में वरदून (Verdun) की विभाजन की संधि ने इस विभाजन के ताबूत में अन्तिम कील और ठोक दी !

किंतु, साथ ही, वरदून की संधि द्वारा ही उस फ्राँस ने साकार रूप धारण किया, जो पूरे मध्यकाल में बना रहा। चार्लमेन की मृत्यु के एक शताब्दी पश्चात् तक पश्चिमी फ्राँस, उत्तर के जल दस्युओं नार्मनों (Normans) के आक्रमणों से भयाक्रान्त रहा। इन नार्मन दस्युओं की एक विशेषता तो थी ही, कि, वे अनुशासित थे तथा उनका युद्ध का सामरिक ज्ञान भी अद्‌भुत था। नौवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वे हर नदी व सागर में दृष्टिगोचर होने लगे। वे फ्राँक साम्राज्य के उन क्षेत्रों में आक्रमण करने लगे जो असुरक्षित थे अथवा जिनकी सुरक्षा एक दुष्कर कार्य था। धर्माधिकारी व सामान्य जन सभी पलायन करने लगे। स्पष्टतः कैरोलिन्जियन

शासक व राजकुमार आदि अपने ही विवादों – प्रतिस्पर्धाओं में फँसे होने के कारण, हतप्रभ रह गए थे इस नार्मेन आक्रमण से।

887 ई० के वर्ष के प्रारम्भ में अन्तिम कैरोलिन्जियन शासक "चार्ल्स द् फैट" को अमीरों ने अपदस्थ कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप ईसाई धर्माधिकारी वर्ग द्वारा काल्पनिक पश्चिम इसाई साम्राज्य काल्पनिक ही रह गया। अब छोटे-छोटे सामन्तों के चलते, जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत ही संपूर्ण फ्राँस क्षेत्र में चरितार्थ होती थी। इन सामन्तों ने भी शासकों की भाँति कर-वसूली; सैन्य सेवाओं की वसूली; न्याय प्रदान करना तथा अपने सिक्के भी प्रचलित करवाना शुरू कर दिया । एक स्वतंत्र संप्रभु सिद्धान्त के अभाव में गौल, के विभाजन की प्रक्रिया और गतिशील हो गई। यहाँ तक कि, दसवीं शताब्दी में तो बर्बर आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करने की भी उसकी भूमिका और, इस कारणवश, उसका महत्व भी जाता रहा। सेक्सनी के ड्यूकों के नेतृत्व में जर्मनी में एक नए साम्राज्य की स्थापना हुई, जिसने बर्बर आक्रमणों से अन्ततः सुरक्षा प्रदान कराई।

यह भी इतिहास का एक अकाट्य सत्य है, कि, दसवीं शताब्दी फ्राँसीसी इतिहास का एक महत्वपूर्ण मोड़ है। संपूर्ण समाज यहाँ-तक की ईसाई गिरजाघर भी भ्रष्ट होकर पतनशील थे-राजनीतिक व्यवस्था के अभाव में !

शासकों के अभाव में यह भूमि वीरों से वीरान अब भी नहीं हुई थी। लोइर तथा सियन घाटियों के दो वीरों ने नार्मेनों के विरूद्ध युद्ध लड़े और ये ही दो क्षेत्र फ्राँस की पहचान को बनाए रखने में सफल हुए। इनमें प्रथम था, 'रौबर्ट द स्ट्रौंग'- इसी के पुत्र ने अन्ततः केरोलिन्जियनों के वंश का विनाश कर दिया-इसका नाम था इयूड्यस, 'पेरिस का काउन्ट' तथा 987 ई० को इसे मान्यता प्रदान करते हुए पश्चिम फ्राँसिया के एक बिशप ने हयूग्ज़ कंपट-जो कि रौबर्ट द स्ट्रौंग का प्रपौत्र था-का सिंहासनारोहण भी कर दिया। लेकिन, यह वंश भी एक ऐसे क्षेत्र पर शासन करता रहा, जो पेरिस व औलीन्स के निकटवर्ती प्रदेश से निर्मित था-शेष स्थानों पर अराजकता का अन्त अब भी दृष्टिगोचर नहीं था।

ग्यारहवी शताब्दी में शासन करने वाले इस नए वंश के काल में एक महत्वपूर्ण तथा सकारात्मक कार्य तो हुआ ही-प्रत्येक शासक की मृत्यु के पश्चात्, उत्तराधिकरियों के मध्य साम्राज्य का बँटवारा तो समाप्त हो गया तथा, वंशनुगत

होते ही इसने धर्माधिकारियों व अमीरों को भी नियंत्रित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ की, जिसके परिणामस्वरूप, सामन्ती विभेद समाप्त होने लगे, केपेटियन शासक शेष सामन्तों से बहुत फर्क नहीं थे- न तो आचार-विचार में और ना ही स्वार्थ सिद्धि में। किंतु मात्र उसी के शासन को दैवि मान्यता प्राप्त थी और वह ही न्याय-प्रशासन का सर्वोच्चाधिकारी था। अंत: उसका स्थान स्पष्टत: बहुत ऊपर स्थापित हो गया। अत: वंशानुगत उत्तराधिकार के सिद्धान्तानुसार जब शासन सत्ता एक ही वंश अथवा परिवार में सिमट कर रह गई और फ्राँस में इस प्रकार केपेटियन वंश का शासन प्रारम्भ हो गया तो उसी दिन से फ्राँस का भी जन्म सुनिश्चित हो गया।[14] कुछ इतिहासकारों के मतानुसार 'फ्राँस वहां के लोगों की इच्छा-शक्ति से निर्मित हुआ था।' जबकि, एक दूसरा बड़ा वर्ग, इसके विपरीत मानता है कि, 'फ्राँस का निर्माण उसके राजाओं ने ही किया था।' सत्य इन दोनों छोरों के मध्य में स्थित है। न केपेटियन शासकों ने, भौगोलिक एकता; समान हित; समान स्मृतियों; भाषा की समानता आदि निर्मित की। किंतु, दूसरी तरफ, न तो भूगोल; न समान भाषा; न आर्थिक कारण ही अपने आप में फ्राँस की एकता के लिए पर्याप्त थे। वे राजनीतिक एकता व स्थिरता के अभाव में प्रान्तीय व क्षेत्रीय मतभेदों को मिटाने में सक्षम नहीं थे, अपितु, उनको और अधिक प्रोत्साहित ही करते थे। अत: केपेटियन शासकों ने उन्हें सुरक्षा तो प्रदान कर ही दी तथा जनता को अपनी निष्ठा कोरी संस्थाओं व आस्थाओं के प्रति ही नहीं, बल्कि, एक जीते-जागते मनुष्य के समक्ष प्रकट करने का अवसर प्रदान करके एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। साथ ही, शाँति और व्यवस्था प्रदान करके इस क्षेत्र के परम्परागत सांतत्य को पुनर्जन्म दिया तथा उनकी सत्ता के कारण उत्पन्न संस्थाओं के लाभ ने एक नए युग का सूत्रपात किया। व्युत्पत्ति के आधार पर तो "पैट्री" (Patrie) अथवा देश का अर्थ ही होता है-विरासत की अविरलता को आगे बढ़ाना। अत: प्राचीन गौल के इस क्षेत्र में वंशानुगत सांतत्य स्थापित हो गया और इसी में समान प्रारब्ध का स्थायित्व-साकार रूप ग्रहण करके-एक राष्ट्र का बीजारोपण कर गया।

अत: स्वाभाविक ही था कि इतनी समृद्ध परम्पराओं के उत्तराधिकारी होकर, केपेटियन शासकों ने अपने-आप को चार्लमेन का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। उन्होंने अपने आप को कभी जर्मन शासकों से हीन भी नहीं माना, भले ही वे अब सम्राट के विरूद धारण किए हुए हों। वे अपने-आप को इनके समकक्षी-

समस्तरीय ही मानते रहे, क्योंकि, दोनों ही तो पूर्व के फ्राँक साम्राज्य के पूर्वी व पश्चिमी क्षेत्रों में स्वतंत्र एवं पृथक रूप से शासन कर रहे थे। अतः इस प्रकार, जब गौल के निवासियों के मास्तिष्क में एक मातृ-देश की कल्पना भी नहीं थी तब भी इन केपेटियन शासकों के दिल-दिमाग पर यह विचार छाया हुआ था और, सौभाग्यवश, वे ही भविष्य के- अर्थात् राष्ट्र के निर्माता थे। किंतु, ग्यारहवीं शताब्दी में, शासकों का यह स्वप्न-संपूर्ण फ्राँस के स्वप्न में परिवर्तित हो चुका था। पश्चिम के स्वामी की आध्यात्मिक विरासत का केन्द्र भी फ्राँस हो गया था, उसे "प्यारा फ्राँस, पावन फ्राँस, गरिमामयी फ्राँस" ('Sweet France Holy France, Glorious France') कहकर सम्बोधित किया जाने लगा था।[16]

यही फ्राँस धर्म-युद्ध के सैनिकों का केंद्र व प्रश्रय 'बना। 'जब भी पोप संकट में आते हैं वे फ्राँस की ओर सहायता की आशा से देखते हैं'-यह विचार सर्वमान्य था। और इसी से उस सांतत्य का संकेत मिलता है, जिसने सभ्यता के केंद्र रोमन गौल को ईसाई-मत के प्रमुख केंद्र फ्राँसिया से जोड़ा; फिर, पश्चिम फ्राँसिया से; और अन्ततः केपेटियन-शासित फ्राँस से जोड़ दिया ! जबकि इनके ठीक विपरीत जर्मन शासकों ने चार्लमेन की परम्परा को भुलाकर, धर्म की रक्षा तो दूर, पोप की शक्ति के विरूद्ध ही तलवार उठा ली। अतः पोप के लिए भी फ्राँस की ओर देखना अपरिहार्य हो गया था।

पश्चिम फ्राँसिया के संपूर्ण क्षेत्र में हर तरफ शोषितों में सर्वप्रथम केपेटियन की उदीयमान शक्ति को पहचाना व स्वीकार किया गया। जो चर्च थे वे भी भूपतियों के अत्याचार से संतप्त थे-उन्होंने भी राजाश्रय मांगी; स्वतंत्र शहर तो अपने-आप को शासक पर निर्भर मानने लगे; केपेटियन शासक फिलिप प्रथम ने अपने राज्यारोहण के समय यह प्रण भी लिया, कि, वह प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक न्याय प्रदान करेगा तथा सबके साथ समान व्यवहार किया जाएगा। इसके फलस्वरूप, समस्त क्षेत्र में, सामन्तों के भी क्षेत्रों में, शासक के प्रतिनिधि न्याय दिलाने के नाम पर प्रविष्ट हो गए; तथा लुई सप्तम के काल तक तो सामन्तों के विरूद्ध शासक से न्याय की गुहार करने वालों की गणना असंख्य हो गई। आने वाली शताब्दियों के लिए एक दिशा व ऊर्जा प्राप्त हो गई, कि, सामन्ती अत्याचारों के विरूद्ध कहाँ अपील की जा सकती है। कहाँ से न्याय की आशा की जा सकती है।

ग्यारहवीं व बारहवीं शताब्दियों मे केपेटियन वंश की सत्ता और यश में

अभूतपूर्व वृद्धि हो गई। यह विकास क्रमिक व परिस्थितिजन्य था। परिस्थितियों का सामना करने के लिए, विशेषतौर पर, सामन्ती स्वामियों के अतिक्रिमणों के कारण-यह सम्भव हो सका। फिलिप अगस्तस ने अपनी मृत्यु के समय अपने पुत्र व भविष्य के लुई अष्टम से साधारण-जन व चर्च की सुरक्षा का विशेष आग्रह किया था। इसीलिए 1120 ई० में जर्मन के सम्राट हेनरी पंचम के आक्रमण के प्रतिरोध के लिए, केपेटियन शासक लुई के समर्थन में संपूर्ण देश से लोग-सामान्य जन-आ जुटे थे। इन लोगों के मास्तिष्क में राष्ट्र-राज्य का कोई विचार नहीं था। किंतु, बौद्धिक लोगों-लेखकों-कवियों की लेखनी में यह साकार रूप धारण करने लगा था।[17]

□

[4]

तेरहवीं शताब्दी की फ्राँसीसी संस्कृति-शतवर्षीय युद्ध व उसकी विभिषिका

इस प्रकार से जहाँ फ्राँस एक राष्ट्र-राज्य का स्वरूप ग्रहण करता जा रहा था और जिस समय वह एक एकता के सूत्र में अंतर्निहित भेदों को समेट रहा था वहीं, वह एक विश्व-व्यापी स्वरूप भी धारण कर रहा था। यह एक विशिष्ट व अभूतपूर्व घटना थी। वस्तुतः बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दियों में फ्राँस ने एक प्रकार से धर्म-युद्धों को जन्म दिया था। पूर्ण पश्चिम को शौर्य को परिभाषित करना सिखाया वहीं उसके दरबार के शिष्टाचारों का अनुसरण स्पेन, इटली, इंग्लैंड, बोहिमिया, पोलैण्ड एवं हेगरी में स्पष्टतः देखा जा सकता है। पेरिस के विश्वविद्यालय को विश्व-व्यापी स्वरूप भी इसी बात का द्योतक था। फ्राँस ने ही मध्य-काल में व्यापार को सामुहिक संगठन प्रदान करके, एक ऐसा समाधान निकाला-जिसने सामाजिक-शांति को स्थापित करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और फ्राँस के स्थापत्यकारों के "गोथिक स्थापत्य शैली" ने जहाँ नई सशक्त इमारतों को साकार रूप प्रदान किया, वहीं, दूसरी तरफ, भविष्य के पुनर्जागरण काल के स्थापत्य का आधार भी स्थापित कर दिया।

किंतु, फ्राँस के शासक को इस काल में राजनीतिक शाँति व स्थायित्व प्राप्त नहीं था-उसे दो संप्रभु शक्तियों से सदैव भय का बोध होता रहता था। सर्वप्रथम तो था कैथोलिक विश्व का संप्रभु स्वामी-पोप-जो शासक को अपने अधीन घोषित करना चाह रहा था। फ्राँस के केपेटियन शासक कैथोलिक चर्च के आज्ञाकारी पुत्र की भाँति कार्य करने को तत्पर थे। वे आस्था व मत के लिए सर्वत्र निछावर करने को भी तैयार थे किंतु, वे अपने राज्य में पोप के राजनीतिक हस्तक्षेप अथवा अतिक्रमण के लिए कत्तई तैयार नहीं थे।

दूसरी संप्रभु शक्ति जो चेतावनी दे रही थी-वह सशक्त स्वेछाकारी फ्रेड्रिक बारबरोसा के रूप में उभरी थी। उसी के काल में जर्मन-क्षेत्रीय होली रोमन

साम्राज्य अपने-आप को शक्ति के आधार पर रोम, के प्राचीन उत्तराधिकारी होने का उद्‌घोष करके, फ्राँसीसी क्षेत्र को अपने अधीन घोषित करने का इच्छुक था, जिसमें उसे, पोप का समर्थन भी प्राप्त हो गया, क्योंकि, पोप तो फ्राँसीसी शासक से वैसे ही कुपित था। किंतु-लुई नवम ने स्पष्टत: इंकार कर दिया, कि, वह अपने राज्य की संप्रभुता और स्वतंत्रता में किसी के भी साथ किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं करेगा। इस प्रकार, उसने जहाँ एक तरफ फ्राँस की सीमाएँ परिभाषित कर दी वहीं, दूसरी तरफ, अपनी संप्रभुता भी घोषित कर दी।

ऐसा प्रतीत होता है, कि, अब धीरे-धीरे फ्राँसीसी समुदाय में यह जागृति घर कर रही थी, कि, वे एक संप्रभु राष्ट्र के नागरिक हैं। इसकी अभिव्यक्ति हमे उस काल के बुद्धिजीवियों के लेखन में स्पष्टत: दिखाई देती है।[18] हाँलाकि, केपेटियन वंश के पूर्व-शासित क्षेत्रों में (पेरिस व और्लीन्स के जिलों) हमें पूर्ण राजनीतिक एकता दिखाई देती है, किंतु, जो क्षेत्र शासकों ने हाल ही में विजित किए और जो फ्राँसीसी ही थे उन क्षेत्रों में सामन्तवादी विशिष्टता अब भी शेष थी। केपेटियन शासकों ने भी इनको सबल समाप्त करने का प्रयास नहीं किया। नहीं तो सम्भवत: कोई प्रतिक्रिया अवश्य होती और एकीकरण के कार्य में अवरोध उत्पन्न होता। अत: इन शासकों ने शाँतिपूर्ण व विवेकशील ढंग से स्वत: ही सम्मिश्रण को वरीयता प्रदान करने की नियत से क्षेत्रीय विशेषाधिकारों तथा शहरी व व्यापारी विशेषाधिकारों को मान्यता प्रदान करके, उनकी पुष्टि भी कर दी। वे उन रीति-रिवाजों को आदर भी प्रदान करते रहे तथा, उन्हें स्वायत्त-शासन की भी स्वतंत्रता प्रदान कर दी। और इसी कारणवश, हम पाते हैं, कि, इस काल में केपेटियन शासक के प्रति निष्ठा एवं कृतज्ञता का बोध चतुर्दिक बढ़ने लगा। इस प्रकार, तेरहवीं शताब्दी, फ्राँस के इतिहास में सम्मिश्रण के युग का सूत्रपात कर रही थी। संत लुई का फ्राँस, विश्व को इस बात का एहसास कराने लगा था, कि, वह अपनी उत्पत्ति एवं विशेषताओं के प्रति जागरूक होकर क्या उपलब्धि अर्जित कर सकता था।

किंतु, संत लुई का फ्राँस कोई काव्यात्मक रमणीक समाज नहीं था उसमें भी सदैव की भाँति हर दूसरे समाज की तरह लोभ, हिंसा व स्वार्थ सभी कुछ समाहित था। समृद्ध मध्यम वर्ग अपने संगठित गुटों का निर्माण करने लगा था और इनके हित प्राय: राज्य के हितों के अनुकूल नहीं भी होते थे। धर्माधिकारी वर्ग में भी दो उपवर्ग हो गए थे-एक जो शासक की ही भाँति पोप के स्वेच्छाचारी आदेशों से मुक्त रहना चाहता था और दूसरा, जो पूर्णत: धर्म-भीरू होकर, सिर्फ

पोप की ही सत्ता को स्वीकार करता था, कृषक वर्ग, राजनीतिक शाँति एवं स्थायित्व का लाभ उठाकर, अपने स्थायित्व को सुदृढ़ करने लगा। यह कहना अधिक सत्य के निकट होगा, कि, तेरहवीं शताब्दी के फ्राँस में रोम-वासियों के राजनीतिक विवेक तथा ईसाई धर्म-शास्त्र की पवित्र धारा का संयोजन हो रहा था।

संत लुई अपने युग के अनुरूप था। जहाँ, एक ओर, वह शाँति का पक्षधर, मितव्ययी व विवेकशील था, वहीं धर्म-युद्ध के लिए उत्साही भी था। 1248 ई० में उसने स्वयं एक क्रूसेड का नेतृत्व किया तथा, फरवरी 1250 ई० में पूर्णतः पराजित हुआ। मिश्र के अमीरों द्वारा बंदी बना लिया गया तथा पैसा देकर उसे मुक्त कराया गया। किंतु, शीघ्र ही, दूसरे अभियान की तैयारी प्रारम्भ कर दी एवं 1 जुलाई 1270ई० को कूच करके ट्यूनिस तक पहुँचा था, वहीं हैजे में उसकी मृत्यु हो गई।

लुई के पुत्र फिलिप तृतीय (III) का शौर्यपूर्ण अभियानों की ओर झुकाव कुछ और अधिक था; उसने तो मूल्यहीन अभियानों पर अपना राजकोष लगभग रिक्त कर दिया था। तथा, इन्हीं व्यर्थ के अभियानों ने परवर्ती शासक 'फिलिप द फेयर' के काल में अधिक करों का लगाना अपरिहार्य कर दिया था। राजकोष रिक्त होने के कारण राज्य के मूलभूत कार्य भी सम्भव नहीं रह गए थे, अतः कर लगाया जाना आवश्यक था। ये ही घटनाऐं, वस्तुतः आने वाले सौ-वर्षीय युद्ध एवं उसके पश्चात् की अव्यवस्था के पूर्व संकेत थीं।

किंतु सौ-वर्षीय युद्ध से पूर्व एक अन्य महत्वपूर्ण विकास-धर्म के क्षेत्र में हो रहा था-उसकी चर्चा करे बिना आगे बढ़ना कुछ अनुचित प्रतीत होता है। उस काल की समृद्धि, विकास एवं धार्मिक मान्यताओं ने एक ऐसा वातावरण तैयार कर दिया था, जिसमें आस्थावान ईसाईयों का मठों (मोनास्ट्रियों) में रहना आवश्यक नहीं रहा गया था। धार्मिक-जगत में भी पूरी व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। अब तो ईसाई मत को समृद्धि से सम्बंधित कुछ विरोध आदि की प्रवृत्तियों का सामना करना था। तथा नए युग की मान्यताओं से उत्पन्न होने वाली नई समस्याओं का सामना करने में यह धार्मिक व्यवस्था पूर्णतः सफल नहीं हो पा रही थी अतः नए आन्दोलनों का जन्म स्वभाविक हो गया-जो पूर्णतः धार्मिक ही थे और नई समस्याओं, धाराओं, ज्ञान व विज्ञान को आत्मसात करके ईसाई मत को समृद्ध भी करते रहे। ये भिक्षु लोग-अपने अपने जनक के नाम पर, फ्राँसिस्कन एवं डोमिनिकन कहलाए।

फ्राँसिस्कन संघ के संस्थापक विश्व-प्रसिद्ध 'फ्राँसिस औफ़् असीसी' थे। एक समृद्ध व्यापारी के पुत्र होने के बावजूद भी उन्होंने सब-कुछ त्याग दिया। 1210ई० में सन्यास धारण कर त्याग, मानवता, दानशीलता, परोपकार, विश्व-प्रेम के सिद्धान्तों का ही प्रचार किया। लगभग इसी समय, अर्थात् 1215 ई० में एक स्पेनी कुलीन वंश के सदस्य डोमीनीक् ने भी इसी प्रकार के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार प्रारम्भ किया। वे वस्तुत, पोप के तथा कैथोलिक मत के सेवक और सच्चे प्रचारक ही थे तथा फ्राँसिस्कन संघ से सम्बद्ध एक अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति थे-संत बोनावेन्त्यूरा व रोजर बेकन और डोमिनिकन से सम्बद्ध सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम था-संत टोमस एक्यूईनास, जहाँ फ्राँसिस्कन की सदस्यता तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक हजारों में पहुँच गई वहीं, डोमिनिकन अपना प्रभाव- क्षेत्र ग्रीनलैण्ड तक विस्तृत करने में सफल रहे थे।

जहाँ तक अधिसंख्य कृषकों का प्रश्न है वे काफी अनिभिज्ञ व अशीक्षित थे और सम्भवत:, इसी कारणवश, अन्धविश्वासी व अवैज्ञानिक थे। किंतु, शहरों में प्रगति निरंतर व तीव्र गति से हो रही थी। नई व्यवस्था ने जिस सुदृढ़ सुरक्षा को जन्म दिया, उससे संचार व यातायात सुलभ हुआ तथा व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इस व्यावसायिक व औद्योगिक विकास ने न केवल धन की बृद्धि की, अपितु, एक सशक्त श्रम संगठन को भी जन्म दे दिया। प्रत्येक शहर में व्यवसाय व व्यापार को प्रोन्नत करने एवं सुचारू ढंग से चलाने के लिए श्रेणियों का संगठन मौजूद था। बुजुर्ग-प्रशिक्षित शिल्पकार इनके संचालन के लिए उत्तरदायी होते थे तथा इनकी एक निर्वाचित सभा ही श्रेणी के समस्त कार्यों का संपादन करती थी। वह उत्पादों के स्तर का निरीक्षण करती; भ्रष्टाचार को नियंत्रित करती तथा अपने नियम-कानूनों का कठोरता से पालन करवाती। किंतु यातायात की धीमी गति और बढ़ते दामों ने प्रत्येक शहर व प्रान्त को अपनी आवश्यकताओं में लगभग आत्म-निर्भर सा बना दिया था। अत: उद्योग विशिष्ट क्षेत्रों में सीमित रह गये। परन्तु, उस काल में धन व्यापार से ही आ रहा था। अत: बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठानों का जन्म स्वाभाविक ही था और, इसी ने, अंतत: राज्य को विवश कर दिया, कि, वह सड़कों का पुनर्निमाण करे व सेतुओं का निर्माण करे। समुद्र में नौकायन भी सुलभ हो गया था; वस्तुत: फ्राँस ही पूर्व के भूमध्यसागरीय यूरोप तथा मध्य एवं उत्तर यूरोप के मध्य व्यापार का मुख्य-मार्ग था। आग्सबर्ग व न्यूरेमबर्ग से स्पेन, तथा सिसली एवं टस्कनी से इंग्लैण्ड तक के व्यापार-मार्ग फ्राँस होकर ही जाते थे, अत: फ्राँस तो भौगोलिक कारणों से अत्यधिक

लाभ की स्थिति में था।

इन्हीं अनेक भू-राजनीतिक कारणों के चलते, फ्रेंच भाषा का बीजारोपण भी सम्भव हो सका-लैटिन सिर्फ क्लर्कों व अध्यापकों की भाषा रह गई थी-शेष जनता साधारण बात-चीत में फ्रेंच का प्रयोग करने लगी थी; किंतु, फ्रेंच सिर्फ बोल-चाल की ही भाषा नहीं रही वह शीघ्र ही, साहित्यिक अभिव्यक्ति की भाषा हो गई थी। चतुर्थ धर्म-युद्ध एवं संत लुई के इतिहास जैसी दो ऐतिहासिक कृतियों की रचना भी इसी काल में फ्रेंच में ही हुई तथा वेंनिस का निवासी एवं प्रसिद्ध यात्री मार्को पोलो अपने यात्रा-वृत्तान्त संकलन फ्रेंच भाषा में ही करवा रहा था। तेरहवीं शताब्दी में फ्रेंच भाषा के बीजारोपण से लेकर प्रसार व अभूतपूर्व वृद्धि के अनेकानेक कारण थे : केपेटियन शासकों की महानता का लाभ उस भाषा को प्राप्त होना स्वाभाविक था जो उसके राज्य की भाषा थी; फ्राँसीसी मेलों की व्यापारिक सफलताएँ; इंग्लैण्ड से लेकर एशिया माइनर तक फ्राँसीसी शौर्य का विस्तार; फिर, उस भाषा की अपनी मौलिक विशेषताएँ एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका - पेरिस के विश्वविद्यालय ने निभाई और फ्रेंच भाषा नव-संस्कृति व नव चेतना की ही द्योतक हो गई।

इस प्रकार, हम देखते हैं, कि, महान केपेटियन शासकों के कार्यों के चलते तथा पाश्चात्य के नैतिक एवं भौतिक विकास-क्रम के कारण, धर्म-युद्धों के पश्चात् के काल में फ्राँस-यूरोप का सर्वाधिक समृद्ध देश बन चुका था और, यही नहीं, फ्राँसीसी नागरिकों के अन्त:करण में राष्ट्रीय प्रारब्ध की भावना भी प्रबल हो रही थी, और सम्भवत: इसी ने फ्राँस को शत-वर्षीय युद्ध के काल के आक्रमणों, विनाशों एवं दुर्भाग्यों को सहने व साथ ही, सांतत्य को बनाए रखने की क्षमता प्रदान की, वस्तुत: दुर्भाग्य का आगमन शासकों के व्यक्तित्वों के पतन के कारण सर्वप्रथम हुआ।

शत-वर्षीय युद्ध का तात्कालीक कारण था-फ्राँस के राज्य में उत्तराधिकार का प्रश्न। ईंलैंड का शासक एडवर्ड तृतीय अपनी माँ की तरफ से पूर्व फ्राँसीसी शासक 'फिलिप द फेयर' का सम्बंधी था (वह फिलिप का नवासा था) अत: अपने-आप को वह अपने नाना के रिक्त सिंहासन का दावेदार मानता था। किंतु, फ्राँस के अभिजात वर्ग की सभा में वह ताज 'फिलिप द फेयर' के भतीजे वेलोइस के फिलिप को सौंप दिया। अत: दोनों राज्यों के मध्य वैमनस्य की शुरूआत हो गई। जबकि, वास्तव में, फ्राँस तथा ब्रिटेन की शत्रुता का श्रीगणेश इंग्लैंड में नौरमन के राज्य की स्थापना के साथ ही होगा। अनेकानेक घटनाओं, बहानों

ने इस प्रतिद्वन्दिता की अग्नि में घृत का कार्य किया। नव-विश्व के अन्वेषण से पूर्व-इंग्लैंड के लिए यूरोपीय महाद्वीप के अतिरिक्त प्रसार का कोई क्षेत्र भी उपलब्ध नहीं था और, इसके लिए पश्चिमी फ्राँस एवं फ्लैंडर्स को पार करना अपरिहार्य था। इसके अतिरिक्त, गैस्कनी का भी महत्वपूर्ण योगदान था। इसका इंग्लैंड के साथ मदिरा-व्यापार महत्वपूर्ण थाा अत: वहाँ पर फ्राँसीसी प्रसार का विरोध करना ऐडवर्ड तृतीय व इंग्लैंड के लिए स्वाभाविक ही था। इसी प्रकार फ़्लैंडर्स पर फ्राँसीसी आधिपत्य के प्रयास ने इंग्लैंड को फ्राँस के शासक के पद पर अपना दावा प्रस्तुत करने को विवश कर दिया था, क्योंकि, इससे इंग्लैंड का कपड़ा उद्योग संकट में पड़ जाता, अत: फ्लैंडर्स वासियों ने अपने व्यवसायिक हितों के अनुरूप इंग्लैंड के ऐडवर्ड तृतीय को फ्राँस के शासक के रूप में मान्यता भी प्रदान कर दी तथा इंग्लैंड की सेनाओं ने वैलोइस के फिलिप षष्ठम की नौ-सेना को 1339-40 ई० में पराजित कर दिया। इसी प्रकार थल-युद्ध में भी 1346 ई० में फिलिप छठवां पराजित हो गया। अब इंग्लैंड ने इन विजयों का लाभ उठाकर कैलेस की घेरेबंदी प्रारम्भ कर दी, ताकि, इंग्लैंड से फ्राँस का मार्ग उनके लिए निष्कंटक हो सके और अगली दो शताब्दियों तक कैलेस, इंग्लैंड के एक शहर की भाँति रहा तथा फ्राँस-विजय के अभियान के लिए 1347 ई० में यह आधार के रूप में प्रयुक्त भी हुआ।

परम्परागत शत्रु इंग्लैंड से पराजित हो फ्राँस हतोत्साहित एवं नि:शक्त हो गया था। साथ ही अकाल ने रही-बची कसर भी पूरी कर ली अत: राज्य कर-लगाने व ऋण लेने के लिए बाध्य हो गया-शायद अब भी गनीमत होती-किंतु फ्राँस को इटली के मार्ग से पूर्वी विश्व से आए हैजे जैसी महामारी ने भी घेर लिया (1348 न 1349 ई०)। लोग भयभीत होकर पलायन करने लगे, जिसके परिणामस्वरूप, उत्पादन व व्यापार भी अस्त-व्यस्त हो गया 1350 ई० में फिलिप छठवें की मृत्यु हो गई तथा राज्य की बागडोर उसके पुत्र जौन के हाथों में आ गई, जो दुर्भाग्य से मानसिक रूप से विक्षिप्त था।

जौन अथवा जौन द्वितीय की प्रतिद्वन्दिता फिलिप द फेम्र के एक अन्य नवासे नवार्रे के चार्ल्स से थी, जिसे शासक ने 1356 ई० में बंदी बना लिया तथा उसके समर्थकों ने निचली नौरमैंडी का राज्य इंग्लैंड को सौंप दिया और, इसी ने, फ्राँस व इंग्लैंड के मध्य एक नवीन युद्ध को आमंत्रण दे दिया-सितम्बर 1356 ई० के इस युद्ध में पूर्णत: पराजित होकर जौन तथा उसका कनिष्ठतम पुत्र चौदह-वर्षीय फिलिप दोनों बंदी बना लिए गए-इस प्रकार, फ्राँस गृह-युद्ध की विभीषिका

में भी फँस गया ! जनता का रोष, अभिजात वर्ग के विरूद्ध अभिव्यक्त हुआ तथा शहरों के विरोध स्वरूप ऐस्टेट्स जनरल-की बैठक अवश्यसम्भावी हो गई थी। 'फिलिप द फेयर' के काल से ही शासक इसकी बैठक नए करों के प्रावधानों के लिए बुलाने लगे थे। अतः पोइटर्स की इस विभीषिका के कारण, युवा डौफ़िन चार्ल्स इसकी बैठक बुलाने को बाध्य था। इस बैठक में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका शहरी मध्यम-वर्ग ने निभाई, जिन्हें एतेईन मार्सेल का सफल नेतृत्व भी प्राप्त हो गया था। इस मध्यम-वर्ग ने शासक वंश के प्रति निष्ठा प्रकट करते हुए, परामर्श-दाताओं के विरूद्ध आक्रमण बोल दिया, किंतु, जो दूसरा वर्ग इनके समर्थन में उठ खड़ा हुआ था-वह तो वेलोइस वंश के शासन का ही विरोधी था-वे नेवार्रे के चार्ल्स के अधिकार को स्वीकार करते थे या, फिर, इंग्लैंड के शासक को ताज सौंपने की बात करते थे।

विरोध या रोष मात्र शहरों तक ही सीमित न था। फ्राँस के ग्रामीण क्षेत्रों में भी इसे अभिव्यक्ति दी- कृषक श्रमिकों ने तथा यह जैक्यूरी के नाम से सम्बोधित हुआ। यह कुलीन वर्ग के विरूद्ध रोष था, उन्हें भी गुइलौम कार्ल (मेलौ निवासी) नामक एक सफल नेता मिल गया था। इस आंदोलन ने यह सदैव के लिए ही स्पष्ट कर दिया, कि, अभिजात् वर्ग व कृषकों के मध्य विश्वास व पारस्परिक सम्बंधों का विच्छेदन हो गया-जो कि, स्पष्टतः सामन्तवाद के पतन के प्रथम संकेत थे। ये गरीब जन व कृषक अब अभिज्ञ हो गए थे कि, यदि, उन्हें सुरक्षा व न्याय की आशा करनी हो तो शासक ही प्रदान कर सकता है। और इन्हीं परिस्थितियों ने उस जागृति को जन्म दिया-जो आगे चलकर 'जौन् औफ आर्क' के रूप में अभिव्यक्त हुई।

अन्ततः 1360 ई० में ब्रेटिग्नी की संधि ने दोनों राज्यों के मध्य युद्ध को विराम दिया, जिसके अनुसार फ्रांसीसी शासक जौन ने न केवल एक विशाल हर्जाना देना स्वीकार किया, बल्कि, इंग्लैंड के शासक को फ्राँस का एक चौथाई क्षेत्र भी सौंप दिया। जो क्षेत्र इंग्लैंड के शासक के अधीन हो गया वहाँ की फ्रांसीसी जनता ने विरोध प्रकट किया और विभिन्न देशों के रंगरूट युद्ध-विराम से उत्पन्न बेरोजगारी के शिकार हो गए तथा अपनी-अपनी सैन्य टुकड़ी का दुरूपयोग क्षेत्र में अवयवस्था फैलाकर लूट-पाट में करने लगे। ऐसी परिस्थितियों में, 1364 ई० में, जौन की मृत्यु के उपरान्त, शासन डाउफ़िन चार्ल्स को प्रास हुआ, जिसने चार्ल्स पंचम का विरुद धारण किया और सोलह वर्ष शासन किया। वह समझदार शासक था, जिसे एक सुसंगठित सेना के महत्व का ज्ञान था और,

इसीलिए, 1380 ई० में उसकी मृत्यु हुई तो इंग्लैंड अपनी फ्राँसीसी विजयों से लगभग हाथ धो बैठा था और उसके पास मात्र कैलेस, शेरबोर्ग, ब्रेस्ट, तथा बोर्दूयू के बंदरगाह ही शेष बचे थे। अपने क्षेत्रों को पुनर्विजय करने के साथ-साथ, चार्ल्स पंचम ने अनेक आर्थिक सुधार भी प्रस्तावित कर राज्य को एक दृढ़ आधार प्रदान करने का प्रयास किया। स्टेट्स-जनरल को उसने कर-जिलों में प्रतिनिधि नियुक्त करने का अधिकार दिया। ये प्रतिनिधि समस्त साम्राज्य (जो कर-जिलों मे विभक्त कर दिया गया था) में कर- निर्धारण व उसकी वसूली के अधिकारी होते थे। व्यापार पर कर निर्धारित कर, चुंगी की भी समुचित व्यवस्था कर दी किंतु, फिर भी, उसे अपने सैन्य अभियानों के कारण ऋण भी लेना पड़ा-अकेले वित्तीय-सुधारों से राज्य में अर्थिक सम्पन्नता तथा स्थिरता सम्भव नहीं थी।

चार्ल्स छठवां जब गद्दी पर बैठा तब उसकी आयु मात्र बारह वर्ष की थी-उसके चार चाचाओं आदि ने सत्ता आपस में विभाजित कर, राज्य से स्वार्थ-पूर्ति का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इससे राज्य का अत्यधिक अहित भी हुआ। युवा शासक ने अपने इन सम्बंधियों से छुटकारा पाने के लिए पूर्व सलाहकारों को पुनः नियुक्त करने का प्रयास भी किया, किंतु, राज्य-कार्य के निर्वहन में अधिक मेहनत पड़ने पर वह बीमार पड़ गया। इस बीच और्लीन्स तथा बर्गुन्डी के ड्यूकों के मध्य भी प्रतिद्वन्दिता बढ़ गई और 1407 ई० (नवम्बर) में 'ड्यूक औफ् और्लीन्स' की हत्या हो गई, जिसके परिणामस्वरूप इन दोनों परिवारों के मध्य गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। इससे ऊबकर तथा बर्गुन्डी के ड्यूक ने जनता को अप्रत्यक्ष रूप से उकसा दिया और कैबोश् के नेतृत्व में कैबोशि्यन विद्रोह (जन-विद्रोह था) का श्रीगणेश 1413 ई० में हो गया। विद्रोहियों ने राजमहल घेर लिया तथा शासक से सुधार के चार्टर पर हस्ताक्षर करवाकर, मध्यम वर्ग के नेतृत्व में व उसकी प्रेरणा से एक आंतक का युग स्थापित कर दिया किंतु, शीघ्र ही, इस विद्रोह का अन्त भी हो गया तथा निर्भयी जौन (जो बर्गुन्डी का ड्यूक था) को भी अपदस्थ कर दिया गया। अब इंग्लैंड के शासक ने गृह-युद्ध का लाभ उठाकर निर्भय जौन से समझौता कर नौर्मेण्डी में अपनी सेनाएँ प्रविष्ट करा दी तथा फ्राँसीसी सेना को अब तक की सबसे करारी पराजय का सामना करना पड़ा। नौर्मैन्डी के साथ ही फ्राँस का दूसरा बड़ा रोएन भी इंग्लैंड के शासक हेनरी पंचम के अधीन हो गया (लगभग सात माह की घेरेबंदी के बाद) 1420 ई० में चार्ल्स छठें ने 'ट्रौयस की संधि' पर हस्ताक्षर करके इंग्लैंड

के शासक को फ्राँस के सिंहासन का उत्तराधिकारी स्वीकार किया तथा डाउफ़िन की बहन कैथरीन से उसका विवाह भी करा दिया। इस प्रकार 1420 ई० में हेनरी पंचम ने अपनी सेनाओं के साथ पेरिस में प्रवेश किया, किंतु, इसीके दो वर्ष बाद ही इन दोनों शासकों-हेनरी पंचम और चार्ल्स षष्ठम की मृत्यु हो गई। इसी काल में चर्च में भी विभाजन हो गया तथा एविग्नान तथा रोम में दो अलग-अलग पोप स्थापित हो गए तथा कैथोलिक मत का विरोध इंग्लैंड में जौन वाइक्लिफ़ तथा बोहेमिया में जौन हस्स के रूप में मुखरित होने लगा था।

—

[5]

बर्जुवा राजतंत्र का काल-पुनर्जागरण काल-फ्राँसिस प्रथम व चार्ल्स पंचम का काल

जब आक्रमण एवं गृह-युद्ध के बादल छंटे तब फ्राँस के राजनीतिक रंगमंच पर हमें दो शासक दृष्टिगोचर होते हैं-प्रथम दुर्बल चार्ल्स सप्तम तथा, दूसरा, इंग्लैंड का हेनरी षष्ठम, जिसकी बाल्यावस्था के कारण उसके चाचा बेडफ़ोर्ड के ड्यूक इंग्लैंड-अधीन फ्राँस का प्रशासन देखते थे। इंग्लैंड के शासक का समर्थक 'फिलिप द गुड' समस्त बर्गुन्डी का स्वामी था। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि जहाँ धार्मिक विश्व में एक साथ-दो-दो पोप थे, वैसे ही राजनीतिक विश्व में फ्राँस को दो शासकों की उपस्थिति की त्रासदी झेलनी पड़ रही थी। और ऐसी उहा-पोह की स्थिति में फ्राँस ने अपने इतिहास की महान व सच्ची राष्ट्र-प्रेमिका और चरितनायिका' जो 'आन ऑफ् आर्क' को जन्म दिया (1412 ई०), जो अपने राष्ट्र को विदेशी आक्रान्ताओं से मुक्त कराने के लिए 1429 ई० में निकल पड़ी, तथा अप्रैल के माह में 29 तारीख को वह और्लीन्स जा पहुँची, जिसकी घेरेबंदी इंग्लैंड की सेनाएँ कर रही थीं। सफेद घोड़ों पर सवार फ्राँसीसी सेनाओं का नेतृत्व करते हुए वह विदेशी सैनिकों को खदेड़ने में सफल रही (8 मई 1429 ई०)। उसकी एक योजना थी-इस विजय से फ्राँसीसी लोगों का उत्साह वर्धन हो सकेगा और फिर, उसमें चार चाँद लगाने हेतु फ्राँसीसी शासक का सिंहासनारोहण व अभिषेक करना अत्यावश्यक था। चार्ल्स सप्तम् प्रारम्भिक इंकार के पश्चात् रीइम्स के लिए निकल पड़े, जहाँ 16 जुलाई को गिरजाघर में उनका धूम-धाम से अभिषेक किया गया, किंतु, चार्ल्स के परामर्शदाताओं ने इंग्लैंड के शासक को लगभग ढ़ाई माह की अवधि अपने पुनर्गठन हेतु प्रदान कर दी, जिसके परिणामस्वरूप सुव्यवस्थित होकर, उन्होंने

पेरिस पर आक्रमण कर दिया। 8 सितम्बर को तीर से घायल जो, आन भी मैदान से हटने को बाध्य हो गई थी, जिसके परिणामस्वरूप फ्राँसीसी शासक भी मैदान छोड़कर लोईर के प्रासाद में वापस लौट गया। 1430 ई० की बसंत मे अधीर जो' आन ने वर्गुन्डी आक्रन्ताओं का सामना करने का निश्चय किया तथा 23 मई को वह दुर्भाग्य से बंदी बना ली गई, जो उसकी मुक्ति के लिए हर्जाने की प्रतीक्षा करता रहा, तत्पश्चात् उसे अंग्रेजों के हाथों दस हजार स्वर्ण पौंडों में बेंच डाला। निस्सेंदह शासक उसका हर्जाना दे सकता था लेकिन उसके परामर्शदाताओं, जो उसके हाथों अपमानित हुए थे-वे उसकी मुक्ति के कदापि पक्षधर नहीं थे।

इंग्लैंड वासी जो 'आन को आसानी से मौत के घाट उतार सकते थे, किंतु, इसका कोइ प्रत्यक्ष राजनीतिक लाभ उन्हें नहीं दिख रहा था। अत: उनहोंने उसे अपमानित करने का निर्णय लिया, क्योंकि, इससे फ्राँसीसी लोगों की प्रेरणा-स्रोत पर करारा प्रहार होता तथा, साथ ही, उसके द्वारा सम्पन्न हुआ फ्राँसीसी शासक का अभिषेक हास्यास्पद प्रमाणित होता। इस पूरी योजना के पीछे यह विचार कार्य कर रहा था, कि, कैसे भी हो यह प्रसारित हो जाए कि चार्ल्स सप्तम एक चुड़ैल के हाथों बंदी बना एक मूर्ख है।[19] चार माह तक उसको अपमानित किया जाता रहा उससे अनेकानेक प्रश्न पूँछे गए; परीक्षण किए गए; अन्तत: 28 मई 1431 ई० को उसे एक अपधर्मी घोषित कर दिया गया तथा, उस काल में इसकी एक ही सजा थी-जीवित जला दिया जाना-30 मई को इस प्रकार फ्राँस की इस निडर राष्ट्रप्रेमिका ने अपने राष्ट्र के लिए अपने प्राण तक उत्सर्ग कर दिया! और उसके शत्रु तक रो पड़े !

जो 'आन औफ् आर्क ने एक वर्ष की अल्पावधि में फ्राँस के इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन ला दिया था। उसके कार्यों ने फ्राँको-ब्रिटिश राज्य के विचार को ही समाप्त कर दिया। साथ ही, फ्राँसीसी एकता और उस एकता के वैध प्रतीक राजा को आम जनता का संरक्षकत्व प्रदान कर दिया तथा जो 'आन औफ् आर्क की पहल ने आधुनिक दृष्टिकोण से राष्ट्रीय चेतना का आधिकारिक जागरण किया। इन्हीं सबके परिणामस्वरूप तथा जो 'आन औफ् आर्क के त्याग के कारण, फ्राँस मे एक नई शुरूआत सम्भव हो सकी। 1435 ई० में एर्रास की संधि के द्वारा दोनों प्रतिद्वन्दी फ्राँसीसी राज्यों- अर्मैग्नाक तथा बर्गुन्डी में शाँति सम्भव हुई तथा, इसी के अगले वर्ष, पेरिस ने अपने द्वार चार्ल्स सप्तम के लिए सहर्ष खोल दिए। उधर, सौभाग्यवश, (फ्राँस के दृष्टिकोण से) बेडफ़ोर्ड

के ड्यूक की मृत्यु हो गई तथा इंग्लैंड की राजनीति तदुपरान्त एक भँवरजाल में फँस गई। अतः इन परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए, फ्रांस की सेनाओं ने 1449 ई० से 1453 ई० के मध्य विभिन्न अभियानों द्वारा नार्मैन्डी तथा फिर, गुयेन पुनर्विजित कर लिया। इंग्लैंड के अधीन अब मात्र कैलैस रहा गया था किंतु, चार्ल्स सप्तम के अधीन मात्र फ्राँस से अंग्रजों को ही खदेड़ने में सफलता नहीं प्राप्त हुई, अपितु, राजतंत्र भी पुनर्गाठित हुआ एवं, साथ ही, राज्य भी सुदृढ़ हो गया।

शाँति व व्यवस्था स्थापित होते ही, आर्थिक गतिविधियों के पुनः प्रारम्भ होने से भी सर्वाधिक लाभ चार्ल्स सप्तम की सरकार ने उठाना प्रारम्भ किया। इसने एक दूसरी धारा को भी जन्म दिया और वह थी बुर्जुवा महत्वाकांक्षाएँ किंतु, इसके साथ-साथ फ्राँस की आम जनता में भी जबरदस्त राष्ट्रीय जागृति का सशक्त विकास हुआ। मध्यम-वर्ग के सदस्यों ने विनष्ट सामन्तों से जमीन व सम्पत्ति खरीदनी शुरू कर दी; वित्तीय संस्थाओं एवं न्यायालयों में पद प्राप्त किए तथा, नए सामन्तों (नोबल्स औफ् द रोब) के रूप में समाज में स्थापित हो-प्रतिष्ठित होने लगे। इस प्रकार हम पाते हैं, कि, चार्ल्स सप्तम के शासन के अन्त में इंग्लैंड का मात्र कैलेस पर ही अधिपत्य शेष रह गया था। बर्गुन्डी फ्राँसीसी शासक के आधिपत्य को स्वीकार चुकने के बाद भी महत्वाकांक्षी था, अतः खतरा बना हुआ था। चार्ल्स सप्तम की 22 जुलाई 1461 ई० में मृत्यु के पश्चात्, उसका पुत्र लुई एकादश (जो अपने पिता की अंतिम यात्रा तक में सम्मिलित नहीं हुआ था) नया शासक बना। सिंहासनारोहण के पूर्व ही वह घृणा का पात्र हो गया। उसने चार्ल्स सप्तम के सलाहकारों को अपदस्थ किए गए लोगों को वापस नियुक्त किया; धर्माधिकारी वर्ग भी अव्यवस्थित कर दिया; कुलीन वर्ग को भी अपमानित कर दिया; तथा आम जनता का भी दमन प्रारम्भ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप, उसके विरूद्ध विद्रोह भड़कने लगे तथा उसका मार्ग-दर्शन करने हेतु 'लीग औफ् द पब्लिक गुड' की स्थापना 1465 ई० में की गई। एक संक्षिप्त युद्ध के पश्चात् उसने जनता की सभी माँगे स्वीकार कर ली, किंतु, तीन माह के अन्दर ही अपने विरोधियों में फूट डालकर सभी आश्वासन वापस ले लिए। अतः 1468 ई० में उसके विरूद्ध पुनः विद्रोह भड़क गया। 'चार्ल्स द बोल्ड' ने हस्तेक्षेप करने का निर्णय लिया, किंतु, उसके परामर्शदाताओं को लुई एकादश ने पंद्रह हजार स्वर्ण मुद्राएँ देकर हल्की शर्तों वाली 'पेरोन की संधि' के लिए तैयार कर लिया। अंततः 1470 ई० में कुलीनों की एक सभा

टूर्स में हुई तथा इसने पेरोन की संधि को अमान्य घोषित कर दिया। शीघ्र ही चार्ल्स को शाँति के लिए विवश होना पड़ा-इसके पश्चात् कूटनीतिक उपायों द्वारा फ्राँस के राजा ने बर्गुन्डी के ड्यूक को उसके विनाश की कगार तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की-तथा, ऐलसेस-लौरेन विजित करने के प्रयास में पहले 1476 ई० में स्विस सेनाओं द्वारा पराजित हुआ तथा जनवरी 1477 ई० में युद्ध के दौरान मारा गया।

इस प्रकार, लुई एकादश का काल फ्राँस में पुनर्विजय का ही काल मात्र नहीं था-यह नैतिकता से च्युत राजनीति का काल भी था-राजनीति मात्र राजनीति के लिए-यह अब स्पष्ट होने लगा था ! लुई एकादश की मृत्यु 30 अगस्त 1483 ई० को हुई तथा उसका तेरह वर्षीय पुत्र चालर्स अष्टम नया शासक बना। लुई की पुत्री ऐन जो अपने भाई से नौ वर्ष बड़ी थी व जिसका विवाह 'पियरे दि बोज़्यू' के साथ हुआ था। वह तथा पियरे राज्य का भार सम्भालने लगे। बोज़्यू ने ही स्टेट्स-जनरल की अत्यधिक माँगों से 1484 ई० में लुई एकादश की उपलब्धियों को सुरक्षित रखा; कुलीन वर्गों के विद्रोह को भी नियंत्रित किया (1485 ई०); तथा बल द्वारा ब्रिटैनी की उत्तराधिकारी ऐन को चार्ल्स अष्टम से विवाह के लिए विवश कर-शासक की स्थिति को और भी सुदृढ़ कर दिया।

चौदहवीं शताब्दी में, जब फ्राँस-इंग्लैंड युद्ध में रत थे तब इटली ने पूर्व के सभी व्यापार-मार्गों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था और वह अपनी समृद्धि के कारण नए युग के लिए आधार प्रस्तुत करने में सक्षम हुआ तथा पाश्चात्य संस्कृति का नवीन केंद्र-बिंदु बनकर उभरा। यह आधार, इटालियन पुनर्जागरण के लिए उत्तरदायी था, जिसकी सृजनात्मक शक्ति पेट्रार्क से लेकर माईकेल-ऐन्जेलो तक दो शताब्दियों तक प्रवाहित होती रही। इस काल की विशेषता जहाँ एक ओर मानववाद थी वहीं, दूसरी ओर, व्यक्तिवाद थी। 29 मई 1453 ई० को कुस्तुथतुनिया के पतन (अथवा तुर्को द्वारा विजित कर लिए जाने से) के कारण एशिया के साथ भूमध्यसागरीय समुद्र व्यापार -मार्ग पूरी तरह कट गए। यह मार्ग अनतत: सोलहवीं शताब्दी में फ्राँस के फ्राँसीस प्रथम तथा तुर्की सुल्तान सुलेमान के समझौते के बाद ही खुल सका था। किंतु, इस घटना ने नए-मार्गो की तलाश का मार्ग प्रशस्त किया-जिसकी पहल पुर्तगाल ने की। तत्पश्चात् स्पेंनी, अंग्रेजी, फ्राँसीसी व डच ने भी इस प्रक्रिया को बल व गति प्रदान किया। इन सबके परिणामस्वरूप, समृद्धि का केंद्र भी भूमध्यसागर से एटलांटिक महासागर को स्थानांतरित हो गया और इसके प्रकारान्तर में, यूरोप

का सामाजिक, राजनितिक व आर्थिक संतुलन ही परिवतर्तित हो गया। इन परिस्थितियों में पूँजीवादी व अफसरशाही पर आधारित आधुनिक यूरोप का उदय सम्भव हो गया।

दुर्भाग्यवश जब यूरोप के अन्य देश नए व्यापार मार्गों से लाभ कमाने लगे थे और, जबकि, फ्राँस भी पूर्णतः सक्षम था-उसने अपने अवसर गँवा दिए-एटलांटिक महासागर की दिशा में व्यापार-प्रयास के स्थान पर, उसने इटली विजय के प्रयास की भूल करदी। लगभग अर्ध शताब्दी तक फ्राँस के प्रयास निष्फल ही रहे और वह इटली में मात्र क्षणिक विजय ही प्राप्त कर सका, किंतु, दूसरी ओर, अनेक इटली निवासी इसी काल में आकर फ्राँस में स्थायी रूप से निवास करने लगे अतः एक प्रकार से, वे फ्राँस का औपनिवेशीकरण करने में सफल हो गए। चार्ल्स अष्टम जो कि अपने बाल्यकाल से ही इटली के स्वप्न देखा करता था-नेपल्स विजित करने में सफल भी रहा था, किंतु, इटली में जन विद्रोह के कारण उसे वापस लौटने को बाध्य होना पड़ा था (1494-1495 ई०)। 1498 ई० में इस शासक की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई-वह संतानहीन था अतः उसी का चचेरा भाई (कज़न) औरलीन्स का लुई, लुई द्वादश (XII) के नाम से गद्दी पर बैठा। वह भी मिलान विजित करने में सफल, किंतु, नेपल्स विजित करने में निष्फल रहा (1504 ई०)। कुछ वर्षों के उपरान्त, फ्राँस ने इटली में युद्ध पुनः प्रारम्भ कर दिया, जिसमें पोप जूलियस द्वितीय स्वयं वेनेशिया के विरूद्ध था-लुई सफल रहा (1509 ई०) किंतु, पोप ने पाला बदल लिया और वह फ्राँस के विरूद्ध इंग्लैंड, स्पेन, वेनिस तथा स्विस राज्यों का समर्थक हो गया। अप्रैल 1512 ई० में मिलान विजित करते हुए इन संयुक्त सेनाओं ने फ्राँस पर आक्रमण कर दिया-लुई पैसे से शांति खरीदने को इच्छुक हो गया। 1515 ई० में उसकी मृत्यु हो गई, व सत्ता उसके दामाद व "कज़न" फ्राँसिस प्रथम के हाथों में आ गई।

फ्राँसिस प्रथम ने अपने सैन्य अभियान द्वारा स्विस सेनाओं को पराजित कर के स्थायी शाँति की संधि पर हस्ताक्षर करने को बाध्य कर दिया। साथ ही, यह भी निश्चित किया, कि, फ्राँसीसी शासक वहाँ से भाड़े के सैनिक भी प्राप्त कर सकेगा तथा 1516 ई० में पोप लियो दशम ने 'बोलोग्ना का कोंकोर्डा' भी प्रदान कर दिया। इसी प्रकार, स्पेन के साथ नोयोन की संधि के आधार पर, फ्राँसीस प्रथम को मिलान तथा, नए स्पेनी शासक चालर्स को नेपलस प्राप्त हो गया।

इटली पर फ्राँसीसी अभियानों के परिणामस्वरूप जिन संबंधों की नींव पड़ी उसने फ्रँसीसी पुनर्जागरण को जन्म दिया, किंतु, फ्राँस में कला से अधिक साहित्य में पुनर्जागरण का प्रभाव पड़ा।

फ्राँसिस प्रथम व चार्ल्स पंचम

जहाँ ग्यारहवीं से लेकर पंद्रहवी शताब्दी तक के फ्राँस के इतिहास में हमें फ्राँस व इंग्लैंड के मध्य युद्ध का विस्तार उल्लेख मिलता है, वहीं सोलहवीं शताब्दी में आस्ट्रिया के साथ युद्ध का श्रीगणेश होता है, जिसकी प्रतिध्वनि व जिसके पूर्वाग्रह 1919 ई० की संधि तक को प्रभावित कर गए, वस्तुतः प्रतिद्वन्दिता के बीज उस काल में पड़ गए जब लुई एकादश ने अव्यवहारिक ढंग से 'चार्ल्स द बोल्ड' की पुत्री अर्थात् बर्गुन्डी की मेरी को आस्ट्रिया के मैक्समिलन के साथ विवाह के लिए विवश कर दिया था। जब 1516 ई० में युवा चार्ल्स पंचम स्पेन का नया शासक बना तो वह चार घरानों का उत्तराधिकारी था-बर्गुन्डी, आस्ट्रिया, एरेगौन तथा कैस्टाइल। इसी के तीन वर्ष बाद, बावजूद फ्राँसिस प्रथम की उपस्थिति के- वह अपने-आप को जर्मनी का सम्राट घोषित करवाने में सफल हो गया (1519 ई०) और तब उसकी आयु मात्र उन्नीस वर्ष थी।

चार्ल्स पंचम व फ्राँसिस प्रथम के प्रतिकूल व्यक्तित्वों के कारण विवाद तो अपरिहार्य प्रतीत होने ही लगा था। फ्राँसिस प्रथम को उत्तराधिकार में एक समृद्ध फ्राँस प्राप्त हुआ था, अतः उसका दरबार अपनी चमक-दमक व शान-शौकत में अद्वितीय था। किंतु, इसी अपव्ययता ने शीघ्र ही राजकोष रिक्त कर दिया। इस कारणवश, फ्रँासिस प्रथम को वित्तीय नियंत्रण के प्रयास करने पड़े; करों में वृद्धि करनी पड़ी; तथा, ऋण लेना प्रारम्भ कर दिया-आंतरिक स्रोतों से भी एवं विदेशी बैंकरों से भी; और अन्त में, राज्य के पदों की भी निलामी व बिक्री प्रारम्भ हो गई- इसने जहाँ अफरशाही को सशक्त किया वहीं कार्यालयों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि ने राज्य के केंन्द्रीयकरण को बढ़ावा दिया। लगभग सभी समृद्ध सामन्ती घराने समाप्त हो गए थे- सिवाय बूरबौं के और उसका स्वामी, चार्ल्स फ्राँसिस प्रथम की माँ से रूष्ट व असंतुष्ट होकर, सम्राट चार्ल्स पंचम की सेवा में चला गया।

फ्रांसिस प्रथम का केंद्रीयकृत राज्य तीन भागों में अर्थात् दिशाओं में-चार्ल्स पंचम के साम्राज्य से घिरा हुआ था अतः अपने विस्तार के लिए तो उसे अन्ततः उसी साम्राज्य से देर-सबेर टकराना तो था ही। दूसरी ओर, चार्ल्स पंचम का

साम्राज्य, फ्राँसिस प्रथम के राज्य का चौगुना-पंचगुना तो था ही। फिर भी, उसकी साम्राज्यी महत्वकांक्षाएँ संतुष्ट नहीं थी-वह बर्गुन्डी पर विशेषतया अधिकार करने का इच्छुक था, अतः फ्राँस-जर्मन युद्ध तार्किक व अपरिहार्य था। वह, यदि, इंग्लैंड के साथ समझौता कर लेता तो फ्राँस के निकास-द्वार तक बंद हो जाते, तथा, उत्तर एवं पूर्व में एक विजय ही पेरिस को असुरक्षति करने के लिए पर्याप्त थी। किंतु, उसकी अधीन राज्य सुदृढ़ नहीं थे – वे एक – दूसरे से भिन्न भी थे-यहाँ उसे मात्र फ्राँस से ही भय हो सकता था अतः यह भय निर्मूल करना आवश्यक था। किंतु, फ्राँस ने इन्हीं कोमल असुरक्षित क्षेत्रों पर आक्रमण किया-सेवौय (इटली) तथा लौरैन पर; जर्मनी के कुछ क्षेत्रों से संधि स्थापित की और साथ ही तुर्कों से भी समझौता कर लिया। चार्ल्स पंचम ने उत्तर से प्रोवेन्स पर आक्रमण भी कर दिया। दोनों पक्षों ने इंग्लैंड को अपना समर्थक और यदि नहीं, तो तटस्थ बनाने का प्रयास किया।

इंग्लैंड के हेनरी अष्टम ने फ्राँस के विरूद्ध समर्थन प्रदान किया व पहले युद्ध में फ्राँस को भारी क्षति का सामना करना पड़ा; फ्राँसिस गिरफ्तार हो गया तथा मेडरिड की संधि के कारण ही मुक्त हो पाया (14 जनवरी 1526 ई०), जिसके अनुसार राजकुमारों को बँधक के रूप में चार्ल्स को सौंपा तथा बर्गुन्डी का प्रान्त भी प्राप्त कर लिया। किंतु, मुक्त होते ही फ्राँसिस प्रथम ने बर्गुन्डी देने से इंकार कर दिया; सफल कूटनीतिक चालों द्वारा इंग्लैंड को अपनी तरफ कर लिया; जर्मनी के प्रोटेस्टेंट राजकुमारों से संधि कर ली तथा, तुर्की सुल्तान सुलेमान से भी समझौता कर लिया-जिसकी विजय सेनाएँ हँगरी में उपस्थित थीं तथा वियना पर दबाव बढ़ाकर, चार्ल्स के राज्य पर पीछे से प्रहार कर, उसे असुरक्षित कर रही थीं। अब चार्ल्स अपने सैन्य अभियानों में असफल तथा फ्राँसिस सफल होता गया। 1547 ई० में फ्राँसिस प्रथम की मृत्यु हो गई। उसका उत्तराधिकारी हेनरी द्वितीय था, जिसे फ्रांस में धर्म-सुधार आंदोलन से उत्पन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। इस बीच बीमार चार्ल्स पंचम ने 1555 ई० में सिंहासन त्याग दिया-उसके पुत्र फिलिप द्वितीय ने स्पेन, नेपल्स तथा आधुनिक नीदरलैंड्स का राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त किया; आस्ट्रिया, चार्ल्स के भ्राता फर्डिनेंड को सम्राट के पद के साथ प्राप्त हुआ-वो वेसे भी बोहेमिया व हंगरी का शासक था। 1557 ई० में पोप पौल चतुर्थ के कहने में आकर, हेनरी द्वितीय ने पुनः

युद्ध आमंत्रित करने की भूल कर दी। स्पेनी सेनाओं ने फ्राँस पर उत्तर से सफल आक्रमण कर दिया (1557 ई०) किंतु स्पेनी समर्थक इंग्लैंड से गाईस ने कैलेस वापस प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली (1558 ई०)। हेनरी द्वितीय धर्म-सुधार आंदोलन से उत्पन्न परिस्थितियों में व्यस्त हो गया तथा स्पेन ने संसाधन के अभाव में युद्ध स्थगित कर दिया। अत: दोनों ने अप्रैल, 1559 ई० में संधि कर ली। जुलाई 1559 ई० में हेनरी द्वितीय की मृत्यु हो गई।

□

[6]

फ्राँस में पुनर्जागरण-धार्मिक-विवाद-लुई चतुर्दश का काल

सोलहवीं शताब्दी के फ्राँस में इटली की ही भाँति व उसी की प्रेरणा एवं प्रभाव में फ्राँस में पुनर्जागरण का प्रसार हुआ और इस युग में-फ्राँस में स्थापत्यकार तथा मूर्तिकार अपनी दक्षता और मौलिकता से विश्व को प्रभावित करने में सफल रहे। लूवे के नए प्रासाद का कार्य पेरिस का पियरे लेस्कौट् प्रारम्भ करता है; इसी प्रकार फिनिबर्ट डैलौर्म, जीन बुलान्ट भी प्रसिद्ध स्थापत्यकार थे फ्राँसीसी मूर्तिकारों में माइकल कोलोम्ब लिग्यिर-रिशियर, पियरे बोंतेम्प्स तथा सर्वाधिक प्रसिद्ध जीन गौंजो नई शैली में दक्ष थे। पुनर्जागरण काल का महान कलाकार लोनार्डो द विंची अपने दिन फ्राँसिस प्रथम के अतिथि के रूप में फ्राँस में व्यतीत करता है और यही उसकी मृत्यु भी हो जाती है। सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मानववाद का प्रसार पश्चिमी यूरोप में गति से होता है। इसके प्रभाव में फ्राँसीसी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ रचनाकार इसी काल में अपनी कृतियों की रचना करते हैं, उदाहरण के लिए-गुईलौम बूदे, हेनरी ऐस्टाइन, कवि क्लेमेंत मरोत, प्लेइ आद जोएकिम दू बेले एवं रोन्सार्द; लेखक फ्रेंकोइस रेबेलैस, जीन काल्विन तथा मोंतेन। इस काल में विज्ञान ने भी अभूतपूर्व विकास देखा। इस काल की गतिविधियों ने कला को फैशन के रूप में स्थापित कर दिया।

किंतु, इस पुनर्जागरण ने मनुष्य के मस्तिष्क को उद्वेलित कर दिया। इस काल के आविष्कारों व भौगोलिक अन्वेषणों ने मानवीय विकास को एक नई गति प्रदान कर दी, जिसके परिणामस्वरूप लोग धर्म के स्वरूप, धर्माधिकारी के आचरण, बाइबल के वास्तविक अर्थों की खोज में तल्लीन हो गए और धीरे-धीरे, धर्म में सुधार की आवश्यकता का प्रश्न एक स्थापित मत का रूप धारण करने लगा और आन्तरिक धार्मिक सुधार के मुद्दे ने शीघ्र ही एक विरोध का रूप ग्रहण कर लिया, जिसकी चपेट में पूरा ईसाई-जगत ही आ गया।

आस्था के प्रश्न पर कुछ तो कैथोलिक चर्च से ही अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर गए। कुछ अन्य इसी मत में रहकर, आन्तरिक सुधारों के पक्षधर थे और, अन्ततः 'ट्रैन्ट की सभा' में वे ये सुधार क्रियान्वित करने में सफल भी हो गए- तथा, इस प्रोटेस्टेंट आन्दोलन के विरोध में प्रति धर्म सुधार अथवा कैथोलिक- मत सुधार आन्दोलन स्थापित कर गए। किंतु, धर्म के इस विवाद का, फ्राँस के ऊपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा-धार्मिक तथा धर्म-शास्त्र के सिद्धान्तों के विवाद ने दोनों तरफ कट्टर दृष्टिकोणों को जन्म देकर शत्रुता का रूप प्रदान कर दिया और फ्राँस एक बार पुनः संकट के घेरे में आ गया। राज्य की संप्रभु शक्ति के विरूद्ध तो 'पार्लेमेंट' एवं पेरिस विश्वविद्यालय उठ खड़े हुए; शहरी जनसंख्या ने भी विरोध करने की ठान ली। इन परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए तथा इन्हीं की आड़ में विदेशी शक्तियों ने एक बार पुनः फ्राँस में अतिक्रमण का प्रयास किया: स्पेनी दूत कैथोलिक फ्राँस की सुरक्षा के नाम पर चार्ल्स पंचम के पुत्र की साम्राज्यी महत्वाकांक्षा की पूर्ति का अवसर तलाश रहा था तो दूसरी ओर, इंग्लैंड की रानी प्रोटेस्टेंट मत की संरक्षिका के रूप में, वे शहर एवं बंदरगाह पाने का अवसर खोज रही थी, जो शत-वर्षीय युद्धों के दौरान उसके हाथों से निकल गए थे[20]। इसके अतिरिक्त इस धार्मिक-विवाद ने उत्तरी यूरोप में शासकों, सम्राटों व सामन्तों को अपने-अपने क्षेत्रों में चर्च की सम्पत्ति अपने अधीन करने का सुनहरा अवसर भी प्रदान कर दिया; तथा, वे चर्च को भी अपने अधीन करने के कार्य में जुट गए। इस विवाद के परिणास्वरूप, सरकार के लिए एक नवीन प्रश्न उठा, कि, वह आन्तरिक क्षेत्र में कौन-से धर्म अथवा मत को राजाश्रय प्रदान करे ? फ्राँसीसी शासक ने आस्था के स्थान पर राष्ट्रीय एकता को वरीयता प्रदान करते हुए, कैथोलिक मत का पक्ष लिया।

किंतु, लूथर से भी पूर्व एक बुजुर्ग फ्राँसीसी विद्वान लिफेव्र दे तेपल्स ने बाइबल के संप्रभु अधिकार का उद्‌घोष कर दिया था। और, वह चर्च मे आन्तरिक सुधार के सिद्धान्त का पक्षधर था। लूथर के लेखन का प्रचार व प्रभाव, फ्राँस में 1520 ई० के पश्चात्, दृष्टिगोचर होने लगता है और उसके अनुवादक लुई दि बर्कुइन को मृत्यु-दण्ड दिया जाता है (1529ई०)। 1534 ई० में चर्च के द्वार पर विरोध पत्र चिपका दिया जाता हे तथा, 1536 ई० में जौन कैल्विन की पुस्तक 'क्रिश्चियन इन्स्टीट्यूट्स' प्रकाशित होकर, प्रोटेस्टेंट मत के आधार, फ्राँस में स्थापित कर देती हैं। किंतु, फ्राँसिस प्रथम के कठोर कदमों से बचने के लिए कैल्विन बेसल में शरण लेने के लिए बाध्य हो जाता है। उसने मात्र प्रार्थना

के महत्व को रेखांकित करके, व्यर्थ के आडम्बरपूर्ण अनुष्ठानों का विरोध किया- वह लूथर से भी अधिक क्राँतिकारी तथा सुधारवादी था। चर्च के अधिकारियों में वरीयता क्रम को समाप्त कर, इन अधिकारियों के निर्वाचन के सिद्धान्त को प्रचलित किया। जेनेवा में राजनीतिक परिवर्तन के उपरान्त एक धार्मिक क्राँति हो चुकी थी। कैल्विन ने अपने-आप को वहीं स्थापित किया तथा, अन्य प्रोटेस्टेंट मतावलम्बी भी वहाँ शरण लेने हेतु पहुँचे। 1564 ई० में कैल्विन की मृत्यु हो गई तथा मृत्योपरान्त, उसका प्रभाव यूरोप में चतुर्दिक फैल गया।

किंतु, धर्म-सुधार आन्दोलन अथवा प्रोटेस्टेंट क्राँति जर्मनी, वर्तमान नीदरलैंड्स, स्विटजरलैंड के अधिकांश कैंटनों में स्थापित हो चुकी थी तथा हेनरी अष्टम के काल में इंग्लैंड ने भी रोम के साथ सम्बंध-बिच्छेद कर लिए थे। किंतु, फ्रांस के शासक ने कैथोलिक मत के विरूद्ध चल रहे इस आन्दोलन का भरपूर विरोध किया, कभी-कभी तो नृशंस हत्या तक करवा डाली (1545ई० का प्रोवेंस में वाउदोइस नर-संहार) किंतु, साथ ही, कैथोलिक-मत में आंतिरक सुधार की आवश्कता भी सबको स्पष्टतः समझ में आने लगी थी। अतः टाइरोल में ट्रेंट की आम-सभाएँ 1545 ई०, 1551 ई० तथा अन्तिम बार 1563ई० में हुई, जिसके द्वारा कैथोलिक चर्च में व्यापक-मौलिक सुधार प्रस्तावित हो निश्चित हो गए तथा कैथोलिक चर्च के सिद्धान्त भी परिभाषित व दोष-रहित कर दिए गए।

1559ई० में हेनरी द्वितीय की मृत्यु के समय फ्राँस में ऐसा कोई प्रान्त अथवा क्षेत्र शेष नहीं बचा था, जहाँ प्रोटेस्टेंट समुदाय न मिलें। उत्तराधिकारी के रूप में युवा हो रहे फ्राँसिस द्वितीय था, जो मेरी स्टुअर्ट का पति था। उसने मात्र सत्रह माह शासन किया, उसके बाद उसका भाई चलर्स पंचम जो मात्र दस वर्ष का था-नया शासक बना और उसके काल में महारानी-माँ अर्थात् हेनरी द्वितीय की विधवा, 'कैथरीन दि मेदिसी' ने वास्तविक सत्ता सम्भाली और एक चौथाई शताब्दी तक सत्ता पर प्रभाव बनाए रखने में वह सफल रही। वह शाँति की इच्छुक थी, क्योंकि, उसी के माध्यम से राजतंत्रीय विशेषाधिकार सुरक्षित रह सकते थे तथा, राजवंशीय सत्ता भी सुनिश्चित थी। वह कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेन्ट दोनों मतों के मध्य के विवाद को वार्ता द्वारा समाप्त करने हेतु प्रयत्नशील थी, अतः उसने 1561 ई० में एक ऐसी बैठक का आयोजन भी किया, किंतु सफलता नहीं मिली। जनवरी 1562 ई० में उसने प्रोटेस्टेंट मतावलम्बियों को ग्रामीण क्षेत्रों व शहरों की परिधि के बाहर, अपने ढ़ंग से पूजा-अर्चना का अधिकार प्रदान

कर दिया, किंतु, इसका उल्लघंन 1 मार्च 1562 ई० को गाइस के ड्यूक ने किया, जिसके फलस्वरूप वासी में प्रोटेस्टेंटों का जन-संहार हुआ। कोंडे के राजकुमार ने ताज के बढ़े हुए हाथ को अस्वीकार करते हुए क्रोध में विद्रोह कर, और्लीन्स पर अधिकार कर लिया। अत: फ्राँस में गृह-युद्ध का श्रीगणेश हो गया, जिसमें प्रोटेस्टेंटों को इंग्लैंड एवं जर्मनी तथा कैथोलिकों को स्पेन से सहायता का आश्वासन प्राप्त हो गया। अंतत: मार्च 1563 ई० की एम्बोइस की राजाज्ञा द्वारा कुछ वर्षों के लिए शाँति स्थापित हो गई।

1567 ई० में दोनों पक्षों के मध्य विवाद पुन: भड़का, 1569 ई० में प्रोटेस्टेटों को दो बार हार का सामना करना पड़ा। 1570 ई० में कैथरीन ने उन्हें चार सुरक्षित स्थल प्रदान कर फिर शाँति से स्थापित की। किंतु, सभा में कौलिग्नी की नियुक्ति (पुनर्नियुक्ति) से उसका प्रभाव युवा शासक चार्ल्स नवम पर बढ़ना स्वाभाविक था। अगस्त 1572 ई० में नेवारे के हेनरी (प्रोटेस्टेंटों का नेता) चार्ल्स की बहन मार्ग्रेट से विवाह करने को तैयार था। इस विवाह में प्रोटेस्टेंट भी बड़ी संख्या में उपस्थित रहने पेरिस पहुँचे, जिससे गाइस परिवार अत्यधिक रूष्ट व क्रुद्ध हो गया। कैथरीन को दूसरी तरफ शंका थी, कि, चार्ल्स उसके प्रभाव से न निकल जाए। 22 अगस्त को गाइस परिवार के एक सेवक की गोली से कौलिग्नी घायल व शासक नाराज हो गया। अत:, गृह-युद्ध के बादल फ्राँस के आकाश पर पुन: मंडराने लगे। 24 अगस्त को हेनरी 'दि गाइस' ने कौलिग्नी की हत्या स्वयं अपने निर्देशन में करवा दी। चार्ल्स नवम ने क्रुद्ध होकर अपने दरबार में उपस्थित प्रोटेस्टेंटों को मौत के घाट उतरवा कर गृह-युद्ध का उद्घोष कर दिया। अन्तत: चार्ल्स नवम ने शाँति स्थापित करवाई तथा, कुछ समय उपरान्त 1574 ई० में मात्र चौबीस वर्ष की उम्र में उसकी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् हेनरी द्वितीय व कैथरीन का योग्यतम पुत्र हेनरी तृतीय का सिंहासनारोहण हुआ।

हेनरी तृतीय एक अयोग्य तथा संतानहीन शासक था अत: जब उसके अंतिम भाई ऐलंकौन् की मृत्यु हो गई (1564 ई०), तब उत्तराधिकार का प्रश्न एक गम्भीर समस्या के रूप में उपस्थित हुआ। बूरबौन् वंशीय नेवारे का हेनरी निकटतम पुरुष उत्तराधिकारी था, किंतु, प्रोटेस्टेंट होने के कारण कैथोलिक चौकान्ने हो गए। कैथोलिकों ने 'होली लीग' अथवा पवित्र संघ की स्थापना गाइस के ड्यूक के नेतृत्व में इसी राजनीतिक उद्देश्य के लिए संगठित की। इन्हें स्पेन के फिलिप द्वितीय का भी समर्थन प्राप्त हो गया, जो अपने साम्राज्य विस्तार की योजना बनाने लगा। हेनरी तृतीय ने भी प्रोटेस्टेंट विरोधी दृष्टिकोण स्थापित करके फ्राँस में

"तीन हेनरियों" के युद्ध का सूत्रपात किया (1585-89 ई०)-हेनरी तृतीय, गाइस का ड्यूक हेनरी तथा नेवारे के हेनरी के मध्य! किंतु, कैथोलिक लीग की प्रारम्भिक सफलताओं से हेनरी तृतीय परेशान हो गया-उसे प्रतीत होने लगा कि वह पवित्र संघ (लीग) के हाथों कठपुतली होता जा रहा है। अतः गाइस के हेनरी की हत्या करवा दी-कैथोलिक उसके प्रत्यक्ष विरोधी हो गए और वह उनसे बचने हेतु नेवारे के हेनरी के साथ जा मिला, तथा जब दोनों की संयुक्त सेनाएँ पेरिस की घेरेबंदी कर रही थीं तब एक कट्टर भिक्षु ने हेनरी तृतीय की हत्याकर, वेलोइस-वंश का शासन समाप्त कर दिया (1 अगस्त, वे 1589 ई०)

अंततः ताज नेवारे के हेनरी को प्राप्त हुआ तथा उसने हेनरी चतुर्थ का विरूद धारण किया, किंतु, पवित्र संघ का विरोध व सैंय अभियानों का सामना उसे करना पड़ा, जिससे ऊककर उसने 1593 ई० में प्रोटेस्टेंट मत का परित्याग कर, कैथोलिक मत पुनः स्वीकार कर लिया। इस प्रकार फ्राँस में धार्मिक युद्धों का अंत हुआ और वह 1594 ई० में सिंहासनारूढ़ हो गया तथा फ्राँस की सत्ता पर बूरबौन् वंश स्थापित हो गया। फ्राँस को स्थायी धार्मिक - राजनीतिक शाँति प्रदान करने के लिए उसने नान्तेस की राजाज्ञा जारी कर दी (1598 ई०), जिससे प्रोटेस्टेंट धर्मावलम्बियों को पूजा का अधिकार; सार्वजनिक पदों का अधिकार आदि प्राप्त हो गए। उन्हें कुछ सुरक्षित-सशक्त स्थान भी प्रदान किए गए थे, जिसने राज्य के अन्तर्गत राज्य को स्वीकार कर-भविष्य के गृह-युद्ध की सम्भावनाओं को जागृत रखा। फिर भी, हेनरी चतुर्थ के ही कारण, फ्राँस, यूरोप का प्रथम राष्ट्र बन गया, जहाँ धार्मिक सहिष्णुता स्थापित हुई थी।[21]

तीस वर्षों के लम्बे गृह-युद्धों के पश्चात्, फ्राँस मृत-रूप में प्रतीत होता था। जन-सामान्य एवं मध्यम वर्ग कानून-व्यवस्था व आन्तरिक शाँति के आकांक्षी थे और इन्हीं परिस्थितियों-मनःस्थितियों ने फ्राँस में सशक्त राजतंत्र को अपरिहार्य बनाकर, उसकी सफलता सुनिश्चित कर दी थी। हेनरी चतुर्थ ने आंतरिक शाँति स्थापित करके बाह्य शाँति के लिए वर्विन्स की संधि पर हस्ताक्षर कर के, स्पेन के साथ युद्ध को समाप्त कर दिया। तत्पश्चात् उसने कुलीनों की शक्ति को नियंत्रित करने की नीति पर क्रियान्वयन प्रारम्भ कर दिया तथा, सली के ड्यूक (वित्त-मंत्री) की सहायता से फ्राँस के अर्थिक पुनर्गठन का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। आर्थिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार को समाप्त कर ईमानदारी को प्रश्रय देकर, बजट का घाटा समाप्त कर दिया; कृषि को भी प्रोत्साहित किया गया व खाद्यान्नों के क्रय-विक्रय में चुंगी-व्यवधानों को भी समाप्त कर दिया; उत्पादन तथा व्यापार को

भी प्रेरित किया गया और इसी के लिए, अमेरीका के उपनिवेशन को भी प्रश्रय प्रदान किया गया। हेनरी चतुर्थ ने ही फ्राँस में रेशम उद्योग की स्थापना की। इस प्रकार से आंतरिक शाँति व समृद्धि सुनिश्चित करके, वह विश्व में फ्राँस की स्थिति सुदृढ़ करने के लिए प्रयासरत हो गया। उसे समझ में आ गया था, कि, हैप्सबर्ग को पराजित करे बिना यह सम्भव नहीं है, किंतु, इस नीति के क्रियान्वयन से पूर्व ही उसकी हत्या हो गई (मई 1610 ई०) किंतु, इसी विदेश नीति के क्रियान्वयन के फलस्वरूप रिशलू, मैज़ैरिन एवं लुई चतुर्दश फ्रांस को विश्व के रंगमच पर स्थापित करने में सफल हो सके।

हेनरी चतुर्थ की मृत्योपरान्त, उसका नौवर्षीय पुत्र लुई त्रयोदश गद्दी पर बैठा, किंतु संरक्षिका उसकी माँ मैरी दि मेदिसी बनी, जिसने अपने पति की नीतियों के विरूद्ध कार्य प्रारम्भ कर दिया। उसने स्पेन के साथ समझौता करते हुए, फ्राँस के प्रोटेस्टेंट समर्थकों को त्याग दिया। उसके संरक्षणत्व में फ्राँस एक बार पुनः गृह-युद्ध के कगार पर पहुंच गया था, कि, सौभाग्य से रिशूल के आगमन से पूरा परिदृश्य ही परिवतर्तित हो गया 11617 ई० में लुई ने शासन अपने हाथों में ले लिया तथा 1624 ई० में रिशलू को अपना प्रधान-मंत्री नियुक्त कर दिया। इस तारीख से अगले अठारह वर्षों तक फ्राँस पर उसी का प्रभाव रहा।

रिशलू के समस दो कार्य थे-फ्राँस में शासक को सर्वसत्ताधारी बनाना तथा यूरोप में फ्राँस को सर्वशक्तिशाली बनाना। जहाँ तक सम्राट की स्वेच्छाचारिचता का प्रश्न था, तो इसके तीन प्रमुख व्यवधान थे: एक, अभिजात वर्ग; दूसरे, हयूगनौट्स तथा, तृतीय, पार्लेमेन्त। हयूगनौट्स को विशेषाधिकार प्राप्त हो गए थे, जिनसे सुरक्षित वे षडयंत्र व विद्रोह करते थे-उनके अभेद्य समझे जाने वाले ला रोशेल को विजित करके, रिशलू ने उन्हें एलाएस की संधि द्वारा कैथोलिकों के समान अधिकार तो प्रदान कर दिए, किंतु, उनके राजनीतिक विशेषाधिकार समाप्त कर दिए, ताकि, वे स्वतंत्र संप्रभु राजनीतिक इकाई में परिवर्तित न हो जाएँ। अभिजात् वर्ग को भी नियंत्रित करने के विभिन्न प्रयास किए गए। उनके दुर्गों को असुरक्षित कर दिया; उनके द्वन्द-युद्ध पर रोक लगा दी गई। कुलीनों ने प्रतिरोधस्वरूप षडयंत्र करके शासक को अपदस्थ व रिशलू की हत्या करने का प्रयास किया-षडयंत्र खुलते ही रिशलू ने न्यायिक दण्ड व शेष को बल द्वारा आतंकित करके नियंत्रित रहने को विवश कर दिया। अब उसने केंद्रीकरण हेतु प्रत्येक प्रान्त में एक नए प्रकार के राज्याधिकारियों अथवा 'इंटेंडेंटों' की नियुक्ति प्रारम्भ कर दी, जिंहें अपने प्रान्तों में वित्तीय, न्यायिक व पुलिस प्रशासन के पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। इनके

द्वारा जहाँ कुलीनों के समस्त अधिकार समाप्त हो गए वहीं, चूँकि, वे शासक द्वारा नियुक्त होते थे, अत: सत्ता शासक के हाथों में केंद्रित हो गई। अन्तत: रिशलू ने फ्राँस की सामन्ती पार्लेमेन्त की बैठक बुलवाकर उसे बेकार संस्था में परिणित कर दिया- वह अब मात्र न्यायिक कार्य ही करती थी, तथा प्रान्तीय सभाओं की आवश्यकता को नकारती थी। इस प्रकार प्रतिनिधि संस्थाओं के नियोजित ह्रास का लाभ शासक को ही प्राप्त हुआ, जो इसके चलते निरंकुश अधिकारों का स्वामी हो गया।

फ्रांस को विश्व-शक्ति के रूप में स्थापित करने हेतु उसने स्पेन व आस्ट्रिया पर प्रभुत्व वाले हैप्सबर्ग वंश के प्रभुत्व के विरूद्ध युद्ध का संचालन किया। 1618 ई० में बोहेमिया ने हैप्सबर्ग के विरूद्ध विद्रोह किया जो पहले गृह-युद्ध में, तत्पश्चात्, डेनमार्क, स्वीडन, संयुक्त प्रान्त (युनाइटेड प्रोविन्सिसेज़), स्पेन तथा अन्त में फ्राँस के सम्मिलित हो जाने के कारण एक यूरोपीय-युद्ध में परिणित हो गया, जिसे तीस-वर्षीय युद्ध कहते हैं। 1625 ई० में स्पेनी मिलान तथा जर्मनी के मध्य प्रमुख मार्ग अवरूद्ध करने हेतु वैल्टेलाइन पर आधिपत्य स्थापित कर लिया गया । कैथोलिक होते हुए भी उसने यूरोप के प्रोटेस्टेंट देशों की सहायता कर सम्राट के विरूद्ध संयुक्त रूप से युद्ध करने को प्रेरित किया-डच को अर्थिक सहायता व थोड़ी सहायता इंग्लैंड व डेनमार्क को भी इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रदान की तथा युद्ध के अंतिम चरण में तो वह स्वयं युद्ध में कूद पड़ा। उसने पुर्तगाल तथा केटालोनिया के प्रान्त को विद्रोह के लिए उकसाया-इसकी आड़ में उसने रौसिलों प्राप्त कर के, पायरनीस तक फ्राँसीसी पुनर्प्रसार के द्वार खोल दिए। हाँलाकि, वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति अपने जीवन काल में नहीं देख पाया। फिर भी, मेज़रीन ने इन्हीं नीतियों को उनके तार्किक अन्त तक पहुँचा कर फ्राँस, को यूरोप में महत्वपूर्ण स्थान पर स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। रिशलू की मृत्यु 4 दिसम्बर 1642 ई० को तथा उसके स्वामी लुई त्रयोदश की उसके पांच माह पश्चात् 14 मई 1643 ई० को हो गई।

लुई त्रयोदश की मृत्यु के समय उसका पुत्र जो लुई चतुर्दश के विरूद के साथ सिंहासनारूढ़ हुआ, मात्र चार-वर्षीय था अत: एक संरक्षक-परिषद का वह निर्माण कर गया था, जिसको उसकी विधवा, आस्ट्रिया की ऐन ने अस्वीकार कर के, मात्र मैज़रिन को ही सलाहकार नियुक्त करके, शासन करना शुरू कर दिया। सर्वप्रथम, मेज़रीन कुलीन वर्ग के विरोधी संगठन का उन्मूलन कर अपनी व ऐन की सत्ता सुरक्षित कर ली, किंतु, अर्थिक क्षेत्र में वह विरोध का उन्मूलन

नहीं कर सका। तीस-वर्षीय युद्ध के चलते बढ़ते व्यय के लिए आतिरिक्त कर लगाने पर पेरिस की पार्लियामेंट ने अन्ततः सभी संस्थाओं की बैठक आहूत कर 'सत्ताइस आर्टिकल्स' प्रपत्र सौंपकर, शासक के कर निर्धारण के विशेषाधिकार को सीमित कर दिया। किंतु, ऐन ने इसका विरोध कर के, जन-विरोध अथवा 'फ्रोंड' को जन्म दे दिया। अन्ततः मार्च 1649 ई० में शाँति स्थापित हो सकी; किंतु, 1650 ई० में ऐन द्वारा उनके नेता कोंडे के बंदी बनाए जाने से गृह-युद्ध फिर भड़का-मेज़रिन, कोंडे को मुक्त सत्ता सौंपकर सत्ता त्याग का प्रदर्शन कर के, जर्मनी चला गया। किंतु, विरोधी संकल्पहीन व प्रशिक्षणहीन होने के कारणवश, फ्राँस पुनः राजनीतिक अराजकता में फँस गया। कोंडे स्वयं पेरिस वासियों से अलग होकर, स्पेनियों से मिल गया (सितम्बर 1651 ई०) अतः अक्टूबर 1652 ई० में संसद ने स्वयं संरक्षक व शासक को शासन हेतु पुनर्निमंत्रित किया।

विदेश नीति में मैज़रिन ने मात्र रिशलू की नीति का पालन किया। 1643 ई० में कोंडे की स्पेनियों पर प्राप्त विजय (रोक्रोई में) ने उसकी विदेश नीति की सफलता का उद्घोष किया-इससे फ्राँस की उत्तरी सीमा भी सुरक्षित हो गई। इस युद्ध के अंतीम वर्षों में फ्राँस के दोनों सेनापतियों कोंडे व ट्यूरेन्न ने साम्राज्यी सेनाओं पर अनेक महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं। बवेरिया के मैक्समिलन को पराजित किया तथा वियना को भी अपने अभियान से असुरक्षित कर दिया तथा, नए सम्राट फर्डीनेन्ड तृतेय को 'वेस्टफैलिया की संधि' पर हस्ताक्षर करने को विवश कर दिया। इस प्रकार 1648 ई०। में 'तीस वर्षीय युद्ध' समाप्त हो गया। इस संधि के अनुसार प्रोटेंस्टेंट मत और विशेषतयः काल्विनवाद यूरोप में मान्यता प्राप्त धर्म हो गया-उन्हें कैथेलिकों के समानाधिकार प्राप्त हो गए तथा इस संधि से फ्राँस को मेट्ज़, तोउल एवं वर्दून के धर्म-प्रान्त (बिशप्रिक) प्रान्त प्राप्त हुए; उसे स्ट्रासबर्ग छोड़कर शेष पूर्ण एल्सेस प्राप्त हुआ। इससे राह्इनलैण्ड में स्थान पाकर जर्मनी का द्वार भी फ्राँस के लिए खुल गया। इस प्रकार रिशलू की योजनाएँ पूर्ण हुईं-उसी की नीति के अनुसरण द्वारा ! मैज़रीन की 8 मार्च 1661 ई० को मृत्यु हो गई।

लुई चतुर्दश तब बाईस-वर्ष का था। उसने सभी सत्ताधिकार अपने हाथों में संरक्षित कर लिए, तत्पश्चात् बावन वर्षों तक उसने स्व-शासन किया और अंततः, अपने लिए एक देव-तुल्य स्थान अर्जित कर लिया और जनता ने उसके आगे सिर झुका दिया, किंतु, उन्हें अनुभव होने लगा, कि, शासक उनके बीच

का नहीं हैं और, 'फ्रॉंसीसी मात्र उसी से प्रेम करना जानते थे जो उनका अपना हो'[22]। फिर भी, उसके काल में राष्ट्रीय एकता बनी रही-फ्रॉंसीसी शासकों के पास न तो वक्त था, न इच्छा थी, न ही उनकी नीति थी, कि, वे एक संस्थागत कुलीन तंत्र की स्थापना फ्रॉंस में होने दें-वे अपनी स्वेच्छाचारिता के लिए ही अधिक उत्सुक रहते थे। अतः उसके काल में भी प्रशासन में मध्यम-वर्गीय नव कुलीनों का वर्चस्व बना रहा, किंतु, यह भी उसी के काल की विशेषता थी, कि, उसने बिना उनकी प्रेरणा को प्रतिबंधित व दासत्व-प्रदान करे ही, सर्वाधिक बुद्धजीवियों-लेखकों को राज्याश्रय-प्रदान किया। इसी प्रकार, समकालीन कलाओं को भी उसने प्रश्रय दिया।

इस प्रकार अपना व्यक्तिगत शासन स्थापित व व्यवस्था सुदृढ़ करके, उसने जीनबैपटिस्ट कोल्बर्ट को अपना वित्तीय निरीक्षक (कन्ट्रोलर-जनरल ऑफ् फाइनेन्सेस) 1665 ई० में नियुक्त किया-जिसके फलस्वरूप वित्तीय संरक्षण की प्रक्रिया शुरू हो सकी। पंद्रहवीं शताब्दी के अन्त से ही, फ्रॉंस अपने संसाधनों का व्यय ही करता रहा था-उसने उन्हें नियोजित ढंग से बढ़ाने का प्रयास नहीं किया। वह व्यापार से अधिक युद्धों में संलग्न रहा। अतः सामान्य आर्थिक विकास व व्यवसायिक एवं जल-सेना के विकास में न केवल पहले शुरू हो चुके देशों-पुर्तगाल तथा स्पेन से पिछड़ा, अपितु, इंग्लैंड व हौलैण्ड से भी पिछड़ने लगा। अतः 1661 ई० के बाद फ्रॉंस के समक्ष दो विकल्प थे-एक, वह अपने संसाधनों का विकास करे व व्यापारिक-वृद्धि करे एवं यूरोप में अपने राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना करे। लुई चतुर्दश के समक्ष दोनों विकल्प थे। अपने शासन के प्रथम काल में उसने दो उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयास किया और वह सफल रहा, किंतु, जब दूसरे काल में मात्र प्रभुत्व के प्रसार में संलग्न हुआ तो फ्रॉंस हतोत्साहित व शक्तिहीन हो गया।

सौभाग्य से उसका पहला काल कौल्बर्ट के प्रशासन का काल है। कौल्बर्ट के विचारानुसार किसी भी राज्य की समृद्धि उसकी शक्ति का निर्धारण करती हैं। अतः उसने सर्वप्रथम लेखा को फ्रॉंस में सुदृढ़ आधार प्रदान करते हुए आय-व्यय पर पूर्ण नियंत्रण कर, बजट प्रक्रिया प्रारम्भ की; उसने सुनियोजित ढंग से औधोगिक विकास किया-वस्त्र-उद्योग, चित्रपट (टेपिस्ट्री), रेशम व स्वर्ण उत्पादन एवं उनसे निर्मित वस्तुओं का उत्पादन, शीशों का निर्माण, स्टील व अस्त्र-शस्त्र निर्माण तथा लेस का उत्पादन फ्रॉंस में होने लगा। इन उद्योगों को उसने राज्याश्रय भी प्रदान कर दिया। किंतु, उसे ज्ञात था कि बिना क्रय के उत्पादन

व्यर्थ है अतः इसको प्रोत्साहित करने के लिए उसने चुंगी आदि की व्यवस्था की; विदेशी उत्पादों से प्रतिद्वन्दिता के दृष्टिकोण से, आयातित माल पर ऊँचे कर लगाकर अपने को संरक्षण भी प्रदान किया। किंतु, उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य था-फ्राँस को एक नो-सैनिक तथा व्यापारी-बेड़ा प्रदान करना! वह फ्राँस को उतना ही विस्तृत औपनिवेशिक साम्राज्य प्रदान करने का इच्छुक था, जैसा, अन्ततोगत्वा, इंग्लैंड के भाग्य में आया। जिस प्रकार व्यापार उद्योग को प्रेरित-प्रोत्साहित किया था, वेसे ही, कृषि को भी प्रश्रय प्रदान किया गया-कृषि से संलग्न पशु-पालन आदि पर भी राज्य ने ध्यान दिया। जल-संसाधन व वन्य-संसाधनों के प्रयोग के भी नियम निर्धारित कर दिए गए। इसी प्रकार, विधि-नागरिक व आपराधिक-दोनों का निर्माण करवाया गया। इस प्रकार, हम कह सकते हैं, कि, रिशलू के साथ-साथ कौल्बर्ट भी आधुनिक फ्राँस का निर्माता था।[23]

सैन्य-पुनर्गठन के क्षेत्र में भी लुई चतुर्दश को एक योग्य प्रशासक के रूप में लोवोइस प्राप्त हो गया था। भर्ती करने की विधि से अस्त्र-शस्त्र तक, सब कुछ आधुनिक हो गया तथा, सैन्य-अस्पतालों का निर्माण भी द्रुत गति से हुआ। उसने युद्ध-कार्यालय (वौर ऑफिस) का निर्माण कर-सैंय-संचालन के महत्त्व को समझा व स्पष्ट किया। पुनर्गठन सेना की प्राप्ति के कारण, पुनर्गठित लुई चतुर्दश अब फ्राँस का प्रभुत्तव स्थापित करने में तल्लीन हो गया-उसका ध्यान पतन की ओर अग्रसर स्पेन पर गया-वह नीदरलैंण्ड्स को स्पेन से पृथक करके, स्पेन के सिंहासन पर बूरबौन् वंशीय व्यक्ति को विराजमान करने का इच्छुक था। उसने स्पेन के विरूद्ध पर्तगाल को स्वतंत्रता के लिए उकसाया तथा उसकी अंतराष्ट्रीय स्थिति सुदृढ़ करने की दृष्टि से, पुर्तगाल व इंग्लैंड के मध्य वैवाहिक गठबंधन स्थापित कर दिया।

वह स्पेनी नीदरलैंड्स प्राप्त करने का इच्छुक था अतः अन्तरण (डेवोल्यूशन) के सिद्धान्त के चलते उसने अपना दावा भी प्रस्तुत किया, जिसे स्पेन के चार्ल्स द्वितीय ने इंकार कर युद्ध का श्रीगणेश कर दिया। लुई ने स्पेन के फिलिप चतुर्थ की पुत्री मेरिया थेरेसा से विवाह किया था अतः अन्तरण के द्वारा, फिलिप चतुर्थ की मृत्योपरान्त वह उसपर स्वामित्व का इच्छुक था। लुई ने फ़्लैण्डर्स पर आक्रमण करके अनेक दुर्गों पर तथा फ्राँचे-कोम्ते पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। हॉलैण्ड ने प्रतिरोधस्वरूप इंग्लैंड एवं स्वीडेन के साथ त्रिगुट संधि (ट्रिपल एलाइन्स) कर, लुई को ए-ला-शेपेल की संधि मानने को विवश कर दिया, जिसके अनुसार

फ्राँचे-कोम्ते तो वापस देना पड़ गया, किंतु, नीदरलैंण्ड्स के शेष दुर्ग फ्राँस के पास ही रह गए।

अपने उपरोक्त प्रसार में हौलैण्ड को अवरोधक मानकर; तथा, अपने विरोधी हयूग्नौट्स को उनके द्वारा प्रश्रय प्रदान करने पर वह क्रुद्ध हो उनके विरूद्ध कार्यवाही के लिए बाध्य हुआ-फिर व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता ने आग में घृत का कार्य किया। किन्तु, एक अच्छे कूटनीतिज्ञ की भाँति, उसने इंग्लैण्ड के साथ डोवर की गुप्त संधि करके, उसे हौलैण्ड से अलग कर दिया; स्वीडन को रिश्वत द्वारा अपने पक्ष में कर लिया एवं सम्राट लियोपोल्ड प्रथम को निष्पक्ष रहने हेतु तैयार कर लिया। तत्पश्चात् 1672 ई० में युद्ध प्रारम्भ कर दिया तथा अनेक प्रान्त हस्तगत कर लिए। किंतु, अब तक पूरा यूरोप ही फ्राँस के महत्वाकांक्षी सैन्य अभियानों से चौकन्ना हो उठा तथा स्पेन, सम्राट एवं जर्मन राज्य, हौलैण्ड के पक्षधर हो गए। इंग्लैंड में भी जनमत ने चार्ल्स द्वितीय को हौलैण्ड के साथ संधि करने के लिए विवश कर दिया। यह युद्ध अब एक यूरोपीय युद्ध में परिवर्तित हो गया, जिसमें फ्राँस ने कुछ महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त की, किंतु, दोनों ही पक्ष, थक-कर, शाँति के लिए बाध्य हो गए व 'निमवेगेन की संधि' (1678 ई०) ने शाँति स्थापित कर दी, जिसके अनुसार फ्राँस को फ्राँचे-कोम्टे व नीदरलैण्ड्स के अनेक दुर्ग प्राप्त हो गए शेष क्षेत्र उसने वापस लौटा दिए-मात्र ऐलशेस को छोड़कर। अतः, उसकी सत्ता व शक्ति पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा - उसने 'चेम्बर्स औफ् रीयूनियन' नामक कुछ न्यायालयों की स्थापना, जीते हुए प्रान्तों के आश्रित-राज्यों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने हेतु की तथा, इस प्रकार से, साम्राज्य के बीस महत्वपूर्ण शहर, जिसमें लक्समबर्ग व स्ट्रासबर्ग केसाथ, इटली का कैलेस-सम्मिलित थे, प्राप्त कर लिए। इस प्रकार, उसके राज्य के साथ-साथ उसकी प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई।

किंतु, इसी के बाद, अनेक रिक्त बिशपों के स्थानों से आर्थिक लाभ व उनपर शासक के इच्छानुसार नियुक्ति के प्रश्न पर पोप से उसके मतभेद हो गए। यही नहीं, उसके कट्टरपन के चलते, पाक जैनसैनिस्ट मतावलम्बियों पर अत्याचारों में भी वृद्धि हुई और, अन्त में, मदान्ध (सत्ता के कारण) लुई ने नैन्टस के नियम समाप्त करके, प्रोटेस्टेंटों की स्वतंत्रता ही समाप्त कर दी। हयूगनौट भी देश से पलायन करने को बाध्य हुए, जिसके परिणामस्वरूप, फ्राँस के उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा-तथा, इससे इंग्लैंड, हौलैण्ड व ब्रैन्डनबर्ग जेसे अनेक प्रोटेस्टेंट देशों को लाभ मिल गया। इसके चलते, यूरोप के प्रोटेस्टेंट राज्य भी

फ्राँस के विरोधी हो गए तथा फ्राँस के विरूद्ध सम्राट विलियम का साथ देने को तैयार हो गए एवं 1686 ई० में आग्स्बर्ग संघ (लीग औफ़् औग्स्बर्ग) का निर्माण किया। इस संघ के सदस्य-हौलैण्ड, स्पेन, स्वीडन तथा सम्राट विलियम थे, किंतु, गोरवमयी क्राँति के पश्चात् विलियम ही इंग्लैंड का शासक बन गया तब इंग्लैंड भी इस संघ में सम्मिलित हो गया। जहाँ रिशलू ने यूरोप के प्रोटेस्टेंट शासकों को हैप्सबर्ग के विरूद्ध एकजुट किया था, वहीं लुई चतुदर्श ने उस नीति का परित्याग करके, फ्राँस को संकट के कगार पर पहुँचा दिया। इस संघ के निर्माण से 1688 ई० में युद्ध प्रारम्भ होकर, 1697 ई० तक चलता रहा और, अन्ततः, दोनों पक्षों ने राइसविककी संधि द्वारा 1697 ई० में शाँति स्थापित कर दी, जिसके अनुसार, स्ट्रसबर्ग के अतिरिक्त शेष सभी क्षेत्र व शहर लुई ने समर्पित कर दिए तथा विलियम को इंग्लैंड का शासक भी स्वीकार कर लिया। स्पेनी उत्तराधिकार के प्रश्न के उभरने के कारण भी, लुई शाँति व व्यवधान रहित एकाग्रता चाहता था। चार्ल्स द्वितीय की अस्वस्थता के कारण, उसकी मृत्यु से पूर्व ही, उत्तराधिकार का प्रश्न एक ज्वलन्त मुद्दा बन गया था। फ्राँस, आस्ट्रिया तथा बैवेरिया, जो वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा स्पेनी राजवंश से सम्बन्द्ध थे, वे इस प्रश्न से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए थे, वस्तुतः, चार्ल्स द्वितीय, लुई चतुर्दश का साला था अतः वह डौफ़िन को उत्तराधिकारी घोषित करवाकर, बूरबौन् वंश को स्पेन में भी स्थापित करना चाहता था। इसी प्रकार, लुई की पत्नी मेरिया (तथा चार्ल्स) की बहन मारग्रेट का विवाह लियोपोल्ड प्रथम से हुआ था-वह अपनी पुत्री मारिया ऐन्तोनियों को उत्तराधिकारी मानती थी, अतः बैवेरिया के जोसेफ़ फर्डीनेन्ड को उत्तराधिकारी मानती थी; किंतु, उसके पति ने जोसेफ़ के स्थान पर अपना दावा प्रस्तुत कर दिया-फ्राँस व आस्ट्रिया के दावे को स्वीकार करने से यूरोपीय सत्ता-संतुलन बिगड़ जाता और, यूरोपीय युद्ध की सम्भावना को टालने के लिए, इंग्लैंड के विलियम तृतीय व फ्राँसीसी लुई चतुर्दश ने विभिन्न दावेदारों के मध्य कुछ स्पेनी प्रान्तों के वितरण का निर्णय ले लिया। किंतु, इन गतिविधियों से क्रुद्ध होकर अपनी मृत्यु-शैय्या पर पड़े चार्ल्स ने एक वसीयत द्वारा अपना समस्त राज्य एनजो के फिलिप को दे डाला (यह लुई चतुर्दश का पौत्र डौफ़िन का द्वितीय पुत्र था) और लुई के इंकार करने पर, यह आर्कड्यूक चार्ल्स को प्रदान हो जाना था। किंतु, विभाजन की पूर्व संधियों का अनदेखा कर, लुई ने यह वसीयत स्वीकार कर ली-और यूरोपीय शासक हतप्रभ रह गए। यह स्पष्ट हो गया, कि, लुई स्पेन व फ्राँस को एकीकृत करने का इच्छुक है। अतः विलियम

तृतीय के नेतृत्व में महागुटीय संघ (ग्रैंड एलाइन्स) निर्मित हुआ, उधर लुई ने हौलैण्ड के सीमान्त दुर्गों पर अधिकार कर लिया तथा जेम्स द्वितीय के पुत्र को इंग्लैंड का शासक स्वीकार कर, इंग्लैंड के उत्तराधिकार के प्रश्न पर हस्तक्षेप का प्रयास किया। स्वाभाविक ही था, कि, ये दोनों देश क्रुद्ध हो गए। 1701 ई० में इटली से युद्ध की शुरूआत हो गई-1709 ई० तक फ्राँसीसी सेना खदेड़ी जा चुकी थी, किंतु लुई का पौत्र फिलिप पंचम, स्पेनी सिंहासन पर आरूढ़ था और वह अब शाँति का इच्छुक था, किंतु, विरोधी संघ के इच्छानुसार वह अपने पौत्र को बल द्वारा अपदस्थ करने के विरूद्ध था, अत: शाँति सम्भव नहीं थी। तभी 1710 ई० में इंग्लैंड में राजनीतिक सत्ता के परिवर्तन के फलस्वरूप, बनी टोरी सरकार हर हालत में, शाँति की पक्षधर थी, अतः यूट्रेक्ट की संधि 1713 ई० में सम्भव हो सकी, जिसके अनुसार लुई का पौत्र फिलिप पंचम, स्पेन के शासक के रूप में स्वीकृत हो गया; फ्राँस ऐलसैस (स्ट्रैसबर्ग सहित) रख सकता था, किंतु, राहइन के दाएं तट पर अधिकृत किए गए दुर्ग उसे वापस करने पड़े। सम्राट ने एक पृथक 'रास्टाड' की संधि द्वारा फ्राँस के साथ शाँति स्थापित की।

हाँलाकि, इस युद्ध के परिणामस्वरूप फ्राँस के क्षेत्रीय नुकसान निम्न, थे फिर भी, वह पूर्णत: शक्तिहीन हो गया था। उसके ऋण बहुत अधिक बढ़ गए थे तथा यूरोपीय प्रतिष्ठा में अभूतपूर्व कमी आ गई थी। जनता में असंतोष व्याप्त था तथा इसने, पहली बार, शासक की नीति के विरूद्ध अपने को अभिव्यक्त किया, अत: फ्राँस के आंतरिक विकास व इतिहास के दृष्टिकोण से यह हानिकारक प्रमाणित हुआ। लुई चतुर्दश की अन्तत:, सितम्बर 1715 ई० को मृत्यु हो गई। जिस स्थिति में फ्राँस उसकी मृत्यु के समय पहुँच गया था, उसमें उसे चार्ल्स पंचम अथवा लुई एकादश अथवा एक हेनरी चतुर्थ की आवश्यकता थी, किंतु, दुर्भाग्यवश, उसे लुई पंचदश जैसा बिगड़ा हुआ बालक उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुआ !

□

[7]

फ्राँस की क्राँति

अठारहवीं शताब्दी का पूर्वाद्ध, फ्राँस के लिए एक नाजुक मोड़ था। नया शासक लुई पंचदश पाँच वर्षीय अनाथ बालक, लुई चतुर्दश का प्रपौत्र था तथा उसके संरक्षक का दायित्व पूर्व शासक के भतीजे, औरलीन्स के फिलिप के ऊपर आ गया हाँलाकि, लुई चतुर्दश ने एक परिषदीय व्यवस्था की थी। यह संरक्षण का काल आठ वर्ष अर्थात् 1715 ई० से 1723 ई० तक चला। यह वस्तुतः आराम का काल था-यह गतिविधियों से पलायन का संधि-काल था। लुई चतुर्दश ने करोड़ों लीव्र का ऋण राज्य पर छोड़ा था। इसको चुस्त-दुरूस्त करने का बीड़ा जौन लौ नामक स्कौटलैण्ड वासी वित्त-विद् ने उठाया, जिसे बैंकिंग के विषय में अच्छा ज्ञान था। उसने 1716 ई० में एक बैंक की स्थापना की, जो 1718 ई० में स्टेट बैंक में परिणित हो गया। इसी प्रकार, व्यापार-व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु उसने मिसिसिपी कम्पनी तथा कम्पनी औफ़ द इण्डीज़ का निर्माण किया-किन्तु दो वर्षो में ही यह बैंक बैठ गया। (1720 ई०) 1723 ई० में संरक्षक की भी मृत्यु हो गई। लुई पंचदश अपने शिक्षक फ़्ल्यूरी के प्रभाव में था अतः डुक दी ब्रबौन को समस्त अधिकार सौंप दिए गए, किंतु, उसे 1726 ई० में हटाकर फ़्ल्यूरी ने अधिकार अपने हाथों में केंद्रित कर लिए तथा सत्रह वर्षों तक फ्राँस का प्रशासन सम्भाला-बाह्य शाँति व आन्तरिक सुदृढ़ आर्थिक आधार के चलते, देश पर से संकट के बादलों को दूर रखा, औरीं की सहायता से पूराने कौल्बर्ट-सिद्धान्तों पर, वित्तीय-व्यवस्था सुधारी गई। फ़्ल्यूरी के काल में मात्र जेनसेनिस्टों के विरोध का सामना करना पड़ा। वह इटली के अलेबेरोनी से यूट्रेक्ट की संधि द्वारा स्थापित व्यवस्था को सुरक्षित रखने का इच्छुक था अतः हौलैण्ड, इंग्लैंड तथा, शीघ्र ही, आस्ट्रियन सम्राट के एक संयुक्त संघ का निर्माण भी किया। फ्राँस। व स्पेन के सम्बंधों के सेतु के लिए लुई पंचदश का विवाह, स्पेनी शासक फिलिप पंचम की पुत्री इन्फैंटा ऐना मारिया (उम्र मात्र तीन वर्ष) से कर दिया गया तथा, 1729 ई० में एक फ्रांको-स्पेनी संधि भी

सम्पन्न हो गई, जिसके परिणामस्वरूप, इंग्लैंड के ऊपर फ्रांस की निर्भरता कम हो गई।

इधर फरवरी 1733 ई० में अगस्तस द्वितीय की मृत्यु के कारण पोलैण्ड का निर्वाचित राजसिहांसन रिक्त हुआ तथा स्टैनिस्लास लेक्ज़िस्की (जो लुई पंचदश का अब श्वसुर था) ने अपना दावा प्रस्तुत किया-वस्तुत:, पीटर महान के आक्रमण के समय वो ही पोलैण्ड का शासक था तथा अपदस्थ हुआ था। दूसरी ओर, अगस्तस तृतीय ने आस्ट्रिया व रूस के समर्थन से अपना दावा प्रस्तुत किया-स्टैनिस्लास ने छह माह इन दोनों सेनाओं का प्रतिरोध किया फिर पलायन के लिए विवश हुआ। लुई का वह श्वसुर था तथा पोलैण्ड, फ्रांस का परम्परागत समर्थक था। अत: फ्राँसीसी हस्तक्षेप स्वाभाविक हो गया। 1734 ई० में सभी पक्षों के मध्य प्रारम्भिक वार्ता तथा 1738 ई० में वियना की संधि द्वारा समझौता हो गया।

1740 ई० से पुन: उस काल का श्रीगणेश होता है, जब फ्रांस समुद्र के रास्ते प्रसार के विकल्प का परित्याग करके, महाद्वीप में अपनी शक्ति को स्वयं विनष्ट हो जाने देता है। सर्वप्रथम, आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के प्रश्न (1740-1748 ई०) तत्पश्चात् सप्त-वर्षीय युद्ध (1756-1763 ई०) में वह फँस जाता है और, इस निर्णायक काल में वह यूरोप में अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थिति भी खो देता है।

1739 ई० में इंग्लैंण्ड व स्पेन के मध्य युद्ध छिड़ जाता है तथा दो फ्राँसीसी बेड़े स्पेन की सहायतार्थ भेजे जाते हैं। तब तक 20 अक्टूबर 1740 ई० को चार्ल्स षष्ठम की मृत्यु के कारण, आस्ट्रिया में उत्तराधिकार का प्रश्न उभर कर आता है। फ्राँसीसी राजनीति (दरबारी) उसे वंशीय विवादों व महाद्वीपीय युद्धों में फँसा देती है। वे आस्ट्रिया को पराजित करने के अवसर को कैसे त्याग सकते थे? युद्धों के दौर में, एक ऐसा समय आया, कि, आस्ट्रियाई मैरिया थैरेसा 1743 ई० में फ्राँस के विरूद्ध आस्ट्रिया, इंग्लैंड, हौलैण्ड, हैनोवर, सैक्सनी व सार्डिनिया का एक महासंघ निर्मित करनेमें सफल रही। फ्राँस का एकामत्र सहारा स्पेन था। इसी बीच फ्ल्यूरी की मृत्यू हो गई व लुई पंचदश ने स्वयं शासन सम्भाला। 1745 ई० से शासन पर जीअन पोइसोन जो मार्कुइस दि पोम्पादूर के नाम से प्रसिद्ध थी, वह लुई की प्रेमिका व मध्यम-वर्गीय शिक्षित एवं महत्वाकांक्षी महिला थी। उसका अगले बीस वर्षों में फ्रांसीसी शासन पर प्रभाव रहा और फ्राँस की

जनता की वह घृणा की पात्रा बन गई। वह मात्र प्रेमिका रहती तो सम्भवतः किसी को भी कोई आपत्ति न होती, किंतु, उसने इसको भी सार्वजनिक पद की भाँति दुरूपयोग करना शुरू कर दिया। फ़्लूरी की मृत्यु के पश्चात् फ्राँस की वित्तीय स्थिति बिगड़ती ही चली गई। जन-असंतोष गहराने लगा। लोग मूलतः राजशाही विरोधी होने लगे। 1750 ई० के पश्चात् जन-घृणा अपना सिर उठाती है तथा लोग शासन से दरबारी प्रभाव को हटाने के लिए संकल्प-बद्ध हो जाते हैं-वे क्राँति को अपरिहार्य मानने लगते हैं-वे स्टेट्स-जनरल के संयोजन की माँग करने लगते हैं किंतु, फिर भी, औस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध तक तो वे शाँत व संयत रहते हैं, किंतु, अक्टूबर 1748 ई० में ए-ला-शैपेल की संधि के पश्चात्, जब फ्राँस को अपनी पूर्व विजयों एंव सैन्य प्रसारों से हाथ धोना पड़ता है तो स्थिति अस्थिरता की ओर अग्रसर होने लगती है।

फ्रांस में अब एक नवीन मध्यम-वर्ग (समृद्ध व सत्ता से सम्बद्ध) का उदय हो चुका है, जो इस जन-असंतोष को अभिजात वर्ग, धर्माधिकारी वर्ग एंव शासक के विरूद्ध प्रयोग करने में कोई हिचक नहीं दिखाता है तथा, इन तीनों को ही फ्राँस की दुर्व्यवस्था के लिए समान रूप से उत्तरदायी व शत्रु मानता है। वस्तुतः, दरबारी अमीर तथा उच्च अफसरशाही अपने स्वार्थ के कारण समृद्ध व्यवसायियों के सम्पर्क में रहने को विवश हैं, अतः धन का एक नया महत्व व नई भूमिका फ्राँसीसी इतिहास में स्पष्टतः उभरने लगती है। वो एक नवीन समीकरण के जाल को जंम देती है तथा लोगों के मस्तिष्क व व्यवहार को प्राचीन व परम्परागत सूत्रों एंव बंधनों से मुक्त करा देती है। इसी धन के बाहुल्य के चलते राज्याश्रय से अधिक समृद्ध व्यक्तियों का व्यक्तिगत प्रश्रय था और इसने कलाओं को अत्यधिक प्रोत्साहित किया, कि, वह अपने परिष्कृत व सर्वश्रेष्ठ स्तर तक पहुँचने में सफल रहीं। चित्रकला के क्षेत्र में रूपचित्र (पार्ट्रेट) मध्यम व कुलीन वर्गों में प्रचलित व प्रतिष्ठित थी। 1737 ई० से प्रमुख कलाकार अपनी कलाकृतियों की प्रदर्शिनी लगाने लगे थे। तथा, इसी काल में कला-समीक्षा व आलोचना प्रारम्भ हो प्रचलित हो गई। अठारहवीं शताब्दी में ही अपने व्यवहारिक क्रियान्वयन के कारण विज्ञान की लोकप्रियता भी बढ़ने लगी और इसी वातावरण ने दो महान दार्शनिक, लेखक, व बुद्धजीवियों को जन्म दिया-मोंटेस्कयू एवं वोल्टेयर-जो नव-तार्किक-ज्ञान के परिष्कृत रूप का प्रतिनिधित्व करते थे। अन्ततः व्यवसायिक विकास व उपनिवेशवाद के चलते, नए सम्पर्कों, नए देशों, नए आदर्शों, नई अवधारणाओं व नव-ज्ञान से अभिज्ञ होकर, फ्राँस के लोगों ने पुरातन आस्थाओं,

एंव रीति-रिवाजों को त्यागना प्रारम्भ कर दिया था। यही नहीं, ये नवीन विचार, फ्राँसीसी सामाजिक संरचना को भी परिवर्तित करने में सफल रहे। अतः, इस प्रकार से, बौद्धिक व सामाजिक परिवर्तनों ने अन्ततोगत्वा एक नवीन व्यवस्था ही परिकल्पित कर दी, जो वर्तमान व्यवस्था का सशक्त विकल्प बन गई। लुई के शासन की अलोकप्रियता से जंमे जन-असंतोष में अग्नि में घृत का कार्य किया था। इन चिंतकों (फ़िलोसौफ़्स) के व्यवस्था विरोधी आक्रमणों व अभियान ने!

इस संधि-काल में,-जब कि पूर्ण विश्व परिवर्तनशील था, लुई पंचदश का शासन था, उसे पौम्पदूर परामर्श देती थी-किंतु, राष्ट्र-भर में कोई ठोस समर्थन नहीं था, न ही अपनी इच्छा-शक्ति व स्थिरता थी; और, न ही कोई प्रधान मंत्री था। अतः अनिर्णयों व प्रतिस्पर्द्धाओं का दौर था, जिसमें न केवल शासक की व्यक्तिगत लोकप्रियता कम हुई, अपितु, राजशाही की आधिकारि शक्ति में भी कमी आ गई और, इस प्रकार, लुई धार्मिक प्रतिद्वन्दिता भी रोकने में असमर्थ हो गया। जैनसैनिस्टों व कैथोलिकों की लड़ाई सड़क पर उतर आई और संसद हस्तक्षेप करने को विवश हो गई। अन्ततः पेरिस की पार्लेमेन्त ने क्षेत्रिय पार्लेमेन्तों के समर्थन से यह उद्घोषित कर ही दिया, कि, शासक से अधिक महत्वपूर्ण तथा वरीय-राष्ट्र है। किंतु, पौम्पदूर पर इस सब का कोई प्रभाव नहीं पड़ा- वह पूर्ववत् ही शासन करती रही और, अंततोगत्वा, उसी के प्रभाव में जेसुइट संघ पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया।

सप्तवर्षीय युद्ध (1756-1763 ई०) ने जहाँ फ्राँस के प्रभुत्व के द्वार बंद कर दिए वहीं, दूसरी ओर, इंग्लैंड व प्रशिया के प्रभाव और इसके प्रकारान्तर, फ्राँस की असुरक्षा के भी स्पष्ट संकेत दे दिए। सप्त-वर्षीय युद्ध के दौरान लड़ी गई लड़ाइयों की एक ही कहानी थी-फ्राँसीसी पराजय। नेतृत्व की कमी के साथ-साथ समर्थन का भी अभाव था, अतः थल व जल-दोनों में पराजय का हीं मुँह देखना पड़ा तथा, 10 फरवरी 1763 ई० को पेरिस की संधि द्वारा इस अपमानजनक युद्ध की समाप्ति हुई। इसमें फ्राँस ने इंग्लैंड को कनाडा, आहियो की घाटी व मिसीसिपी का पूर्ण बाँया तट समर्पित कर दिया। वे भारत में भी पाँडिचेरी, चंदरनगर, कारिकल, यनाओन व माहे बिना रक्षकसेना (गैरीसन) के रख सकते थे। किंतु, फिर भी, लुई पंचदश के शासन के अंतिम वर्षों में फ्राँस को कुछ लाभ भी हुआ-उसे लौरेन (1766 ई०) तथा कोर्सिका (1768 ई०) प्राप्त हुए। किंतु,

अव्यवस्थित राजतंत्रिय व्यवस्था इसका कोई लाभ न उठा सकी और अलोकप्रियता के अनुपात में, अव्यवस्था ही और अधिक बढ़ गई थी।

पौम्पदूर की मृत्यु 1764 ई० में हो गई तथा, उसके पश्चात् की सरकार उर्जाशील थी-वह तत्काल प्रतिक्रिया करती थी तथा वह इतने समय तक ही क्रियाशील रही, जितने में वह अपनी नीतियों के विरूद्ध अत्यधिक अलोकप्रियता अर्जित कर सकी।[25] क्योंकि, लुई पंचदश की भी मृत्यु 1774 ई० में हो गई। उसकी मृत्यु के बाद उसके पौत्र लुई षोडश का सिंहासनारोहण हुआ। वह बीस वर्ष का था तथा उसकी पत्नी व साम्राज्ञी मारिया थेरेसा की पुत्री मैरी ऐन्तोनियत उन्नीस वर्ष की थी। जो लोग अब भी राजतंत्रीय व्यवस्था के पक्षधर थे, उनकी आशाएँ लुई षोडश पर टिकी हुई थीं। दूसरी ओर, नई रानी की अपव्यायिता ने रिक्त राजकोश को ऋणों से लाद दिया और, इस प्रकार, वह जन-असंतोष व आलोचना का केंद्र हो गई। लुई षोडश ने टर्गो को वित्त का महानियंत्रक नियुक्त किया। टर्गो ने अनेक आर्थिक सुधार प्रस्तावित किए : उसने कर की असमानता को समाप्त करने का प्रयास किया; खाद्यान्नों पर से प्रतिबंध हटाकर मुक्त-व्यापार प्रारम्भ किया; मध्यकालीन शिल्प-श्रेणियों को समाप्त कर दिया। किंतु, पुरातन व्यवस्था के पोषक व लाभ कमाने वाले उसके विरूद्ध हो गए, अतः मई 1776 ई० को उसे अपदस्थ करके, जेनेवा निवासी नेक्कर को नया मंत्री नियुक्त किया जो धारा के साथ तैरने में विश्वास रखता था, अतः उसने नए कर लगाने के स्थान पर ऋण लेने को प्रश्रय दिया। किंतु, अन्ततः, उसे भी सुधार पर उतरना पड़ा, किंतु उनके लाभ निष्प्रभावी हो गए, क्योंकि, फ्राँस तब तक अमरीकी स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय हो इंग्लैंड से दो-दो हाथ करके प्रतिशोध पूर्ण करने का इच्छुक हो गया था। तत्पश्चात् कैलोन तथा ब्रायन भी क्रमशः वित्त-नियंत्रक के पद पर आसीन हुए, किंतु वे भी असफल ही सिद्ध हुए। कैलोन भी अपने पूर्ववर्ती टर्गो एवं नेक्कर के निष्कर्ष पर ही पहुँचा, कि, जब तक दो उच्च वर्ग - धर्माधिकारी एवं कुलीन- करों से सुरक्षित हैं तब तक कोई सुधार सम्भव ही नही हैं। अतः कैलोन ने नोटेबल्स की सभा आहूत करने का आग्रह किया किंतु यह सभा भी निष्फल रही (1787 ई०) किंतु, इस सभा ने तथा पेरिस के पार्लेमेन्त ने संवैधानिक किंतु गत एक सौ पचहत्तर वर्षो से निष्क्रीय अतात-जनरल (ऐस्टेट्स-जनरल) की बैठक आहूत करने का सुझाव दिया। ब्रायन को भी इसी संस्था से डूबते को तिनके का सहारा वाली आशा थी। वस्तुतः इस संस्था की बैठक की माँग सर्वप्रथम अमरीका स्वतंत्रता-संग्राम

के उत्साह में सराबोर वीर मार्कुइस दी लफ़ायत ने की थी। शासक व उसके सहयोगियों की यह मान्यता थी, कि, सम्भवतः, इससे कोई लाभ ही हो जाए- नहीं तो-कम से कम, उससे किसी को हानि तो न होगी-और, यह सम्भवतः उनकी सबसे भयंकर भूल प्रमाणित हुई, क्योंकि, इसी सभा के आयोजन से फ्राँस में क्राँति का सूत्रपात हो गया।[26] किंतु, क्राँति के प्रारम्भ में व बाद के चरणों में भी, वह सुधारों को प्रोत्साहित करता, किंतु उनके क्रियान्वयन के पूर्व ही पीछे हट जाता था। इस अस्थिरता का एक ही परिणाम हो सकता था-कि, वे शक्तियाँ, जिंहे उसने अनेकानेक कारणों से मुक्त कर दिया था-उन्होंने उर्जा व गति प्राप्त कर, एक तूफान का रूप धारण कर के, उसे व राजतंत्र दोनों को विनष्ट कर दिया।[27]

इस बिगड़ती स्थिति में मूल्यों में अभूतपूर्व वृद्धि, किंतु, वेतनों में समानांतर वृद्धि के अभाव ने गरीबी व बेरोजगारी को बढ़ावा दिया; तथा, 1788 ई० में भीषण अकाल ने स्थिति को और भयावह बना दिया; 1789 ई० के प्रारम्भ का जाड़ा भी फ्राँस के लिए अभूतपूर्ण था-जब फ्राँस की अधिकांश बड़ी नदियाँ जम गई थीं ! फ्राँस में एक परम्परा रही थी, कि, अनेक ग्रमीण सर्दियों की ऋतु में काम की तलाश में शहरों की ओर जाते थे और, अब प्रतिकूल परिस्थितियों में तो पेरिस में भी अभूतपूर्व जनसंख्या का जमावड़ा था, जो बेकार, निराशोन्मत्त व साहसी थे - वे प्रत्येक सुधार का जबरदस्त स्वागत करते थे - अतः वे ही अन्ततः उत्तरदायी थे- फ्राँस में उस 'क्राँतिकारी परिस्थिति' के निर्माण के लिए जिसने फ्राँस में क्राँति को अपरिहार्य कर दिया था।[28]

चूँकि, सम्राट लुई षोडश ने मई 1789 ई० तिथि निर्धारित कर दी थी - आतात-जनरल की बैठक हेतु- तीनों एस्टेट्स अलग अलग बैठकों में विचार-विमर्श करते व निर्णय लेते थे, जिसके परिणामस्वरूप, प्रथम दो वर्ग-धर्माधिकारी एवं कुलीन वर्ग-जो संयुक्त रूप से विशेषाधिकार-प्राप्त वर्ग का गठन करते थे-सदैव विजयी हो जाते क्योंकि प्रत्येक कर-सुधार के मुद्दे पर दो : एक के अनुपात में मत-विभाजन होकर वे असफल ही रहते थे। अन्तोगत्वा नेक्कर ने इस व्यवस्था में परिवर्तन करके, तृतीय वर्ग अथवा एस्टेट् को दुगने प्रतिनिधि भेजने व प्रति व्यक्ति एक मत के आधार पर निर्णय लिए जाने की व्यवस्था कर दी, किंतु, यदि परम्परागत ढंग से अलग-अलग वर्गों की अलग-अलग बैठकों का आयोजन होता तो स्वाभाविक था, कि, जन-साधारण की अभिलाषाएँ पूर्ण नहीं हो सकतीं

थी और न ही फ्राँस दुष्चक्र से निकल ही सकता था। 1789 ई० के बसंत में 'केहियर्स' (माँग-पत्रों) के आधार पर प्रतिनिधियों के चुनाव ने संपूर्ण फ्राँस में एक नए उत्साह तथा आशा का संचार किया। 5 मई 1789 ई० को लुई षोडश ने सत्र का उद्घाटन किया, तदुपरान्त नेक्कर ने आर्थिक अत्यवस्था का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। दूसरे दिन विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग ने अलग-अलग बैठकें प्रारम्भ की किंतु, तृतीय विशेषाधिकार-विहीन वर्ग ने अपने एक-साथ एक ही बैठक पर अटल रहने का निर्णय ले लिया। अतः एक संवैधानिक प्रश्न उठ खड़ा हुआ, जिसने एक संकट को जंम दिया-नेक्कर व सम्राट दोनों ही अंतिम निर्णय में चूक गए और तृतीय वर्ग ने शेष दो वर्गों को भी उनके साथ, एकीकृत रूप से बैठक करने का आह्वान कर, 17 जून 1789 ई० को अपनी बैठक को 'राष्ट्रीय सभा' घोषित कर दिया- क्योंकि, यही विशेषाधिकार विहीन वर्ग फ्राँस का बहुसंख्यक वर्ग अर्थात् वास्तविक राष्ट्र था ! शासक के सैनिकों द्वारा अपने बैठक के कक्ष के द्वार बंद किये ज़ाने पर पास के टैनिस-कोर्ट में शपथ ग्रहण करके (जून 20) क्राँति का बिगुल बजा दिया गया। 27 जून को सम्राट ने भी शेष दो विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को इसमें सम्मिलित होने का आदेश दे दिया और, इस प्रकार, स्वयं सम्राट ने सत्ताधिकार राष्ट्रीय सभा के हाथों में सौंप दिया।[29]

दूसरी ओर, धर्माधिकारी वर्ग के अनेक सदस्य भी स्वेच्छा से इस राष्ट्रीय सभा में सम्मिलित हो गए बल्कि, यूँ कहें कि, वे तृतीय एस्टेट के सदस्य बन गए, बावजूद प्रथम एस्टेट के सदस्य होने के। वे निम्न उपवर्गीय पादरी थे, जिनकी समस्त समानताएँ तृतीय एस्टेट के साथ थीं, न कि, अपने धर्माधिकारी वर्ग के। अतः उनका यह कार्य आश्चर्यजनक कदापि नहीं था। इसी प्रकार, कुछ उदारवादी सदस्य भी इसी तृतीय एस्टेट (वर्ग) की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि करने में सहायक हो गए । राष्ट्रीय सभा के प्रारम्भिक वर्ष में सर्वाधिक प्रतिभावान व अमरीका स्वतंत्रता संग्राम का फ्राँसीसी नायक लफ़ायत् इसी वर्ग का सदस्य था। इसी प्रकार, मिराब्यू भी इसी वर्ग का था, किंतु, वह एक युगदृष्टा राजपुरुष था और इस वर्ग का होने के कारण, जन-साधारण की शंकाओं के ऊपर कभी नहीं उठ सका।

प्रशासन, एक बार पुनः शक्ति प्रदर्शन की योजना बनाने लगा। पेरिस व वर्साई के इर्द-गिर्द सैंय-टुकड़ियाँ एकत्र की जाने लगीं। 11 जुलाई को सम्राट ने नेक्कर को पदच्युत कर दिया। पेरिस विद्रोह के लिए अमादा-सा प्रतीत होने लगा। 13

जुलाई को 'क्राँतिकारी म्युनिस्पैलिटी' का गठन हो गया तथा वे बैस्टाईल के शास्त्रागार को लूटने हेतु दृढ़-संकल्प थे। चार घंटे के लम्बे संघर्ष के पश्चात् जन-शक्ति विजयी रही। 16 जुलाई को सम्राट के नेक्कर को पुन: नियुक्त किया; कुलीन वर्ग के अनेकों सदस्य सशंकित हो विदेशों को पलायन करने लगे। किंतु, पेरिस के उदाहरण का अनुसरण शेष फ्राँस ने किया तथा, क्राँतिकारी म्यूनिस्पैलिटी के गठन की प्रक्रिया हर ओर शुरू हो गई। कृषकों ने आंदोलन की राह ली एवं 'चैत्यू', ऋण व किराए से सम्बंधित दस्तावेजों को नष्ट करना व जलाना प्रारम्भ कर दिया। उधर राष्ट्रीय सभा में भी भावुकता के क्षणों में 4 अगस्त को सामन्तों ने स्वत: ही विशेषाधिकारों को त्यागना शुरू कर दिया। तथा, 26 अगस्त को राष्ट्रीय सभा ने मानवाधिकारों की उद्घोषणा ('डिक्लेरेशन ऑफ् द राइट्स ऑफ् मैन') को पारित कर दिया।

शासक तथा उसके दरबार ने एक बार फिर प्रयास किया, कि, वे क्राँति को वहीं रोक दें। दूसरी ओर, अनुशासनहीनता सर्वत्र फैल रही थी व इसने बोरोजगारी व माँग को बहुत बढ़ा दिया। इधर, 5 अक्टूबर को सात-आठ सौ सशस्त्र लोगों ने वर्साई की ओर कूच किया एवं राजमहल का मार्ग अवरूद्ध कर दिया था। लफ़ायत व उसके 'नेशनल गार्ड्स' ने प्रासाद में लूट-पाट के खतरे को टाल दिया किंतु, शासक ने वर्साई छोड़ने का निर्णय ले लिया तथा उग्र भीड़ से घिरकर, सपरिवार पेरिस आ गया तथा, 16 अक्टूबर को राष्ट्रीय सभा भी पेरिस में ही स्थापित हो गई। वास्तविकता यह थी, कि, सम्राट व राष्ट्रीय सभा दोनों ही जन-आंदोलन के बंदी बन चुके थे। वस्तुत: विशेषाधिकारों की समाप्ति के बाद, एक संवैधानिक राजतंत्र को प्रतिष्ठित कर क्राँति वहीं रूक गई होती किंतु, इसके लिए आवश्यक था, कि, राष्ट्रीय सभा पेरिस के स्थान पर कहीं और स्थापित होती व पेरिस के राजनीतिक क्लबों तथा जन -आदोलनों के दबाव एवं प्रभाव से सुरक्षित रहती।

इसी दौर में, 28 जुलाई 1790 ई० को 'सिविल कौन्स्टीट्यूशन ऑफ़ क्लर्जी' पारित हो गया। इसके अनुसार बिशपों की संख्या 134 से घटकर 83 कर दी गई व उनकी भी नियुक्ति का प्रावधान जनता द्वारा निर्वाचन के आधार पर किया गया; तथा, इस प्रकार से निर्वाचित बिशपों को नागरिक शपथ ('सिविल ओथ') भी लेना अनिवार्य कर दिया गया। आधे धर्माधिकारियों व सात बिशपों के अतिरिक्त शेष ने शपथ लेने से इंकार कर दिया। इस प्रकार प्रति-आंदोलन अथवा आंदोलन के विरूद्ध प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई, जो सिर्फ दरबार एवं विशेषाधिकार-प्राप्त

वर्गों तक ही सीमित न रही, अपितु, धार्मिक क्षेत्र या धार्मिक लोगों के मध्य भी व्याप्त हो गई थी। 1791 ई० की बसंत में कैथोलिक पोप ने इस सिविल कौंस्टीट्यूशन की भर्त्सना कर दी और, इस प्रकार, क्राँतिकारी फ्राँस एवं पोप के मध्य सम्बंध-विच्छेद हो गए।

सम्राट को उसके दरबारियों ने विदेशी सहायता पर निर्भर रहने की सलाह दे दी एवं वह आस्ट्रिया के शासक से सहायता की आशा करने लगा तथा 20-21 जून 1791 ई० की रात्रि को राजपरिवार ने भेष बदलकर फ्राँस से पलायन का प्रयास किया। 21 जून की मध्यरात्रि को वैरेन्स में उन्हें पहचान लिया गया तथा, बाद में, राष्ट्रीय सभा के कमिश्नरों द्वारा पेरिस वापस लाया गया। इस बिंदु तक तो जनता व्यवस्था-विरोधी होने के बावजूद राजतंत्र के प्रति निष्ठावान बनी हुई थी, किंतु, अब एक विश्वासी शासक के अभाव में, फ्राँस एक गणतंत्र हो गया ! वस्तुत: जिस दिन सम्राट पेरिस लौटा था, उसी दिन से 'कौर्डिलियर्स क्लब' ने राजतंत्र समाप्त करने की माँग करना प्रारम्भ कर दिया था, जबकि, राष्ट्रीय सभा में अब भी बहुमत राजतंत्र व सम्राट को सुरक्षित रखने के पक्ष में था। 'जैकोबिन क्लब' विभाजित था। किंतु, पेरिस की जनता के मध्य गणतंत्रवाद का आंदोलन जोर पकड़ने लगा। 17 जुलाई को लफ़ायत् ने नेशनल गार्ड्स को भीड़ पर गोली चलाने के भी आदेश दे दिए। क्राँतिकारी नेताओं के विरूद्ध दमन-चक्र जारी हो गया-व उनके नेता दाँतन व मरात् भूमिगत हो गए। इसी दौर में, 14 सितम्बर के नवीन संविधान पेश हुआ व राष्ट्रीय सभा में पारित हो गया व सम्राट ने भी इसके प्रति निष्ठा की शपथ ली। यह मध्यम-वर्गी संविधान था। जिसमें निर्धारित कर-सीमा वालों को ही मताधिकार प्रदान किया गया था; उसके आदेशों पर एक मंत्री के भी हस्ताक्षर व उसकी स्वीकृति आवश्यक थी; सम्राट दो सत्रों तक किसी भी कानून पर स्वीकृति रोक सकता था। सबको सार्वजनिक क्षमा प्रदान करके, 30 सितम्बर 1791 ई० को अपने उद्देश्य की पूर्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सभा ने अपना कार्य-काल समाप्त घोषित कर दिया। इस प्रकार, वह एक प्रबुद्ध राजनीतिक व समाजिक व्यवस्था प्रदान करने में सफल रही, किंतु, आर्थिक मामलों में 'एसिग्ना' जैसी कागजी-मुद्रा का प्रचलन कर-आर्थिक दिवालियेपन को कुछ अवधि के लिए और टाल दिया था। और, धार्मिक क्षेत्र में तो इस संविधान-सभा की उपलब्धि और दयनीय थी- उसने ऐसे फूट व भेद को जंम दिया था, कि, उसने गृह-युद्ध की भूमि तैयार कर दी थी। इसी प्रकार, विदेशी-सम्बन्धों में भी यथावत् को बरकरार रखते हुए, देश को युद्ध के कगार पर पहुँचा

दिया था।

1791 ई०में नवीन संविधान-सभा का निर्वाचन हो गया। अपने ही बनाए नियमों के अनुसार पुराने सदस्य इसके सदस्य नहीं हो सकते थे। इसकी पहली बैठक 1 अक्टूबर 1791 ई० को हुई। इसी बीच साम्राज्ञी के निरन्तर प्रभाव के कारण लुई ने अस्ट्रिया के साथ अपने बचाव के लिए संवाद जारी रखा; तथा यूरोपीय शासक भी अपने सिंहासन के लिए, चिंतित होकर एक-जुट होने लगे, कि, कहीं फ्राँसीसी क्राँति की प्रेरणा व प्रभाव उनकी सता को भी चेतावनी न दे दे। जन, सामान्य अब तक निराश हो रहा था-वह प्रत्येक सभा को मध्यम-वर्ग की प्रतिनिधि-सभा के रूप में देख रहा था। जैकोबिन क्लब व राजनीतिक दल- असंतुष्ट तत्वों का एक बड़ा केद्र हो गया था; वह राजतंत्र को समाप्त कर के जन-सामान्य हेतु अधिक राजनीतिक अधिकार चाहता था। यह एक संगठित दल भी था, जिसके केंद्र या शाखाएँ समस्त फ्राँस में फैले हुए थे; तथा इनके पास दाँतन, मरात् व रोब्सपियर जैसे विश्वसनीय, योग्य व सफल नेता भी थे। इस सभा में दूसरा राजनीतिक दल 'जिरोंडिस्ट' था- इसके अधिकांश सदस्य जिरोंड क्षेत्र के थे अत: यह नाम पडा-ये पहले उत्कट क्राँतिकारी थे किंतु, बाद में, मध्यम-मार्गी हो गए थे। वे मध्यम-वर्ग के नियंत्रण में, गणतंत्र की स्थापना के इच्छुक थे। इन दोनों दलों में एक समानता थी- वे पुरातन-व्यवस्था के तो विरोधी थे ही। किंतु, शासक, कुलीन व धर्माधिकारी वर्ग पुरातन-व्यवस्था की पुनर्स्थापना के इच्छुक थे। आस्ट्रिया व प्रशा इनके पक्षधर थे-किंतु, वे युद्ध के पक्ष में नहीं थे। युद्ध के पक्षधर तो फ्राँस के ही विभिन्न तत्व थे। शासक इसलिए युद्ध चाहता था कि इसमे पराजित होकर फ्राँस विदेशी शक्तियों द्वारा राजतंत्र की पुनर्स्थापना को अस्वीकार न कर सकेगा। उत्कट राजनीतिक दल, युद्ध इस लिए चाहते थे कि सम्राट के राष्ट्र-विरोध व विदेशी शत्रुओं से सम्बंध की कलई खुल जाएगी और उसका पतन अपरिहार्य हो जाएगा तथा, तब गण्तंत्र की स्थापना सरल हो जाएगी, अत: युद्ध भी उपरोक्त कारणों से अपरिहार्य हो गया था व प्रारम्भ में, फ्राँसीसी सेनाओं को पराजय का सामना करना पड़ा। आस्ट्रिया व प्रशा की सेनाएँ पेरिस के निकट पहुँचीं, तो उसके सेनापति ने 'ब्रन्सविक मैनिफ़ेस्टो" घोषित कर दिया, जिसके अनुसार आक्रमणकारी सेनाएँ सफलता प्राप्त कर राजतंत्र बहाल करके, सम्राट को पुनर्स्थापित कर देंगी। लोगों की शंकाएँ निर्मूल नहीं थीं, कि, लुई विदेशी-सम्पर्कों से पत्राचार कर रहा था एवं शत्रुओं के साथ मिलकर राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों में सम्बद्ध था। अत: पेरिस

की जनता का उद्वेलित होना स्वाभाविक था। 10 अगस्त 1792 ई० को उसने राजमहल पर धावा बोल दिया-पेरिस की उग्र भीड़ को "पेरिस कम्यून" नियंत्रित करता था और उसे जैकबिन नियंत्रित करते थे। अब इस सभा ने राजतंत्र समाप्त करना तथा 'राष्ट्रीय कनवेन्शन' के आयोजन द्वारा नए संविधान निर्मित करना पारित करवा लिया तथा, यह निर्णय भी कर लिया गया, कि, राष्ट्रीय कनवेन्शन के गठन हेतु चुनावों के सम्पन्न होने तक एक अन्तरिम सरकार का गठन हो और दाँतन इस अन्तरिम सरकार का अधिनायक बन गया!

10 अगस्त 1792 ई० के पश्चात्, संविधान का विचार अपनी गरिमा खोने लगा था तथा अब 'जिरोंडिन्स' अथवा राष्ट्रीय सभा के प्रमुख वक्ताओ एवं 'जैकोबिन' अथवा 'पेरिस कम्यून' के प्रतिनिधियों के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो गया। 'जैकोबिन्स' 'मौउन्टेन' (पर्वत) भी कहलाते थे, क्योंकि 'वे सभा में ऊँची सीटों पर स्थान-ग्रहण करते थे'।[30] इसी बीच फ्राँस में विदेशी आक्रमणकारी सेनाएँ प्रविष्ट हो गईं और 15 अगस्त से 2 सितम्बर के मध्य ही लफ़ायत भी फ्राँस का पक्ष छोड़ने को विवश हो गया था। अत: भय और हड़बड़ाहट में कम्यून तथा दाँतन ने पेरिस की जनता का आह्वान किया, कि, वे खतरे में फँसे देश की सुरक्षा हेतु उठें और आवश्यक कार्यवाही करें। भय व आशांकित लोग अब देश-द्रोहियों को तलाशने लगे तथा राजशाही के समर्थकों का व्यापक संहार शुरू हुआ, जो सितम्बर माह में होने के कारण 'सितम्बर नर-संहार' या 'मैसेकर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पेरिस की उग्र भीड़ जो पेरिस को नियंत्रित करती थी-वह मध्यम-वर्गी व मार्गी सरकार से, बढ़ती हुई कीमतों एवं सैन्य-पराजयों से पूर्णत: असंतुष्ट थी। वे आक्रमणकारी विदेशी सेनाओं एवं उनके विजय के अवसर पर, राजतंत्र की पुनर्स्थापना के विचार से सशंकित तथा भयभीत थे। लगभग ग्यारह सौ लोगों का वध हो गया था। और, इसी बीच, प्रशा व आस्ट्रिया की सेनाएँ फ्राँस में प्रविष्ट हो आर्गोन की ओर अग्रसर हो गई थीं। किंतु, फ्राँसीसी सेनाएँ उनके प्रतिरोध में सफल रहीं- यह विजय उनके लिए उत्साह-वर्द्धक साबित हुई। वाल्मी में प्राप्त इस विजय वाले दिन ही संविधान-सभा ने कन्वेन्शन को स्थान दिया-जिसका निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ तथा यह जैकोबिन बहुमत वाली सभा थी!

अपने प्रथम सार्वजनिक सत्र में - 21 सितम्बर 1792 ई० को सर्वसम्मति से राजतंत्र समाप्त करने का कानून पारित कर दिया। दो माह टालने के पश्चात् क्राँति के अधिकारियों को राजप्रासाद से सम्राट के विदेशी-शक्ति व निर्वासित

फ्राँसीसियों के साथ पत्रव्यवहार के साक्ष्य मिले और सम्राट के मुकदमे की शुरूआत हो गई तथा, 20 जनवरी को 'गुलेटियन्' द्वारा मृत्यु-दण्ड दे दिया गया व 21 जनवरी, रविवार को इस दण्ड का क्रियान्वयन हो गया। जो 'माउन्टेन' दल के रोब्सपियर, दाँतन एवं मरात चाहते थे वह सम्पन्न हो गया। अब तो क्राँति न वापस हो सकती थी और न समझौता ही सम्भव था-अब तो उसे अपने शत्रुओं का विनाश करना था अथवा खुद दम तोड़ लेना था। विदेशी शक्तियाँ, किंतु, इस नृशंस हत्या से दहल गई थीं, अतः फरवरी व मार्च के माहों में औस्ट्रिया, प्रशा, इंग्लैंड, स्पेन, हौलैण्ड, साम्राज्य के विभिन्न राज्य व इटली ने फ्राँस के विरुद्ध प्रथम 'कोएलिशन' अथवा संयुक्त मोर्चे का उद्घाटन कर दिया।

इस प्रकार से विदेशी संयुक्त मोर्चे से भयभीत व आन्तरिक विद्रोहों से आतंकित फ्राँस, बढ़ती कीमतों व बेरोजगारी का सामना कर रहा था। 'माउन्टेन' दल ने पेरिस की उग्र भीड़ को अपना अविभाज्य अंग बना लिया था एवं मध्य-वर्गी व मार्गी 'जिरौंडिन्स' को राष्ट्रीय 'कन्वेन्शन' से निष्कासित कर दिया। अब 'कन्वेन्शन' पूर्णतया जैकोबिन हो गया था। इन समस्त समस्याओं के निवारण हेतु, रोब्सपियर ने अपने तर्कों, आदर्शों व उत्कट विचारों पर आधारित 'आतंक का शासन' (रेह्न औफ़ टेरर') शुरू कर दिया। उसके मतानुसार, उसके सद्गुणों पर आधारित गणतंत्र या 'रिपब्लिक ऑफ़ वर्च्यू' को बनाए रखने हेतु यह आतंक आवश्यक था। क्राँति के शत्रुओं का विनाश अपरिहार्य था, अन्यथा वे क्राँति को विनष्ट कर देते-इस भय ने आतंक को तार्किक आधार प्रदान कर दिया। जैकोबिन नेशनल कन्वेन्शन ने इस आतंक के क्रियान्वयन हेतु दो समितियों का गठन किया । प्रथम थी, सार्वजनिक सुरक्षा की समिति अथवा 'द कमिटी ऑफ़ पब्लिक सेफ़्टी' जिसमें रोब्सपियर सहित बारह सदस्य थे-यही वास्तविक सरकार थी-इसके पास निरंकुश अधिकार थे। यह सेनाओं को निर्देषित करती; विदेशों से सम्बंध निर्धारित करती एवं कन्वेन्शन के सदस्यों ('डिप्टीज़' जैसा कि वे कहलाते थे) को 'कमिस्सार' के रूप में, प्रान्तों में तथा सेनाओं को निष्ठावान बनाए रखने हेतु वहाँ नियुक्ति करती थी। द्वितीय समिति, सामान्य सुरक्षा की थी-'द कमिटि ऑफ़ जेनेरल सिक्योरिटी'। यह, वस्तुतः, एक राजनीतिक पुलिस समूह था, जिसका कार्य क्राँति के विरोधियों की तलाश कर 'रिवोल्यूश्नरी ट्रिब्यूनल' या विशेष न्यायालयों में मुकद्दमा करना होता था।

इस आतंक के युग ने लगभग 20,000 (बीस हजार) लोगों को मौत के घाट उतार दिया। नागरिकों को सैनिक-प्रशिक्षण दिया गया; राष्ट्र-प्रेम की भावना

कूट-कूट कर भर दी गई, सैन्याधिकारियों की नियुक्ति, मात्र योग्यता के आधार पर की जाने लगी; अत: सैनिक अब क्राँति के आदर्श के लिए लड़ने लगे थे- जिसके फलस्वरूप सेना में एक नई चेतना का प्रसार हुआ व 1794 ई० में 'यूरोपीय कोएलिशन' की सेनाओं को पराजित करने में फ्राँस सफल रहा। विदेशी आक्रमण एवं गृह-युद्ध, फ्राँस को और जुझारू बना रहे थे।

जैकोबिन दल भी दो उपवर्गों में विभक्त था-एक मध्यम-वर्गीय जो सम्पत्ति के अधिकार व स्वतंत्र-व्यापार का पक्षधर था तथा दूसरा उत्त्कटवादी जो गरीबों के पक्ष में नवीन भू-आवंटन के पक्ष में था। अन्ततोगत्वा युद्ध के लिए व्यापक जन-समर्थन की माँग ने पलड़ा उत्कटतावादी की ओर कर दिया। अत: कीमतों व वेतनों पर सीमाबंधन हेतु "मैक्सिमम लौज़" पारित कर दिए; फ्राँसीसी कुलीन वर्ग के वे सदस्य जो निर्वासित हो गए थे अथवा जो क्राँति-विरोधी थे-उनकी सम्पत्ति जब्त करके, गरीबों में वितरित करने वाला "लौज़ ऑफ़ वेंटोस" भी पारित कर दिया गया। इसी प्रकार खाद्यान्न एवं आपूर्ति पर राशन-प्रतिबंध लागू हो गए; तथा, मुद्रा-नियंत्रण उपायों द्वारा मुद्रास्फीति नियंत्रित करने का प्रयास हुआ; स्वर्ण के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया गया। तब भी 'एसिग्ना' का मूल्य दिनों दिन घटता रहा। नए उत्तराधिकार नियम द्वारा सम्पत्ति का विभाजन सभी जीवित बच्चों में समान रूप से किया जाने लगा तथा सबकुछ बड़े को देने का नियम समाप्त हो गया ।

आतंक के युग के कुछ काल के लिए ईसाई मत पर प्रतिबंध लगा दिया गया था एवं तर्क की पूजा प्रारम्भ हो गई थी। 1794 ई० में कन्वेन्शन ने चर्च व राज्य को पूर्णत: विभक्त कर दिया था। तथा सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का व्यवहार किया जाने लगा था। शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तनस्वरूप, सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी एवं एक वर्गहीन सैन्य स्कूल की स्थापना की गई। इसी प्रकार, सितम्बर 22, 1792 ई० को प्रथम दिवस मानकर एक नवीन कैलेण्डर निर्मित किया गया। प्रत्येक माह में दस दिन के तीन सप्ताह अर्थात् तीस दिवस होते थे। प्रत्येक दसवें दिन अवकाश होता था। यह कैलेण्डर नेपोलियन के काल में निरस्त हो गया था। सामाजिक जीवन में भी सहजता का साम्राज्य था। फ्राँसीसी फैशन के कपड़ों का परित्याग कर दिया गया था। किंतु, विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पूर्ण रोक लग गई थी तथा सभी पुस्तकों, लेखों व मैग्ज़ीनों पर सेंसर लगा दिया गया था।

फ्राँसीसी क्राँति का अंतिम चरण-स्वाभाविक रूप से प्रतिक्रिया का ही निश्चित था और वही हुआ भी। उत्कट जैकोबिन के स्थान पर, एक रूढ़िवादी सरकार स्थापित हो गई तथा, थर्मिडोरियन प्रतिक्रिया का श्रीगणेश हुआ। नए कैलेण्डर के द्वितीय वर्ष में थर्मिडोर मास के नवें दिवस अर्थात् जुलाई 27, 1794 ई० को रोब्सपियर को भी मृत्यु-दण्ड प्रदान कर दिया गया। इस प्रकार, क्राँति ने अपने अनेक सन्तानों की ही भाँति रोब्सपियर की भी बलि प्राप्त कर ली। अब आतंक समाप्त हुआ। बुर्ज़्वा का नियंत्रण भी कन्वेन्शन पर स्थापित हो गया। सेंसरशिप समाप्त हो गई; राजनीतिक बंदियों को मुक्त कर दिया गया; कीमत व वेतन-प्रतिबंधन कानून समाप्त हो गए; जिरोंडिस्ट, धर्माधिकारी व अन्य निर्वासित (विशेषतया कुलीन) ने फ्राँस वापस लौटना प्रारम्भ कर दिया। 'पब्लिक सेफ़टी' व 'जनरल सिक्योरिटी' की समितियों को भी भंग कर दिया गया। जैकोबिनों के विरूद्ध आंतक को श्वेत अथवा 'वहाइट टेरर' की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है; किंतु, इसके विरूद्ध पेरिस के सामान्य जन की प्रतिक्रिया स्वाभाविक की उन्होंने कन्वेन्शन पर चढ़ाई कर दी व सैन्य टुकड़ियों की सहायता से ही उन्हें तितर-बितर किया जा सका।

अब नवीन संरचना वाले नेशनल कन्वेन्शन ने 1795 ई० का संविधान अथवा तृतीय वर्ष का संविधान पारित कर दिया, जिसका विरोध एक ओर उत्कट राजनीतिक तत्वों, व दूसरी ओर, राजशाही समर्थकों ने किया। निर्वाचन की प्रक्रिया अप्रत्यक्ष हो गई। जनता 'एलेक्टर्स' को तथा, वे संसद-सदस्यों को निर्वाचित करते थे। कम से कम श्रमिक के सौ दिन के वेतन के बराबर आय वाले ही एलेक्टर्स हो सकते थे। संसद के दो सदन थे-निचला-अर्थात् 'कौन्सिल ऑफ़ फ़ाइव हन्ड्रेड' तथा चालीस वर्ष से अधिक आयु वालों हेतु उच्च सदन या 'कौन्सिल औफ़ एल्डर्स'। कार्यकारी के रूप में पांच सदस्यों की एक 'डायरेक्ट्ररी' भी थी। 'एल्डर्स' द्वारा प्रेषित सूचि में से निचला सदन इनका निर्वाचन करता था। इस नए संविधान ने नागरिकों के अधिकारों के साथ-साथ, उनके कर्तव्यों को भी स्पष्टत: इंगित कर दिया। इसी प्रकार, प्रसिद्ध विचारक मोंटेस्क्यू द्वारा परिभाषित एवं अमरीका के संविधान द्वारा क्रियान्वित अधिकारों के विभाजन को भी नई सरकार में स्थान प्राप्त हो गया।

प्रारम्भ में ही डायरेक्ट्री के विरूद्ध राजतंत्रीय तत्वों का विद्रोह हुआ, जिसे नेपोलियन ने अक्टूबर 1795 ई० में उन्मूलित कर दिया; तदुपरान्त जन-सामान्य का विद्रोह हुआ, जिसको दबा दिया गया। डायरेक्ट्री मुद्रा-स्फीति को भी नियंत्रित

करने में पूर्णतः असफल रही; एसिग्ना का इतना अधिक अवमूल्यन हो गया, कि, कागजी मुद्रा समाप्त कर के, पुनः धातु के सिक्के प्रचलित व मान्य हो गए। युद्ध के क्षेत्र में डायरेक्ट्री का काल अधिक उपलब्धियों का रहा; प्रथम कोएलिशन ही ध्वस्त हो गया, जब प्रशा, स्पेन व हौलैण्ड ने 1795 ई० में शाँति-स्थापित कर ली; जिसके परिणामस्वरूप, फ्राँस के विरूद्ध युद्ध में मात्र इंग्लैंड एवं आस्ट्रिया भी संलग्न रहे। फ्राँस ने प्रशा से राइनलैंड प्राप्त कर लिया; उत्तरी ईटली के राज्यों पर भी उसने प्रभुत्व स्थापित कर दिया; इसी प्रकार, बेल्जियम एवं हौलैण्ड के समर्थक के रूप में, फ्राँस ने उस पर नियंत्रण बनाए रखा। इस तरह से पहली बार फ्राँस इतनी सुरक्षित तथा सुदृढ़ स्थिति में आ गया था। किंतु, ये युद्ध बहुत मँहगे प्रमाणित हुए तथा, डायरेक्ट्री के पास तो सेना पर व्यय करने हेतु धन ही शेष नहीं था-सेनानायक अपनी भू-सम्पत्तियों के सहारे अपना कार्य चलाने लगे, जिसके फलस्वरूप, वे अपने प्रकार से, स्वतंत्र सत्ता तथा शक्ति के केंद्र हो गए। 1795 ई० तथा 1797 ई० के चुनावों में राजतंत्रीय तत्वों को सबल दबा दिया गया। 1797 ई० में तो उन्हें अनेक स्थान प्राप्त हो गए, किंतु गणतांत्रिक सदस्यों ने संविधान का उल्लंघन करते हुए नेपोलियन को निर्देशित कर, इन वैधानिक रूप से निर्वाचित सदस्यों को अपदस्थ कर दिया; और इस प्रकार, वे सेना के साथ-साथ सेनानायकों की कृपा पर आधारित और निर्भर हो गए। सितम्बर 4,1797 ई० के इस "कूप दे ताँत्" के पश्चात्, डायरेक्ट्री अधिनायकवादी हो गई तथा सरकार सदैव ही अव्यवस्थित रही। इसी बीच सेनानायक नेपोलियन ने ऑस्ट्रिया में सफलता प्राप्त की, जिसने उत्तरी इटली पर फ्राँस के नियंत्रण को मान्यता प्रदान कर दी; किंतु, इंग्लैंड को परोक्ष रूप से पराजित करने की योजना मिस्त्र विजय की असफला के कारण धूल-धूसरित हो गई तथा नेपोलियन की इस युद्ध के कारण अनुपस्थिति में, डायरेक्टरी उत्तरी इटली भी हार गई एवं 1798 ई० में इंग्लैंड, ऑस्ट्रिया एवं रूस का संयुक्त "सैकेन्ड कोएलिशन" फ्राँस के विरूद्ध अग्रसर होने लगा !

किंतु, अब तक डायरेक्ट्री पूर्णतः अलोकप्रिय हो चुकी थी; सैन्य पराजयों, मुद्रा-स्फीति, भ्रष्टाचार तथा सरकार की सामान्य कमजोरियों के साथ-साथ, प्रतिदिन जैकोबिन अथवा राजतंत्रिय षडयंत्रों की अफवाहों ने लोगों को यह समझने व मानने के लिए बाध्य कर दिया था, कि, किसी परिवर्तन के पश्चात् ही सही स्थायित्व आवश्यक है। एक विजयी एवं लोकप्रिय सेनानायक लोगों की तार्किक पसंद थी-फ्राँस में व्यवस्था पुनर्स्थापित करने हेतु पाँच में से दो निदेशकों-ऐबे

सिए व रोजर-ड्यूलौस ने जहां नेपोलियम को नई सरकार के गठन के लिए आमंत्रित किया, वहीं, अन्य तीन निदेशकों ने इसका विरोध किया-इनमें से भी एक, बरास ने त्याग-पत्र देना स्वीकार किया। किंतु, गोहियर एवं दू मौउलिन को निरन्तर विरोध के कारण, मार्ग से अलग रखने हेतु, कम्यून से दूर-संत क्लाउड में संसद का आयोजन किया गया। किंतु, यहाँ भी बोनापार्ट के विरूद्ध माहौल बन गया था, किसी प्रकार से, नेपोलियन के बड़े भाई लूसियन-जो पाँच सौ की काउंसिल का अध्यक्ष का-ने स्थिति सम्भाल ली थी। शाम को (बल्कि, रात्रि में नौ बजे), डायरेक्ट्री को समाप्त करने, संसद स्थगन करने का प्रस्ताव पारित करके, कार्यकारी अधिकार तीन कौंसलों-ऐबे सिए; रोजर-ड्यूकलौस; एवं, नेपोलियन बोनापार्ट के हाथ में स्थानांरित कर दिए। यह ब्रमियर (क्राँति के कैलेण्डर का एक महीना) का 'कूप दे ताँत्' कहलाया (नवम्बर 9, 1799 ई०)

□

[8]

नेपोलियन-युगीन फ्राँस

नई व्यवस्था स्थापित करने के लिए नेपोलियन ने एक नवीन संविधान का निर्माण कराया। इसका बाहरी आवरण तो गणतांत्रिक था, किंतु, वास्तविक सत्ता तीन कौंसलों में से प्रथम कौंसल अथवा नेपोलियन के हाथों में केंद्रित थी। उसे दस वर्षीय अवधि के लिए यह पद प्राप्त हुआ था। वास्तव में तो नेपोलियन एक सैन्य अधिनायक था। उसे विधि निर्माण; सेना के निदेशन; युद्ध घोषित करने तथा कार्यकारी अधिकारियों की नियुक्ति के अधिकार-प्राप्त थे-क्योंकि, वह संवैधानिक सभा को ही नियंत्रित करता था। तृतीय वर्ष के संविधान के अनुसार 'कौंसिल ऑफ़ स्टेट' -प्रथम कौंसल के साथ विधि निर्माता था और 'कौंसिल औफ़ स्टेट' की नियुक्ति नेपोलियन द्वारा होती थी। अत: उसके व्यक्तित्व में कार्यकारी व संवैधानिक दोनों ही शक्तियों समाहित थी। 'ट्रिब्यूनेट' विधि पर बहस कर सकती थी, किंतु उसे उसपर मत देने का अधिकार नहीं था, संविधान पीठ उसपर वोट डालती थी, किंतु, उसे बहस का अधिकार नहीं था। लोगों ने 1799 ई० में संविधान को संस्तुति प्रदान कर दी। एलेक्टर्स (जिनपर सम्पत्ति अर्हता लागू होता था) का चुनाव-व्यस्क मताधिकार के आधार पर होता था। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है, कि, वास्तविक सत्ता नेपोलियन के हाथों में ही केंद्रित थी। 1802 ई० में नेपोलियन को आजीवन प्रथम कौंसल नियुक्त कर दिया गया- तथा उसे अपना उत्तराधिकारी नामित करने का भी अधिकार प्रदान कर दिया था। इसी प्रकार, 1804 ई० में लोगों की सहमति प्राप्त करके, वह फ्राँस का सम्राट बन बैठा। तत्पश्चात् वह इटली का राजा बन गया तथा 1806 ई० में उसने ऑस्ट्रिया के सम्राट को बाध्य कर दिया, कि, वह पवित्र रोमन सम्राट का विरूद धारण न करे, अपितु, अपने आप को मात्र ऑस्ट्रिया का सम्राट ही सम्बोधित करवाए !

यद्यपि, नेपोलियन एक अधिनायक था, उसने फ्रांस को एक सक्षम व सामान्य रूप से ईमानदार सरकार प्रदान करी। उसने प्रशासन, विधि, चर्च, शिक्षा व वित्त

आदि के क्षेत्रों में आवश्यक सुधार क्रियान्वित किए। सर्वप्रथम, उसने प्रशासन का केंद्रीकरण किया। जिलों को राष्ट्रीय सभा ने डिपार्टमेन्ट का सम्बोधन दिया था–नोपोलियन ने हर जिले में 'प्रीफ़ेक्ट' नियुक्त किए। उसने गुप्तचरी का सुदृढ़ संगठन खड़ा कर दिया था, ताकि, व्यवस्था बनी रह सके; समाचार-पत्रों व पुस्तकों की सेंसरशिप कठोरता से लागू की गई; स्वतंत्र सम्भाषण, प्रेस व सभाओं तथा विरोध मात्र पर प्रतिबंध अपरिहार्य हो गया था; फिर भी, सरकारी नौकरियों में चयन, योग्यता के आधार पर शुरू हो गया। नेपोलियन ने अपना ध्यान, ऊर्जा व धन, लोक-निर्माण कार्यों, पेरिस के सौंदर्यकरण, सड़क, नहर व पुल निर्माण में लगाया।

1801 ई० में नेपोलियन तथा पोप पाइस सप्तम के मध्य एक समझौता हुआ, जिसे 'कौंकौर्डा' कहते हैं तथा यह 1905 ई० तक चलता रहा। इसकी शर्तों के अनुसार, चर्च ने नेपोलियन के शासन को वैध मान्यता प्रदान कर दी; चर्च ने क्राँति के युग में जब्त की गई अपनी सम्पत्ति पर से अपना अधिकार समाप्त मान लिया अर्थात् पुनर्वितरण में जिन गरीबों को ये भू-भाग आवंटित हो गए थे उनका स्वामित्व बना रहा; बिशप नामित करने का अधिकार फ्राँस-सरकार को प्राप्त हो गया–निम्न धर्माधिकारी की नियुक्ति का अधिकार बिशप को था; पोप को बिशप को अपदस्थ करने का अधिकार अवश्य प्राप्त था; "टिथ" जैसा शोषक-कर (जिसकी वसूली चर्च करता था) समाप्त कर दिया गया–हाँलाकि, इससे चर्च की आय का एक स्त्रोत कम हो गया; कैथोलिक मत को बहुसंख्य फ्राँसीसियों के धर्म के रूप में स्वीकार कर लिया गया, किंतु, अन्य मतों व धर्मों के प्रति भी सहिष्णुता की नीति अपनाई गई। चर्च के समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों को वेतन राज्य द्वारा प्रदान किया जाता था।

लेकिन, नेपोलियन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुधार उसकी विधि संहिता अथवा 'कोड नेपोलियन' था। इसकी संरचना एवं संकलन, 1804 से 1810 ई० के मध्य हुआ था। उसके विधि विशेषज्ञों ने अनेक वर्षों तक परिश्रम करके, क्राँति एवं राजतंत्रीय परम्पराओं को समान्वित किया। उन्होंने रोमन तथा सामन्ती विधियों जैसे दो विरोधी धाराओं को समन्वित करके, एक सुदृढ़, एकीकृत विधि संहिता के निर्माण में सफलता प्राप्त की। यह नवीन कोड चारों भागों मे विभक्त था: 'सिविल' अथवा दिवानी 'क्रिमिनल' अथवा अपराध- विधि; 'कमर्शियल' अथवा वाणिज्यिक एवं 'पीनल' अथवा दण्ड-संहिता। दिवानी संहिता तो आगे-चलकर, बेल्जियम, हौलैण्ड, इटली, जापान व अमरीकी प्रान्त लुइसियाना में

भी लागू कर दिया गया। सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष बराबरी का दर्जा प्राप्त था, हाँलाकि, न्यायालयों में राज्य के हितों को अधिक प्रश्रय प्राप्त था। अपराध पता लगाने अथवा न्याय के रूप में भी यातना का प्रयोग होता रहा तथा, इसी प्रकार, छोटे-मोटे अपराधों में मृत्यु-दण्ड भी समाप्त नहीं किया गया था। किंतु, पत्नियों, छोटी उर्म के बच्चों एवं अवैध बच्चों को सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करने वाले विशेष कानून समाप्त कर दिए गए। पिताओं को ही संतानों पर समस्त अधिकार प्राप्त थे-माताओं को उनसे वंचित रखा गया था। गैर-धार्मिक अथवा 'सिविल' विवाहों तथा तलाक को वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी गई। वाणिज्यिक-संहिता द्वारा मध्यम-वर्ग को अधिक लाभ प्राप्त हुआ; श्रमिक-संघों को अवैध घोषित कर दिया गया; तथा ऋण, संविदा अथवा अनुबंध, वसीयत, सम्पत्ति एवं प्राधिकरणों से सम्बंधित नए कानून बनाए गए अथवा पूर्ववर्ती कानूनों में परिस्थितिजन्य संशोधन किए गए।

शिक्षा के क्षेत्र में भी नेपोलियन-प्रशासन की उपलब्धि अद्वितीय रही। उसने सार्वजनिक प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना प्रत्येक गाँव में की; उसने माध्यमिक स्कूल अथवा 'हाई स्कूल' अथवा "लाईसीज़"; अध्यापक प्रशिक्षण स्कूलों, तकनीकि स्कूलों को वृहद स्तर पर स्थापित किया। इस पूरी व्यवस्था पर नियंत्रण हेतु उसने 1808 ई० में 'यूनिवर्सिटी ऑफ़ फ्राँस' की स्थापना करी-जो पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का प्रशासनिक केंद्र था। हाँलाकि, इस पूर्ण व्यवस्था का एक उद्देश्य नेपोलियन के प्रति निष्ठावान नागरिक तैयार करना था।

फ्राँस की क्राँति एवं क्राँति के काल ने नेपोलियन के उदय को अपरिहार्य बनाया था-फ्राँस की आर्थिक स्थिति या वित्तीय संकट ने विशेषतया- अत: नेपोलियन ने वित्तीय सम्बन्धों को नियंत्रित करने एवं सुव्यवस्थित करने हेतु 'बैंक ऑफ़ फ्राँस' की स्थापना करी; मुद्रा-व्यवस्था को भी एक सुदृढ़ आधार प्रदान किया; वित्तीय वजट को भी संतुलित किया गया। नेपोलियन ने कर-वसूली की व्यवस्था को भी पुनर्निमित किया-उसने इस कार्य के लिए वेतनभोगी सरकारी प्रतिनिधियों अथवा कर्मचारियों को नियुक्त किया तथा पूर्व के भ्रष्ट कर-अनुबंधकों को हटा देया। उसने इस बात का भी ख्याल रखा, कि, कर सब पर बराबर से वितरित हों, किसी एक वर्ग पर अधिक कर न लगाए जाएँ तथा, सभी लोग समय पर कर जमा कर दिया करें। उसने क्राँतिकारी भू-वितरण को मान्यता प्रदान कर के, कृषकों की भी निष्ठा प्राप्त कर ली थी। वे उसे अपना संरक्षक मानने लगे।[31] यह राष्ट्र के भौतिक हितों से सम्बद्ध प्रश्न था, अत: उसने प्रतिक्रिया

के स्थान पर इसमें क्राँति का पक्ष लिया।[32]

उपरोक्त वर्णित महत्वपूर्ण व आश्चर्यजनक प्रशासनिक उपलब्धियों में, फिर भी, नेपोलियन की आंशिक उर्जा का ही व्यय हुआ, क्योंकि, इन्ही वर्षों में नेपोलियन की सैंय-कार्यवाहियों, युद्ध-विजयों व सफल कूटनीतिक गतिविधियों ने यूरोप को चकाचौंध एवं प्रभावित किया। शनैः शनैः यूरोप में फ्राँस के प्रभाव का विस्तार होने लगा व भावी फ्राँसीसी साम्राज्य की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी।[33] वैसे भी, यूरोप के प्रति फ्राँसीसी आक्रामक नीति क्राँति की विरासत थी।

नेपोलियन को सर्वप्रथम रूस, औस्ट्रिया एवं इंग्लैंड की सेनाओं के द्वितीय 'कोएलिशन' का सामना करना पड़ा। किंतु, शीघ्र ही, रूस इससे पृथक हो गया तथा औस्ट्रियाई सेना को नेपोलियन ने पराजित कर दिया, जिसके फलस्वरूप उसने औस्ट्रिया को 'लूनेविले की संधि', पर हस्ताक्षर करने को विवश कर दिया (1801 ई०)। इस संधि की शर्तें अक्षरशः वही थीं जैसी, 'कैम्पो फोर्मियो की संधि', की थीं। अब इंग्लैंड कोएलिशन में अकेला रह गया एवं वह युद्ध से भी पूर्णतः थक व हताश हो चुका था, अतः उसने भी 'अमीन्स की संधि' द्वारा 1802 ई० में शाँति स्थापित कर ली। इसकी शर्तों के अनुसार इंग्लैंड ने फ्राँस के विजित उपनिवेश व अन्य क्षेत्र उसे वापस देना स्वीकार किया। नेपोलियन ने जबकि, दूसरी ओर, इंग्लैंड को विनमय में कुछ भी प्रदान नहीं किया, अपितु, यूरोपीय बाजारों में अंग्रेजी उत्पाद के पुनर्प्रवेश पर भी प्रतिबंध लगाए रखा ! 'लूनेविले की संधि' के अनुसार नेपोलियन को जर्मनी के मानचित्र में परिवर्तन करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो गई; उसने जर्मनी के तीन सौ से अधिक रियासती राज्यों को समाप्त कर दिया; इनके अधिकांश भाग उसने दक्षिण के राज्यों जैसे बावेरिया, वुर्टेम्बर्ग एवं बेदेन आदि को सौंप दिए-जो उसके प्रति निष्ठावान भी थे-उसका मूल उद्देश्य फ्राँस के प्रभुत्व वाले एक तृतीय जर्मनी का निर्माण था ताकि वह औस्ट्रिया एवं प्रशा के प्रभुत्व वाले जर्मनियों के प्रभाव को संतुलित कर सके।[34]

इंग्लैंड इस पराजय-भाव वाली 'अमीन्स की संधि' से पूर्णतः असंतुष्ट था व हर कीमत पर शीघ्रताशीघ्र उसको निष्फल करने का इच्छुक था, अतः एक वर्ष बाद ही, 1803 ई० में फ्राँस के विरूद्ध युद्ध का श्रीगणेश कर दिया। नेपोलियन ने युद्ध-परक तैयारियाँ करते हुए, सर्वप्रथम अपने नवीन विश्व-साम्राज्य की स्थापना के विचार का परित्याग करते हुए, संयुक्त राज्य अमेरिका को उसका

क्षेत्र लुईसियाना बेच दिया। 1805 ई० आते-आते, इंग्लैंड ने पुनः फ्राँस के विरूद्ध यूरोपीय देशों के एक नवीन संयुक्त मोर्चे का निर्माण कर दिया, जिसे 'थर्ड कोएलिशन' के नाम से जाना गया। इसमें भी वे ही पुराने देश इंग्लैंड, रूस एवं औस्ट्रिया सम्मिलित थे।

नई घेरेबंदियों के फलस्वरूप, सर्वप्रथम 'ट्रैफ़ेलगर का युद्ध' (1805 ई०) हुआ। इंग्लैंड के महान एडमिरल लौर्ड नेल्सन ने केप ट्रैफ़ेलगर (स्पेन) के तट पर फ्राँस व स्पेन की संयुक्त जल-पोतों में से आधी डुबो दी व उन्हें बुरी तरह से पराजित कर दिया-इस युद्ध में इंग्लैंड को एक भी पोत अथवा जहाज की क्षति नहीं उठानी पड़ी, किंतु, युद्ध की विभीषिका के चलते, एडमिरल नेल्सन वीरगति को प्राप्त हुए। इस युद्ध ने एक निर्णायक भूमिका निभाई व स्पष्ट संकेत दे दिए, कि, समुद्र पर आदेश इंग्लैंड का ही सर्वमान्य होगा तथा, इसी के कारण, ब्रिटेन पर आक्रमण की योजना का परित्याग नेपोलियन को करना पड़ा ! जहाँ इंग्लैंड ने अपनी प्रभुसत्ता जल-युद्ध अथवा समुद्र में स्थापित कर ली थी, नेपोलियन थल पर लड़ाई में अब भी अजेय था। उसने औस्टर्लिट्ज़ के युद्ध में औस्ट्रिया एवं रूस की संयुक्त सेनाओं को पराजित करके, औस्ट्रिया को 'प्रेसबर्ग की संधि' पर हस्ताक्षर करने को विवश कर दिया; इस संधि की शर्तों के अनुसार नेपोलियन के दक्षिण के समर्थक राज्यों को अनेक औस्ट्रियाई क्षेत्र प्राप्त हो गए तथा वेनेशिया को औस्ट्रिया से पृथक कर के, नेपोलियन के इटली साम्राज्य का अंग बना दिया गया। इस प्रकार, फ्राँस को उत्तरी इटली पर संपूर्ण नियंत्रण प्राप्त हो गया एवं मध्य यूरोप में उसका प्रभुत्व निश्चित-सा हो गया। अगले वर्ष नेपोलियन ने अपने संरक्षकत्व में, पश्चिम जर्मन राज्यों का एक 'कौन्फ़ेडेरेशन ऑफ़ द राह्इन' अथवा राह्इन क्षेत्रीय राज्यों के संघ की स्थापना कर दी। तथा, साथ ही, उसने औस्ट्रिया के शासक फ्राँसिस द्वितीय को बाध्य किया, कि, वह अपने पवित्र रोमन सम्राट का खिताब त्याग दे व मात्र ऑस्ट्रिया के सम्राट का विरूद धारण करे रहे। जर्मनी के पुनर्गठन के इन कदमों व सुधारों के कारण ही उसे 'जर्मन एकता का पितामह' माना जाता है।[35] किंतु, जर्मन राज्यों पर फ्राँसीसी प्रभुत्व की स्थापना से प्रशा रूष्ट हो गया व उसने फ्राँस के विरूद्ध मोर्चा सम्भाल लिया किंतु, शीघ्र ही, जेना एवं आर्स्टाड्ट के युद्धों में नेपोलियन की सेनाओं से पराजित हुआ-अब नेपोलियन ने बर्लिन में प्रवेश भी किया। यही नहीं, नेपोलियन ने अब 'थर्ड कोएलिशन' के तीसरे देश की ओर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए, फ्रीडलैड के युद्ध में रूसी सेनाओं को

परास्त किया (1807 ई०)। इसी के परिणामस्वरूप, दोनों सम्राट तिलसिट नदी पर मिले एवं 'तिलसिट की संधि' हुई। यह नेपोलियन की सत्ता का चर्मोत्कर्ष था। ज़ार एलेक्ज़ैडर प्रथम एवं नेपोलियन ने वस्तुतः यूरोपीय महाद्वीप अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्रों के रूप में विभक्त कर लिया। रूस को अपने प्रभुत्व वाले क्षेत्र के रूप में फ़िन्लैण्ड, पूर्वी यूरोप के अनेक भाग एवं तुर्की प्राप्त हुए, जबकि, पश्चिमी यूरोप को नेपोलियन के प्रभुत्व वाले क्षेत्र के रूप में स्वीकार कर लिया गया। साथ ही, रूस ने अपने क्षेत्रों में ब्रिटिश व्यापार को निषेघ घोषित करना स्वीकार कर लिया। किंतु, इस संधि से सर्वाधिक क्षति प्रशा की हुई-उसका आधा क्षेत्र नेपोलियन के नियंत्रित राज्यों (जर्मन-राज्यों) को प्रदान कर दिया गया। इसी प्रकार, एल्बे के पश्चिम के प्रशा-क्षेत्र से एक नवीन वेस्टफ़ेलिया के राज्य का निर्माण करके, नेपोलियन के भाई जैरोम के अधीन कर दिया गया; तथा प्रशा-नियंत्रित पोलिश (पोलैण्ड के) प्रान्त ग्रैण्ड डची ऑफ़ वौरसौ के नाम से नेपालियन के समर्थक, सैक्सनी के शासक को प्रदान कर दिए गए। प्रशा की सेनाओं को मात्र ब्यालिस हजार सैनिकों तक सीमित कर दिया गया तथा, फ्रँसीसी सेनाओं ने बर्लिन पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। हौलैण्ड से लेकर डैन्मार्क तक का समस्त तट फ्राँस के अधीन आ गया !

इस प्रकार से, 1812 ई० आते-आते, फ्रांसीसी साम्राज्य अपनी उत्कटता पर पहुँच गया था। नेपोलियन ने नए राष्ट्रों का निर्माण करने के साथ ही बड़े-बड़े विरूद भी निर्मित किए तथा, इन दोनों को अपने मित्रों तथा सम्बंधियों में वितरित कर दिया। महान् जुलियस सीज़र के गौल की भाँति, नेपोलियन के साम्राज्य को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम, तो फ्राँसीसी साम्राज्य 'विशिष्ट' था जो प्रत्यक्ष रूप से नेपोलियन द्वारा प्रशासित था, इसमें फ्राँस, बेल्जियम, हौलैण्ड, राइनलैण्ड, डेन्मार्क तक का जर्मन तट, इलिरियन प्रान्त (युगोस्लाविया का डालमाशिया प्रान्त), रोम सहित उत्तरी इटली के अधिकांश भाग सम्मिलित थे। नेपोलियन के पुत्र का भी विरूद "रोम के शासक" था ! द्वितीय भाग में, निर्भर देशों की हम गणना कर सकते हैं, जो नोपोलियन के सम्बंधियों व निकट मित्रों द्वारा प्रशासित थे। उसके भाइयों को स्पेन एवं वेस्टफ़ैलिया (पश्चिम जर्मनी) के सिंहासन प्राप्त थे; उसके सौतेले पुत्र को इटली के राजदूत का पद प्राप्त था; उसका निष्ठावान सेनानायक मूरत्, नेपल्स का शासक था; उसका मित्र। सैक्सनी का शासक ही वौरसौ का ग्रैण्ड ड्यूक (शासक) था; इसी प्रकार स्विट्ज़रलैण्ड का महासंघ भी उसके प्रति निष्ठावान व्यक्तियों के शासनाधीन था। तृतीय श्रेणी

उसके समर्थकों (एलाइस) की थी, जिन्हें संधियों द्वारा अर्ध-आश्रित राज्यों में परिवर्तित कर दिया गया था। इस श्रेणी के राज्यों में प्रशा, औस्ट्रिया, रूस, डेन्मार्क एवं नौर्वे सम्मिलित थे। नेपोलियन के वृहद् साम्राज्य की परिधि के बाहर, मात्र इंग्लैड, स्वीडन एवं तुर्की औटोमन साम्राज्य ही रह गए थे।

इस प्रकार, नेपोलियन का प्रभाव पूर्ण यूरोप में ही पड़ रहा था-वह समस्त यूरोप में क्राँति तथा अपने शासन के सुधार प्रसारित कर रहा था-जहाँ-जहाँ उसका प्रवेश हुआ वहाँ-वहाँ क्राँति के आदर्शो का विस्तार करने में वह सफल रहा एवं उन सभी स्थानों से उसने सामन्तवाद को पूर्णतः उखाड़ फेंका। उसने सर्वत्र चर्च की शक्ति कम कर दी-उनके 'टिथ' जैसे कर-वसूलने एवं न्याय-करने के अधिकार समाप्त करके, कुछ स्थानों पर चर्च की सम्पत्ति भी जब्त कर ली और जहाँ भी वह गया वहां धार्मिक स्वतंत्रता, राज्य की नीति निर्धारित कर दी गई। प्रत्येक क्षेत्र से सामन्ती विशेषाधिकार व विशेष कर समाप्त कर दिए गए। सभी विजित व आश्रित राज्यों में नेपोलियन के निदेशन में संकलित विधि-संहित अथवा 'कोड नेपोलियन' लागू कर दिया गया; एवं सभी व्यक्तियों को विधि की दृष्टि में अथवा उसके समक्ष सम व समानाधिकार प्राप्त हो गए। नेपोलियन का ही प्रभाव था, कि इन तमाम क्षेत्रों में प्रशासनिक सुधार भी क्रियान्वित हुए; योग्यता को वरीयता प्रदान की गई; अधिकारियों व कर्मचारियों को राज्य से वेतन प्राप्त होने लगा तथा भ्रष्टाचार पर भी प्रर्याप्त नियंत्रण लागू किया गया। इसी प्रकार, जहाँ-जहाँ नेपोलियन ने क्राँति की मशाल जलाई, वहाँ-वहाँ शिक्षा का प्रसार हुआ; नई सड़कों व पुलों का निर्माण हुआ; नाप व तौल की नवीन व्यवस्था भी लागू की गई; आन्तरिक चुँगी अवरोधक समाप्त कर, मुक्त व्यपार को समस्त यूरोपीय महाद्वीप में प्रोत्साहित किया गया; इस के पश्चात् प्रतिबंधित करने वाली व्यापार श्रेणियाँ भी समाप्त कर दी गईं। तथा, सभी जगह व्यवस्थित सरकारें प्रदान करने हेतु, संविधान प्रदत्त किए गए, हाँलाकि, वह मूलतः एक सैन्य-अधिनायक था एवं विरोध तो कत्तई बर्दाश्त नहीं कर पाता था, फिर भी, अनेक अर्थों में वह क्राँति की संतान था। किंतु, वह जिस साम्राज्य की नींव रख रहा था वह पूर्णतः फ्राँस-केंद्रित था-अपने विदेशी नागरिकों पर वह अधिक कर लगाता था तथा उनको सैनिक-सेवाएँ भी प्रस्तुत करनी पड़ती थी, अतः 1810 ई० में स्वीकारोक्ति करते हुए उसने लिखा था "मेरी नीति है सर्वप्रथम फ्राँस"[36] किंतु पुरातन वंश परम्पराएँ एवं आधुनिक राष्ट्रवाद का आदर्श साथ-साथ चल ही नहीं सकते। चूँकि, क्राँतिकारी विचारों एवं क्राँति के उदाहरण

राष्ट्रीय आत्मनिर्धारण को ही सशक्त करते हैं, अतः नेपोलियन के लिए अपरिहार्य हो गया, कि, अपने वृहद् साम्राज्य को सांतत्य प्रदान करने के लिए, वह इन प्रवृत्तियों को ही निष्फल कर दे, जिनके कारण वह स्वयं सत्ता प्राप्त करने में सफल रहा था। अन्ततोगत्वा, 1789 ई० में प्रारम्भ हुई क्रांति ने ऐसी शक्तियाँ प्रवाहित कर दी थीं, जिनमें राजतंत्रीय व्यवस्थाएँ पनप ही नहीं सकती थीं। नेपोलियन का साम्राज्य, इस प्रकार, अन्तर्निहित विरोधी प्रवृत्तियों के कारण पतनशील हो गया-यह अपरिहार्य था।[37]

नेपोलियन इतिहास क्रम को भली-भाँति समझता था-वह जानता था, कि, इंग्लैंड की फ्राँस से परम्परागत शत्रुता है, अतः उसे बिना पराजित किए हुए यूरोपीय महाद्वीप पर फ्राँसीसी प्रभुसत्ता स्थापित नहीं हो सकती है। और, इंग्लैंड, मूलतः एक औपनिवेशिक शक्ति था, जो इन उपनिवेशों का उपयोग कच्चा माल की खरीद एवं उत्पादित वस्तुओं के बाजार के रूप में करता था। अतः वह इंग्लैंड को "दुकानदारों का राष्ट्र" अथवा, "ए नेशन ऑफ़ शौपकीपर्स" कहता था। अतः उसका दृष्टिकोण था, कि, चूँकि, इंग्लैंड की जल-सेना की शक्ति अद्वितीय है-उसे पराजित करना दुष्कर ही नहीं असम्भव है इसीलिए, उसे परोक्ष रूप से उसके आर्थिक हितों पर प्रहार कर के-पराजित किया जा सकता है। इस कारणवश उसने अपने प्रभाव-वाले यूरोपीय क्षेत्रों में, अर्थात् लगभग पूर्ण यूरोप में ही महाद्वीपीय व्यवस्था लागू कर दी। 1806 ई० में जारी की गई 'बर्लिन डिक्रीज़' (कानून) द्वारा नेपोलियन के आश्रित एवं समर्थक राज्यों को ब्रिटिश-उत्पाद आयात करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। दूसरी ओर, इसके द्वारा वह फ्राँसीसी अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ करना चाहता था। उसके विचारानुसार, एक बार यूरोप के बाजार से ब्रिटिश सामान हटते ही वह स्थान फ्राँस एवं फ्राँसीसी उत्पाद प्राप्त कर सकते थे। ब्रिटेन की प्रतिक्रिया भी प्रभावी एवं गतिशील थी-1807 ई० में "और्डर्स इन कौंसिल" द्वारा नेपोलियन के आदेशों का पालन करने वाले देशों के जल-यान पर ब्रिटिश बंदरगाहों में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया तथा ऐसे जल-पोत, जिन्होंने ब्रिटेन को कर अदायगी नहीं की है, उन्हें भी जब्त किया जा सकता था। इस प्रकार, ब्रिटेन भी यूरोप के वैकल्पिक उत्पाद स्त्रोंतों को निष्प्रभावी करने के लिए जाल बिछा रहा था। ख़ासतौर से, प्रभावी फ्राँसीसी जल-सेना के अभाव में ब्रिटेन के नियम तो पूर्णतः प्रभावशाली बने रहे। उसके प्रत्युत्तर में नेपोलियन ने मिलान 'डिक्री' (धारा) उद्घोषित कर दी।

जिसके अनुसार (ब्रिटिश आदेशानुसार अपने-आप को जो तटस्थ देश घोषित कर रहे हैं) ब्रिटिश आज्ञाओं का पालन करने वाले, सामुद्रिक जहाज, फ्राँस द्वारा बंदी बनाए जा सकते थे। इस प्रकार के आदेशों, प्रति-आदेशों के चलते तटस्थ देश, वास्तव में, असंतुष्ट एवं रूष्ट हो गए तथा संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे तमाम देशों ने कुछ समय के लिए तो अपनी जहाजरानी गतिविधियों पर स्वयं प्रतिबंध घोषित कर दिया। नेपोलियन को, आशा थी, कि; आर्थिक-वाणिज्यिक गतिविधियों के अवरूद्ध होने के कारण इंग्लैड के **व्यवसायी वर्गों** एंव हितों का दबाव अपनी सरकार एवं शासन पर होगा, कि, वह युद्ध समाप्त करके शीघ्र ही नेपोलियन से समझौता करें। किंतु, जमीनी वास्तविकता इसके ठीक विपरीत थी-यूरोप का ही कार्य ब्रिटिश उत्पाद के अभाव में नहीं चल पा रहा था, अत: तस्करी अपने चरम पर पहुँच गयी थी, जिसे फ्राँसीसी जल-सेना रोकने में पूर्णत: असफल सिद्ध हुई। अत: फ्राँसीसी व्यापार को इससे क्षति ही हुई, जबकि, इंग्लैंड को संयुक्त राज्य अमरीका में नवीन बाजार प्राप्त हो गए थे। पूर्ण यूरोप बिना ब्रिटिश माल के, कसमसाने लगा था व वैकल्पिक स्त्रोतों के अभाव में महाद्वितीय व्यवस्था का विरोधी होता जा रहा था। और यही कारण था-यूरोप में राष्ट्रवाद के पुनरूत्थान का, जिसके परिणामस्वरूप अन्तत: नेपोलियन का पतन हो गया था।

नेपोलियन का पतन

नेपोलियन का पतन-उसकी व्यवस्था के अन्तर्निहित व आत्मघाती दोषों के कारण-अपरिहार्य था।[36] फ्राँस के विजय अभियानों ने प्रतिक्रियास्वरूप अनन्त: ब्रिटिश प्रतिरोध को जन्म दिया-मई 1803 ई० से प्रारम्भ होकर 1814 ई० तक निरन्तर युद्धों का क्रम चलता रहा। शाँति स्थापना की सम्भावनाएँ क्षीण होती गईं वह इस लम्बे अंतराल में वह स्थापित भी नहीं हुई ! नेपोलियन को महाद्वीपीय व्यवस्था द्वारा ब्रिटेन को पराजित करने हेतु अपनी तटीय सीमा अथवा सामुद्रिक सीमाओं का भी निरन्तर विस्तार करना आवश्यक हो गया था। और, इसके फलस्वरूप, ब्रिटिश प्रतिरोध व अन्य यूरोपीय देशों की फ्राँस से अप्रसन्नता बढ़ती ही गई। यह विजय एवं प्रतिरोध का एक अजीब दुष्चक्र था। इसी प्रकार से नेपोलियन का साम्राज्य अपने भीतरी विरोधाभासों के कारण भी आत्मघाती था। ये विरोधाभास उसके वंशीय एवं राष्ट्रवादी नीतियों के मध्य था। अत: उसके इस स्व-निर्मित विशाल साम्राज्य का पतन तो अवश्यम्भावी ही था।

नेपोलियन के द्वारा विजित देशों का राष्ट्रवाद उसकी सत्ता को शनैः शनैः क्षीण करने लगा था। इन तमाम देशों के राष्ट्रवादी तत्व अपनी रीतियों एवं परम्पराओं के साथ-साथ, स्व-शासन के प्रबल इच्छुक थे, वे फ्राँसीसी सेनाओं के साथ प्रविष्ट एकीकृत विधि व प्रशासनिक एकरूपता से खिन्न थे; संकीर्ण तत्व क्राँतिकारी नारों व विधि के विरूद्ध थे तथा उदारवादी तत्व, सैन्य-अधिनायकवाद के विरूद्ध थे। और सभी तत्व उसके द्वारा सैनिकों व धन की माँग से असंतुष्ट व रूष्ट थे। विरोध, प्रतिरोध, एवं विद्रोह उपयुक्त अवसर की तलाश में स्थगित मात्र था !

1803 ई० से 1813 ई० तक चला स्पेनी अथवा प्रायद्वीपीय युद्ध, नेपोलियन के संसाधनों को विनष्ट करने वाला सबसे प्रमुख युद्ध था। नेपोलियन को महाद्वीपीय व्यवस्था के चलते छोटे से देश पुर्तगाल पर आक्रमण करना पड़ा, क्योंकि, उसने इंग्लैंड के साथ व्यापार न करने से इंकार कर दिया था। आगे चलकर प्रसिद्ध ड्यूक ऑफ़ वैलिंग्टन के नेतृत्व में ब्रिटिश सेनाएं अपने पुराने समर्थक की सहायतार्थ भेजी गईं तथा, इसी समय, अपने बूरबौं शासक चार्ल्स चतुर्थ के स्थान पर, नेपोलियन के भाई जोज़फ को शासक बनाए जाने के कारण, स्पेन ने विद्रोह कर दिया था-महाद्वीपीय एवं क्राँतिकारी-विधि के आगमन ने पुरातन स्पेनी विधि एवं परम्पराओं का स्थान लेना प्रारम्भ कर दिया और इसके परिणामस्वरूप, स्पेनी राष्ट्रवाद की उत्पत्ति हुई तथा नेपोलियन को निरन्तर सेनाएँ भेजने के लिए बाध्य होना पड़ा किंतु, फिर भी, वह गुरिल्ला युद्ध का सफलतापूर्वूक सामना न कर सका। इस स्पेनी प्रतिरोध ने जहाँ एक ओर नेपोलियन का ध्यान व उर्जा नष्ट किया वहीं, दूसरी ओर, दूसरे लोगों को भी नेपोलियन के विरूद्ध जागृत होने का उदाहरण व आवश्यक प्रेरणा प्रदान करी। अन्ततः ड्यूक ऑफ़ वैलिंग्टन, स्पेन से शासक जोज़फ सहित समस्त फ्राँसीसी ताने-बाने को स्पेन से खदेड़ने में सफल रहा। स्पेन में एक कैथोलिक राजशाही सरकार पुनः स्थापित हो गई।

औस्ट्रिया एवं प्रशा दोनों की अपमानजनक पराजय, जर्मन राष्ट्रवाद के उदय के लिए उत्तरदायी तत्व साबित हुए। जर्मन अस्मिता व श्रेष्ठता सर्वप्रथम जर्मन बुद्धिजीवियों ने स्थापित करना प्रारम्भ किया, अतः उन्होंने जर्मनवासियों को गौरवमयी अतीत का स्मरण कराते हुए, उन्हें वर्तमान अधीनता की जंजीरों को काटने के लिए जागृत किया। इसी के परिणामस्वरूप, सबसे सशक्त जर्मन राज्य औस्ट्रिया ने, अन्ततः, 1809 ई० में इस विजेता के विरूद्ध युद्ध का बिगुल

बजा ही दिया, किंतु, पूर्णतः पराजित होकर 'स्कोनब्रन की संधि' (1809 ई०) पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस अपमानजनक संधि की शर्तों के अनुसार उसके डाल्मेशियन प्रान्त, फ्रांस को प्राप्त हो गए तथा वौरसौ की ग्रैण्ड डची का क्षेत्र विस्तृत हो गया। औस्ट्रिया से स्थायी समर्थन के साथ-साथ, पुरुष संतान व उत्तराधिकारी की आशा में, नेपोलियन ने सम्राट फ्रांसिस द्वितीय की एक पुत्री मेरी लुई से 1810 ई० में विवाह भी कर लिया।

जेना के इस युद्ध की औस्ट्रियाई पराजय ने प्रशा को झकझोर दिया। 1810 ई० में बर्लिन विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही वह जर्मन संस्कृति व राष्ट्रवाद की धुरि बन गया। उसने अपनी सैन्य-व्यवस्था भी इतनी सुचारू कर ली थी, कि, संधि की शर्तों के अनुसार, जितने सैनिक रखे जा सकते थे उसके तीन गुणे वह आरक्षित रखता था। इसी प्रकार प्रशासन में आवश्यक सुधार कर के, उसे पूर्णतः केंद्रीकृत कर दिया था ताकि, शासक के हाथों में अधिक अधिकार व शक्ति सीमित हो सके तथा नेपोलियन के विरूद्ध मोर्चा ले सकने के लिए राज्य को अधिक सक्षम व तत्पर बनाने की तैयारियाँ की जाने लगीं !

इसी प्रकार, रूस को भी महाद्वीपीय व्यवस्था से अत्यधिक कष्ट व हानि हो रही थी और वह प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियों के कारण, किसी भी प्रकार, नेपोलियन के बंधन से मुक्त होने के उपाय तलाश रहा था। वह फ्रांस व औस्ट्रिया के निकटतम सम्बंधों से सतर्क था फिर, नेपोलियन की हैप्सबर्ग राजकुमारी के साथ विवाह से उसे अपनी सत्ता के ह्रास के चिंह स्पष्टतः दिखाई देने लगे, यूरोपीय महाद्वीप में एक शक्ति के रूप में, उसको अपना स्थान नगण्य होने का खतरा दिखाई देने लगा। इनके अतिरिक्त, वह पोलैण्ड में, फ्रांस की कठपुतली सरकार को भी सहन नहीं कर पा रहा था। तथा, उसकी आशाओं के अनुरूप उसकी पूर्वी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में भी नेपोलियन ने कोई विशेष सहायता प्रदान नहीं करी। अन्ततोगत्वा, इन सबके परिणामस्वरूप, विश्व सैन्य इतिहास की सर्वाधिक दुस्साहासिक दुर्घटना घटी-नेपोलियन का 'मौस्को अभियान', जिसमें इतिहास की सबसे विशाल छह लाख दस हजार की सशक्त सेना पूर्णतः विनष्ट हो गई व उसमें मात्र बीस हजार ही शेष बचे रह गए थे।[39] रूस द्वारा महाद्वीपीय व्यवस्था का पक्षधर न बनने के कारण, कुपित नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण कर दिया-किंतु, रूसवासी प्रत्यक्ष युद्ध से बचते हुए पीछे हटते चले गए । पीछे हटना एक सामरिक योजनाबद्ध प्रक्रिया थी-पीछे हटती हुई

रूसी सेनाएँ शहरों, ग्रामों, खेतों एवं खलियानों में आग लगाकर नष्ट करती गईं अर्थात् "स्कोर्च्ड अर्थ" तकनीक अथवा युद्ध पद्धति अपनाकर, आक्रमणकारी सेनाओं को न केवल सुरक्षित प्रश्रय से ही, अपितु, खाद्यान्न से भी वंचित कर दिया। नेपोलियन इस आशा में बढ़ता गया, कि, मौस्को पहुँचकर इन दोनों समस्याओं का समाधान हो जाएगा। किंतु, मौस्को में भी उसे निराशा ही हाथ लगी-उसपर आधिपत्य स्थापित होने पर नेपोलियन को ज्ञात हुआ, कि, अधिकांश शहर जल चुका है अतः आसन्न रूसी ठंडक से आश्रय व सुरक्षा के अभाव में वह वापस लौटने को बाध्य हो गया। वापस लौटती सेनाओं को रूसी सेनाओं के प्रतिदिन के आक्रमणों के साथ-साथ भयानक सर्दी, बिमारी व अव्यवस्थित होने के बोझ का भी सामना करना पड़ा। परिणामस्वरूप, नेपोलियन की सेनाएँ पूर्णतः हतोत्साहित हो गईं!

रूस के इस प्रकरण के फलस्वरूप, ही प्रारम्भ में प्रशा तथा, शीघ्र ही, औस्ट्रिया भी, अपने पूर्व शत्रु के विरूद्ध उठ खड़े हुए एवं ब्रिटेन रूस के साथ चतुर्थ संयुक्त मोर्चे अथवा "फोर्थ कोएलिशन" का निर्माण कर डाला (1813 ई०)। हाँलाकि-नेपोलियन ने एक नवीन सेना पुनर्गाठित कर ली, वह "लीप्ज़िग के महान युद्ध" में पराजित हो गया (1813 ई०)। इस युद्ध में नेपोलियन के विरूद्ध लगभग सभी प्रमुख देश सम्मिलित थे, अतः इसे 'राष्ट्रों का युद्ध' अथवा 'द बैटल ऑफ़ नेशन्स' भी सम्बोधित किया गया है। अब तक सभी यूरोपीय राष्ट्र नेपोलियन के विरूद्ध एकजुट हो गए व पेरिस की ओर कूच कर दिया। नेपोलियन ने अपने पुत्र नेपोलियन द्वितीय के पक्ष में पद त्याग कर के, एल्बा के छोटे से द्वीप में सम्राट के विरूद एवं 200,000 पौंड के साथ रहना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार की उदार शर्तों के साथ, एलाईज़ अथवा मित्र देशों ने स्वाधीनता के युद्ध अथवा" वौर ऑफ़ लिब्रेशन" को अंजाम दिया।

तदुपरान्त, यूरोपीय शक्तियों का एक सम्मेलन वियना में आयोजित हुआ ताकि, शाँति एवं व्यवस्था स्थापित हो सके। 1792 ई० के पूर्व वाली सीमाओं तक फ्राँस को पुनर्गठित कर दिया गया (उसके मात्र विजित देश-प्रदेश ही उससे पृथक कर दिए गए)। शीघ्र ही, बूरबौं उत्तराधिकारी लुई अष्टादश (या अठारहवाँ, सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने तत्काल अपनी फ्राँसीसी जनता को एक उदारवादी संविधान प्रदान कर दिया, जो "चार्टर ऑफ़ 1814" के नाम से प्रसिद्ध है। इसी के साथ, नेपोलियन विधि संहिता; नवीन कर-प्रणाली; "बैंक ऑफ़ फ्राँस" तथा

अन्य अनेक शिक्षण, प्रशासनिक एवं संस्थागत सुधार, जो सर्वप्रथम नेपोलियन ने प्रस्तावित व क्रियान्वित किए थे, वे बरकरार रखे गए। लुई अठारहवें ने पुरातन व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया। फिर भी, मार्च 1815 ई० में, नेपोलियन एल्बा से वापस लौटा तथा एक अत्यन्त व वास्तविक उदारवादी सरकार प्रदान करने का आश्वासन दिया। किन्तु, बेल्जियम के वौटरलू नामक स्थान पर वह अपने जीवन में अंतिम बार पराजित हुआ। विजय का सेहरा ड्यूक ऑफ़ वैलिंग्टन के माथे पर बँधा। उसे अब की बार दक्षिण एटलांटिक के सेन्ट हेलेना नामक द्वीप में निर्वासित कर दिया गया (18 जून 1815 ई०)।

□

[9]

प्रतिक्रिया का युग

नेपोलियन के साम्राज्य ने यूरोप को एक प्रकार की व्यवस्था एवं एकता प्रदान की थी। उसके प्रतिरोध व प्रतिक्रिया ने इसके प्रतिकूल एक भिन्न प्रकार की एकता को जन्म दिया, जिसका मुख्य उद्देश्य फ्राँस को परास्त करना था। और यह एकता ही नेपोलियन के दोनों निर्वासनों के लिए उत्तरदायी थी। नेपोलियन ने अपनी इच्छानुसार यूरोप के मानचित्र को पूर्णतः तहस-नहस कर दिया था, अतः उसका पुनर्निर्माण आवश्यक था। साथ ही आवश्यक था, भविष्य की क्राँतियों व नेपोलियनों के उदय से संपूर्ण यूरोप को सुरक्षित तथ संरक्षित रखना। यूरोप के तमाम देशों ने नेपोलियन के विरूद्ध असामान्य एकता का प्रदर्शन किया था, अतः अब वे असामान्य ढंग से पराजित फ्रांस के विजित प्रदेशों के विभाजन-वितरण के लिए वियना में एकत्रित हुए। वियना सम्मेलन का मूल उद्देश्य क्राँति से पूर्व की स्थिति में यूरोप को पुनर्स्थापित करना था। इसमें यूरोप के प्रत्येक देश के प्रतिनिधियों ने भाग लिया, किंतु, औस्ट्रिया, इंग्लैंड, प्रशा व रूस-के अर्थात् चान्सलर मैटरनिख़, लौर्ड कैस्लरेह, फ्रेड्रिक विलियम द्वितीय एवं ज़ार एलैक्ज़ैन्डर प्रथम क्रमशः मुख्य थे। फ्राँस को भी न्यायसंगत प्रतिनिधित्व प्रदान करने के दृष्टिकोण से, तैलेराँ को निमंत्रित किया गया था। किंतु, इन मुख्य प्रतिनिधियों में भी केंद्रीय भूमिका औस्ट्रियाई चान्सलर मैटरनिख़ ने निभाई और यूरोप उसी के सिद्धान्तों पर आधा रेत व्यवस्था के अनुरूप 1848 ई० तक चलता रहा, अतः 1815 ई० से 1848 ई० तक का काल 'मैटरनिख़ का युग' सम्बोधित होता है।

इस सम्मेलन के मौलिक व आधारभूत सिद्धान्तों में फ्राँस, के भावी आक्रमणों व आक्रामक महत्वाकांक्षाओं के विरूद्ध प्रतिरोध स्थापित करना मुख्य था और इसी दृष्टिकोण से, औस्ट्रियन नीदरलैण्ड्स (भावी बेल्जियम) व लग्ज़मबर्ग को हौलैण्ड के साथ सम्बद्ध कर के, उत्तर में एक 'बफ़र राज्य' निर्मित कर दिया गया; प्रशा को राहइनलैण्ड का क्षेत्र प्रदान कर दिया गया था; जैनोआ व सैवोय का एक भाग सार्डिनिया (पीडमौंट्) के राज्य को प्राप्त हुआ; जर्मनी के

क्षेत्र औस्ट्रिया व प्रशा को उनके हितों के अनुसार विभक्त कर दिए गए; तथा उन्तालिस राज्यों का जर्मन महासंघ, औस्ट्रिया की अध्यक्षता में निर्मित कर, वहाँ से फ्राँसीसी प्रभाव को पूर्णतः निर्मूल कर दिया था। इसी प्रकार, नेपोलियन की विजयों से अत्यधिक प्रभावित एक अन्य क्षेत्र था इटली-वहाँ भी उसके प्रभाव को कुण्ठित किया गया। औस्ट्रिया ने लोम्बार्डी पुनः प्राप्त कर लिया। औस्ट्रियन नीदरलैण्ड्स के स्थान पर, उसे वैनेशिया भी प्रदान किया गया; पोप के राज्य पोप को पुर्नप्राप्ति हो गए। बूरबाँ शासक नेपल्स के राज्य पर पुनर्स्थापित हो गए। अन्य व्यवस्थाओं के अन्तर्गत पार्मा, मौडेना व टस्कनी की डचियाँ औस्ट्रियाई शासकों के अधीन आ गईं, डेनमार्क से नौर्वे लेकर स्वीडन को; तथा, स्वीडन से फिन्लैन्ड लेकर रूस को प्रदान कर दिया गया। इस सम्मेलन ने स्विट्ज़रलैंड की तटस्थता की गारंटी भी दी तथा, दास-व्यापार को निषेध घोषित कर दिया गया।

वियना सम्मेलन का एक प्रसिद्ध प्रतिपादित सिद्धान्त वैधता का था, जिसको सर्वप्रथम फ्राँसीसी तैलेराँ ने पारिभाषित कर के यूरोप के मानचित्र को परिवर्तित करने का दोष क्राँति व नेपोलियन पर मढ़ कर, फ्राँसीसी राजतंत्र को सुरक्षित कर लिया। अन्ततः सभी यूरोपीय शक्तियों ने लुई अठारहवें को फ्राँस के वैधा शासक के रूप में स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार, स्पेन एवं इटली में वहाँ के नेपोलियन के पूर्व के वैध शासकों को अपने-अपने राज्य पुनः प्राप्त हो गए।

1815 ई० के वियना सम्मेलन द्वारा स्थापित व्यवस्था के फलस्वरूप, फ्राँस में बूरबाँ वंश का लुई अष्टादश, जो अभागे लुई षोडश का भाई था-सिंहासनारूढ़ हुआ। उसे दो कट्टर विरोधी राजनीतिक दलों का सामना एक साथ करना पड़ा। एक ओर उदारवादी थे, जिसमें गणतंत्रवादी व बोनापार्टी अथवा बोनापार्ट-वादी थे-जो बूरबाँ वंश की पुनर्स्थापना के विरूद्ध थे। दूसरी ओर, उत्कट-राजतंत्रवादी थे-इसमें मुख्यतः कुलीन व धर्माधिकारी वर्ग के सदस्य थे, जो शासक से भी अधिक राजतंत्रीय थे तथा, जो क्राँति का प्रतिशोध लेने में अधिक उत्सुक थे। इन दोनों धाराओं के मध्य लुई अठारहवाँ एक मध्यम-मार्ग के अनुसरण का इच्छुक था। उसने निर्वासित जीवन का भी अनुभव किया था और वह उसकी पुनरावृत्ति का कदापि इच्छुक नहीं था। अतः वह समझौते की नीति का अनुसरण करने का पक्षधर था। वह क्राँति की विरासत को राजतंत्र के साथ समन्वित करने हेतु प्रयासरत था। वह यह भलि-भाँति समझ चुका था कि बूरबाँ वंश की पुनर्स्थापना

का अर्थ पुरातन-व्यवस्था की पुनर्स्थापना नहीं था। वह समयानुसार प्रशासन में परिवर्तन के महत्व को समझता था। अतः वह क्राँतिकारी व्यवस्था के मूलभूत तत्वों पर आक्रमण नहीं करता था। उसने स्वेच्छा से लोगों को एक "चार्टर" अथवा संविधान प्रदान किया, जिसमें एक निर्वाचित सदन की व्यवस्था थी; उसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं समानता को भी स्वीकार किया गया; लोगों को धार्मिक एवं प्रेस की स्वतंत्रता प्रदान कर दी, किंतु, उत्कट राजतंत्रीय तत्व इसके पूर्णतः विरुद्ध थे और उन्होंने क्राँति के रचनाकारों के विरूद्ध एक 'श्वेत आतंक' या "वाह्इट टेरर" प्रारम्भ किया, जो दक्षिणी फ्राँस में फैल गया। "चैम्बर ऑफ़ डिप्टीज़" में भी इन्हीं तत्वों को बहुमत प्राप्त हो गया-शासक ने घबड़ाकर चैम्बर्स का विलय कर नए चुनावों की तत्काल घोषणा कर दी। इन चुनावों में उसकी नीति के अनुयायी बहुमत में हो गए, जो "फ्राँसीसी लोगों को राजशाही में परिवर्तन करने व राज-सिहांसन के राष्ट्रीयकरण" के कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए दृढ़ संकल्प थे। अतः, उनकी सहायता से फ्राँसीसी शासक ने फ्राँस का पुनर्गठन प्रारम्भ किया-सर्वप्रथम, वित्तीय व्यवस्था दुरूस्त की गई-तथा कुछ ही समय मे फ्राँस ने युद्ध हर्जाना भी पूरा चुका दिया, जिसके परिणामस्वरूप, ए-ला-शैपेल के सम्मेलन ने फ्राँस से आधिपत्य की सेनाओं को हटाने का निर्णय ले लिया व फ्राँस को यूरोपीय महासम्मेलन अथवा कन्सर्ट का सदस्य घोषित कर दिया। 1818 ई० तक फ्राँसीसी भूमि से विदेशीं सैनिकों की अपमानजनक उपस्थिति समाप्त हो गई। आवश्यक सैन्य-सेवा के आधार पर, फ्राँसीसी सेना को भी पुनर्गठित किया गया; प्रेस पर से भी प्रतिबंध समाप्त कर दिए गए; किंतु उदारवादी सुधारों का क्रम ड्यूक दि बेरी की हत्या के कारण एकदम से अवरूद्ध हो गया। अतः जन-भावना, उदारवादियों के विरूद्ध हो गई तथा नए चुनावों में उत्कट राजतंत्रीय-समर्थक सत्तासीन हो गए एवं प्रतिक्रिया व दमन के युग का सूत्रपात हुआ। शासक भी निष्क्रिय रूप से राष्ट्र को अनुदार होते देखता रहा। मेटरनिख़ की सहमति से तथा पुनर्स्थापित बूरबौं वंश को सैंय गौरव प्रदान करने की नियत से, स्पेन के फर्डीनेन्ड सप्तम के दमनकारी राज्य की पुनर्स्थापना के लिए सैन्य सहायता भी भेज दी, जिसके परिणामस्वरूप, फ्राँसीसी विदेश नीति वृहद् यूरोपीय नीति विशेषतः पवित्र संघ ('होली एलायन्स') के अनुरूप हो गई। इसी बीच 1824 ई० में लुई अठारहवें की मृत्यु हो गई।

लुई का भाई चार्ल्स दशम के विरूद के साथ सिंहासनारूढ़ हो गया। वह पुनर्स्थापित निर्वासितों का नेता था, अतः क्राँति के कार्यों को समाप्त कर

के, पुरातन व्यवस्था की पुनर्स्थापना उसका मुख्य उद्देश्य था। जन-स्वतंत्रता की कीमत पर उसने कुलीन व धर्माधिकारी वर्ग के हितों के अनुरूप शासन प्रारम्भ किया। उच्च वर्गों को क्राँति की क्षति-पूर्ति के लिए बची रकम प्रदान की गई; धर्माधिकारी वर्ग को अपने विशेषाधिकार पुनः प्राप्त हो गए; जेसुइट वापस आ गए-कैथोलिक-मत विरोधी आचरण पर कठोर दण्ड का प्रावधान हो गया।

विदेश नीति के कारण यह काल फ्राँस की अंतर्राष्ट्रीय छवि की पुनर्स्थापना के दृष्टिकोण से, महत्वपूर्ण रहा है। फ्राँस ने न केवल एल्जियर्स विजित कर लिया अपितु, यूनान के स्वतंत्रता-संग्राम में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई व उनको सहायता प्रदान करी। किंतु, चार्ल्स दशम का शासन निरंकुशवादी होता जा रहा था-पोलिग्नैक की अध्यक्षता वाले मंत्रिमंडल के गठन के बाद तो - प्रेस की स्वतंत्रता समाप्त कर दी गई; संसद भंग हुई; चुनाव प्रक्रिया में मौलिक परिवर्तन हुए; मताधिकारियों की संख्या में अभूतपूर्व कमी की गई, अतः विद्रोह की पूर्ण पृष्ठभूमि निर्मित हो गई। और इस निरंकुशवादी शासन के विरूद्ध भड़के विद्रोह को 'जुलाई क्राँति' के नाम से जाना जाता है। विद्रोहियों ने शासक की सेना को पराजित करके राजधानी पर पेरिस की उग्र, उदारवादी; क्राँतिकारी भीड़ का आधिपत्य स्थापित कर दिया। चार्ल्स ने पलायन कर, अपने पौत्र के समर्थन में पद- त्याग भी कर दिया, किंतु, लोगों ने उसे अस्वीकार कर ड्यूक ऑफ़ और्लीन्स की अध्यक्षता में एक अन्तरिम सरकार का गठन किया। लुई फिलिप (ड्यूक ऑफ़ और्लीन्स) बूरबौँ वंश की एक उपशाखा का सदस्य था, जो उदारवादी था। लुई फिलिप ने "किंग ऑफ़ द फ्रेंच" के विरूद से पद-ग्रहण किया। पुनः धार्मिक स्वतंत्रता व प्रेस की स्वतंत्रता स्थापित हो गई; संविधान में आवश्यक सुधार किए गए, जिससे लोगों को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होने के साथ-साथ, उनके हितों की रक्षा हो सके। नए शासक ने संविधान के अनुरूप शासन करने का आश्वासन प्रदान किया। पेरिस के लोगों द्वारा एक संवैधानिक सरकार के गठन की सफलता ने, उदारवाद की सफलता का उद्घोष किया तथा, इसी के परिणामस्वरूप, बेल्जियम, जर्मनी, इटली, पोलैण्ड व इंग्लैंड में भी लोगों ने स्वतंत्रता व स्व-शासन के लिए आंदोलन प्रारम्भ कर दिए-जिससे वियना सम्मेलन द्वारा स्थापित व्यवस्था को एक जबरदस्त चुनौती मिली। उसमें स्थापित वैधता का सिद्धान्त, और्लीन्स वंशीय सत्ता-प्राप्ति के पश्चात् अस्वीकृत हो गया था। बेल्जियम द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति ने इसी प्रकार, इस सम्मेलन द्वारा निर्मित कृत्रिम यूरोपीय व्यवस्था के पतन का सूत्रपात कर दिया-यह, इस व्यवस्था की पहली दरार थी,

जो शीघ्र ही, एक न पट सकने वाली खाई में परिवर्तित हो गई और, अन्ततः, यह पूर्ण व्यवस्था को ही समाप्त करने में उत्तरदायी सिद्ध हुई। राष्ट्रवाद के सिद्धान्त की न केवल यह पहली सफलता थी, अपितु, इसे अनेकों अनुयायी भी प्राप्त हो गए। फ्राँस व इंग्लैंड ने बेल्जियम की स्वतंत्रता को समर्थन प्रदान करके, अपने को मैटरनिख़ की रूढ़िवादिता के विरूद्ध खड़े पाया। हाँलाकि, इटली, जर्मनी व पोलैण्ड में प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ सफल रही किंतु, फिर भी, अन्ततोगत्वा, विजय क्राँतिकारी विचारों को ही प्राप्त हुई-जो पृष्ठ-भूमि फ्राँस की क्राँति ने तैयार की एवं 1830 की जुलाई क्राँति ने जिसे उर्वरता प्रदान की, वह अन्ततः 1870 ई० आते-आते तक अपने तार्किक अन्त तक पहुँचने में सफल रही !

□

[10]

लुई फ़िलिप का काल

(1830-1848 ई०)

1830 ई० की क्राँति के परिणामस्वरूप पदासीन लुई फ़िलिप साधरण जीवन व्यतीत करता था। अपने बच्चों को उसने सार्वजनिक स्कूलों में शिक्षा-प्राप्त करने के लिए भेजा। वह एक संवैधानिक शासक के रूप में कार्य करना पसंद करता था। उसने सम्पत्ति प्रावधान अथवा सीमा को घटाकर मताधिकारियों की संख्या दुगुनी कर दी; लोगों को अधिक अधिकार प्राप्त हुए; प्रेस की सेंसरशिप पर प्रतिबंध लगा दिया गया; कुलीनों के वंशीय अधिकार भी समाप्त कर दिए; किंतु, बावजूद इन सुधारों के, वह कोई प्रजातंत्रिक तो था नहीं और, न ही समय के साथ, परिवर्तनशील का तथा परिवर्तित समय को समझने की क्षमता रखता था। और उसकी, इसी गतिहीनता ने 1848 ई० में उसके पतन का मार्ग प्रशस्त किया।

और तो और, लुई फ़िलिप के रूप में स्थापित "जुलाई मोनार्की" (अथवा राजतंत्र) का आधार दुर्बल था। उसे राज्य के किसी वर्ग का पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। "लैजिटिमिस्ट" (वैबता के सिद्धान्त के समर्थक), बूरबौं वंश की स्थापना के इच्छुक थे; गणतंत्रवादी अथवा "रिपब्लिकन्स", जिनके कारण "जुलाई क्राँति" सम्भव हुई थी, हर प्रकार के राजंत्र के विरोधी थे तथा शासक के द्वारा अधिक उदारवादी सुधारों के क्रियान्वयन न किए जाने से असंतुष्ट थे; "बोनापार्टिस्ट" नई शक्तिहीन विदेश नीति के विरूद्ध थे; अतः राज्य की प्रत्येक प्रमुख संवेदनाएँ-भावनाएँ इस प्रशासन से असंतुष्ट थी। कोई भी गैर-वंशीय शासक के प्रति; न कोई गैर-प्रजातांत्रिक संविधान के प्रति; और, न ही कोई, ऐसी सरकार के ही प्रति निष्ठावान हो सकता था, जो सैन्य विजयों के अभाव में भी शासन चला रही हो, अतः यह एक मध्यम-वर्गीय राजतंत्रीय व्यवस्था थी, जो सीमित मताधिकार के साथ उन्हीं के हितों की रक्षा कर सकती थी। बुर्ज़वा प्रकृति की सरकार के बावजूद भी, वह सदैव उनके राजनीतिक नेतृत्व से सहमति नहीं रखता था। अतः प्रायः ही शासक, उसके मंत्रियों व सदन के मध्य विवाद बने ही रहते थे। उसके शासन-काल के प्रारम्भिक दस वर्षों में एक के बाद एक, लगभग

दस प्रधान मंत्री नियुक्त हुए। अंततः 1840 ई० में गुइज़ोत् की नियुक्ति के पश्चात् ही इस समस्या का समाधान हो सका।

इसी प्रकार, वैधता के सिद्धान्त के समर्थकों-अनुयायियों द्वारा भी सत्ता पलटने के असफल प्रयास होते रहे-सर्वप्रथम 1832 ई० में डचस्स दि बेरी के नेतृत्व में प्रोवेन्स एवं ला वेन्दी में, उसके पुत्र के राज्यारोहण के अधिकार को लेकर विद्रोह भड़का। 1834 ई० में लियोन्स में गणतांत्रिकों का विद्रोह भी हुआ तथा 1835 ई० में तो शासक की हत्या का प्रयास तक हुआ। इसी प्रकार 1835 ई० में ही तथा 1840 ई० में लुई नेपोलियन द्वारा सत्ता हस्तगत करने के प्रयास के फलस्वरूप, स्ट्रासबर्ग एवं बोलोन् में विद्रोह हुए। हाँलाकि ये सभी आन्दोलन असफल रहे, फिर भी, इन्होंने लुई फ़िलिप के विरूद्ध तैयार खड़ी शक्तियों की ओर तो इशारा कर ही दिया।

गुइज़ोत् के आगमन के पश्चात्, लुई फ़िलिप की रूढ़िवादी नीतियों का क्रियान्वयन उसी के द्वारा होता रहा-चूँकि, इसमें राजनीतिक भ्रष्टाचार निहित था, अतः सरकार का विरोध शनैः शनैः बढ़ता ही गया और इस विरोध ने दो आन्दोलनों को जंम दे दिया-एक, राजनीतिक व दूसरा, सामाजिक परिवर्तन हेतु! सदन में प्रसिद्ध इतिहासकार व राजनीतिज्ञ तियर्स ने मताधिकार के आधार को और विस्तृत करने के सुधार का प्रयास किया व, साथ ही, सीमित राजतंत्र की ही हिमायत करी, किंतु, गुईज़ोत् ने वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन से इंकार कर दिया, अतः सुधारवादी राजनीतिक दल और अधिक सक्रिय हो गया !

दूसरा आन्दोलन जो राजनीतिक रंगमंच पर उभर रहा था, वह समाजवाद था। औद्योगिक क्राँति ने जहाँ पूँजीवादी वर्ग को समृद्ध किया, वहीं श्रमिक वर्ग को विपन्नता की ओर ढ़केल दिया। इस नए वातावरण ने फ़ोरियर के लेखन को तो प्रभावशाली नहीं बनने दिया, किंतु, लुई ब्लैंक ने सामाजिक समस्या के वास्तविक समाधान के द्वारा, न केवल फ्राँस में, अपितु, विश्व में भी अपना प्रभाव स्थापित करने में सफलता प्राप्त करी। अपनी प्रसिद्ध कृति "द औऱ्गनाइज़ेशन ऑफ़् लेबर" में व्यक्तिगत पूँजी के उन्मूलन, स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धा व काम के अधिकार आदि सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, जिसने समाजवाद के विकास में अभूतपूर्व योगदान प्रदान किया। सरकार के विरोध के कारण, श्रमिकों ने गुप्त संगठनों की स्थापना करी, जो अत्यधिक सक्रिय हो उठे व अन्ततः जुलाई राजतंत्र को 1848 ई० में उखाड़ने में भी सफल रहे।

किंतु, अपने बुर्जुवा स्वभाव के चलते, औद्योगिक क्राँति का पूर्ण प्रभाव फ्राँस के आर्थिक विकास पर पड़ा। व्यापार व वाणिज्य का विकास हुआ, जिससे भौतिक समृद्धि हुई; सड़कों, नहरों व रेलवे लाइनों का जाल सा पूरे फ्राँस में बिछ गया। इसी काल मे ब्रिटेन को हारे अपने उपनिवेशों के स्थान पर, एक नए औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। चार्ल्स दशम के काल में प्रारम्भ हुई अल्जीयर्स विजय की योजना भी इसी काल में पूर्ण हुई। साथ ही, अफ्रीका के गिनया तट पर व मैडागास्कर में आधिपत्य स्थापित होने लगा। परम्परागत शत्रु इंग्लैंड से भी वह शाँति अथवा 'आन्तॉ कोर्डियल' स्थापित करने में सफल हो गया। उसने इटली व पोलैंण्ड के विद्रोहों को समर्थन देने से इंकार कर दिया था। किंतु, इससे फ्राँसीसी जनमत उसका विरोधी हो गया। इसी प्रकार, बेल्जियम आंदोलन में ब्रिटेन के समर्थक देश की भूमिका निभाई व फ्राँस को अधिक लाभ न दिला सका। 1833 ई० में महमत अली को समर्थन देने के बावजूद भी पूर्वी प्रश्न के हल में उसको अनदेखा कर दिया गया – उसने युद्ध तक की धमकी दे डाली, किंतु, वह कारगर न हो सकी। उसने इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया को दिए आश्वासन के विरूद्ध स्पेनी रानी की बहन व उत्तराधिकारी से अपने पुत्र का विवाह कर के एक कूटनीतिक विवाद को जंम दे दिया। अतः फ्राँसीसी जनता जो सैंय सफलता व गौरव की आदि हो गई थी, वह लुई फ़िलिप के शासन में पूर्णतः असंतुष्ट हो गई !

नई पीढ़ी जो नवीन विचारों से अवगत थी, वह असंतुष्ट; एवं भ्रष्टाचार के विरूद्ध हो गई। चूँकि, समृद्ध पूँजीवादी वर्ग के सहयोग व सहभागीदारी से प्रशासन चल रहा था अतः निम्न वर्गो के साथ-साथ परम्परागत कुलीन वर्ग भी इससे रूष्ट हो गया। गणतंत्रवादी सर्वप्रथम विरोध पर उतरे तथा, शीघ्र ही, समाजवादियों ने भी उनके साथ हाथ मिला लिया अतः 1848 ई० की क्राँति संपूर्ण थी। अन्ततः मताधिकार के प्रश्न पर ज्वालामुखी फूट गया। गुइज़ोत् के विरोध तथा, बाद में, सैनिकों द्वारा गोलियों के चलाए जाने के कारण, पेरिस में विद्रोह भड़क उठा। लुई फ़िलिप ने अपने पौत्र को पद स्थानांतरित करके, इंग्लैंड पलायन करने में बुद्धिमत्ता समझी। लामार्तीन के नेतृत्व में, एक अन्तरिम सरकार का गठन हुआ एवं फ्राँस दोबारा एक गण्तंत्र में परिणित हो गया !

किंतु, जहाँ गणतंत्रवादी इस सफलता को ही अन्त मान रहे थे, समाजवादी इसके द्वारा समाजिक पुनर्गठन के स्वप्न को साकार करने के इच्छुक थे। दूसरी ओर फ्राँस का कृषक वर्ग, समाजवाद का विरोधी था-उसे अपने भू-स्वामित्व

से वंचित हो जाने का भय था। लामार्तीन ने अपने व लुई ब्लैंक के समाजवादी दल के मध्य समझौता करके, सरकार चलाने का प्रयास किया। रोजगार को अधिकार की माँग जोर पकड़ने लगी तो सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया। शीघ्र ही, चुनावों द्वारा एक निर्वाचित राष्ट्रीय सभा को स्थायी समाधान हेतु उत्तरदायित्व सौंपने का निश्चय हुआ। इस राष्ट्रीय सभा में लुई ब्लैंक के समाजवादी दल से कहीं अधिक संख्या में लामार्तीन व उसके मध्यम-मार्गी ही निर्वाचित हुए। इसका मुख्य कारण प्रान्तों के कृषकों का समाजवादियों के विरूद्ध मताधिकार का प्रयोग था। अत: समाजवादियों ने सशस्त्र विद्रोह का निर्णय लिया किंतु सरकार ने उसका दमन किया; तथा, समाजवादियों के सिद्धान्तों के अनुरूप स्थापित राष्ट्रीय कार्यालयों (कारखानों) को भी समाप्त कर दिया-जो उनके विद्रोह के केंद्र भी हो गए थे। पेरिस में समाजवादियों ने विद्रोह को भीषणता प्रदान कर दी, किंतु, जनरल कैविग्नैक को सरकार द्वारा अधिनायक के अधिकार प्राप्त हो जाने से, विद्रोह का उन्मूलन हो सका । अब राष्ट्रीय सभा ने गण्तंत्र हेतु संविधान का निर्माण किया : सबको मताधिकार देकर; एक-सदनीय संसद की व्यवस्था करी; राष्ट्रपति कार्यकारी का अध्यक्ष निर्धारित हुआ; उसका चार वर्षों के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन होता था। नेपोलियन के भतीजे लुई नेपोलियन को उसी की स्मृति के आधार पर, अधिक मत प्राप्त हुए व वह अध्यक्ष निर्वाचित हो गया तथा गणतंत्रवादी सदस्य, जनरल कैविग्नैक पराजित हो गया। इसी से स्पष्ट हो गया, कि, गणतंत्रवादी फ्राँस में अधिकांश लोग अभी भी राजतंत्रवादी थे।

समाजवादी विद्रोह से फ्राँस को बचाने के लिए, फ्राँस-वासियों ने उसे बोनापार्ट जैसे निरंकुश के हाथों सौंप दिया। जैसा कि नेपोलियन के शासन से ही स्पष्ट हो गया था बोनापार्टवाद - गणतंत्रवाद का पूर्णत: विरोधी था ! लुई नेपोलियन भी प्रारम्भ से, समझ गया था, कि, इस द्वितीय गणतंत्र का आधार कमजोर है। 1849 ई० के चुनाव में गैर-गण-तंत्रवादियों का बहुमत भी हो गया अत: गणतंत्रीय राष्ट्रीय सभा उनके हाथों में स्थानांतरित हो गई जिनकी गणतंत्र में ही कोई आस्था नहीं थी। लुई नेपोलियन ने सर्वप्रथम सेना को गौरव प्रदान करने का आश्वासन प्रदान करके, उसे अपने पक्ष में कर लिया; पोप की सहायतार्थ रोम को फ्राँसीसी सेना भेजकर, धर्माधिकारियों का भी पूर्ण समर्थन प्राप्त करने में वह सफल रहा। उसने अपने कार्यकाल को संसद से ही बढ़ाने का प्रयास किया - किंतु, असफल रहा। अंतत: 1851 ई० के दिसम्बर में "कूप दे तात्" द्वारा - सदन भंग कर; प्रमुख विद्रोही नेताओं को बंदी बना दिया; जनमत द्वारा

उसको दस - वर्षीय कार्यकाल प्रदान हुआ व उसे संविधान - संशोधन के भी अधिकार प्रदान कर दिए। जनवरी 1852 ई० में नए संविधान का क्रियान्वयन हुआ तथा नए जनमत द्वारा वह सम्राट बन बैठा एवं नेपोलियन तृतीय का विरूद धारण कर लिया।

नेपोलियन तृतीय प्रजातंत्र के रक्षक के रूप में सत्ता के चर्मोत्कर्ष पर पहुँचा था, किंतु, फिर वह साम्राज्यवादी की भाँति शासन करने लगा। उसका शासन निरंकुश राजतंत्र पर आधारित था । समस्त कार्यकारी अधिकार उसने अपने हाथों में केंद्रित कर लिए। वस्तुत: फ्राँस से राजनीतिक स्वतंत्रता समाप्त हो चुकी थी; प्रेस प्रतिबंधित थी तथा, गुप्तचर-व्यवस्था भी सुदृढ़ हो गई थी। किंतु, निरंकुशवाद के बाद भी उसका शासन प्रबुद्ध व जन-हित का शासन प्रतीत होता है। उसके काल में रेलवे का विस्तार हुआ; मुक्त-व्यापार प्रोत्साहित हुआ; व्यापार व उद्योग समृद्ध हुआ। यही नहीं, निम्न वर्गों की ओर भी उसका ध्यान केंद्रित हुआ। उसने सहकारी समितियाँ निर्मित करने की आज्ञा प्रदान करी, श्रमिक-संगठनों एवं उनके हड़ताल के अधिकार को भी मान्यता प्रदान करी; उन्हें चिकित्सा व वित्तीय सुविधाऐं प्रदान करी; मृत्यु व दुर्घटनाओं के बीमों का प्रावधान किया-जिससे श्रमिक वर्गों का असंतोष समाप्त हुआ तथा वे इस सुशासन के पक्षधर हो गए ! यही नहीं, पेरिस के सौंदर्यीकरण एवं अन्य लोक-निर्माण के कार्यों द्वारा, लोगों के रोज़गार की समस्या का भी समाधान हो गया तथा, इससे उसके दरबार का वैभव व उसकी कीर्ति भी फैली।

लुई नेपोलियन भली-भाँति जानता था, कि, आंतरिक समृद्धि व सुख ही सबकुछ नहीं है-वह लुई फ़िलिप की भाँति, अति शाँति पूर्ण विदेश नीति का शिकार भी नहीं बनना चाहता था। वह जानता था, कि, फ्राँस-वासी मात्र गौरवमयी एवं आक्रामक विदेशी नीति से ही संतुष्ट हो सकते थे-वे पूर्व-गरिमा व यूरोपीय प्रभुत्व के भूखे थे। अत: उसने कैथोलिक मत के नए नेता के रूप में यूरोपीय राजनीति में सक्रिय हिस्सेदारी निभानी शुरू कर दी तथा, उस काल के राष्ट्रवादी आन्दोलनों को भी समर्थन प्रदान कर दिया। प्रारम्भ में तो इस आक्रमक विदेश नीति ने न केवल लुई नोपोलियन, अपितु, फ्राँस की भी प्रतिष्ठा को चर्मोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। किंतु, अन्तत:, इसी विदेशी नीति ने फ्राँस को ऐसी विषम परिस्थितियों में पहुँचाया, कि, फ्राँस पतनशील हो गया।

अपने निर्वाचन के तुरन्त बाद उसे रोम में अपनी विदेश नीति का मुख

दिखाई दे गया, जहाँ मैज़िनी के नेतृत्व में, पोप के शासन को अपदस्थ करके एक गणतंत्र की स्थापना हो गई थी। वह पोप की सत्ता पुनर्स्थापित करने में सफल हो गया तथा कैथोलिक धर्म के नए सैन्य नेतृत्व की क्षमता वाले इस व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा भी स्थापित हो गई। तत्पश्चात् क्रीमिया युद्ध से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से उसने इंग्लैंड के साथ, इसमें हस्तक्षेप किया। वह चाहता था, कि, पूर्व में फ्राँस की प्रतिष्ठा पुनर्स्थापित हो सके एवं रूस से नेपोलियन के अभियान की असफलता का प्रतिशोध भी इसके द्वारा प्राप्त किया जा सके। वस्तुत: युद्ध की समाप्ति नेपोलियन की राजधानी पेरिस में आयोजित शाँति वार्ता से ही हुई। इससे फ्राँस को गरिमा के अतिरिक्त और कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। रूस के निकोलस की पराजय से, लुई नेपोलियन न केवल यूरोपीय महाद्वीप का अद्वितीय शासक बन गया, अपितु, यूरोपीय राजनीति का केंद्र भी पेरिस स्थानांतरित हो गया। तत्पश्चात् राष्ट्रवाद के पक्षधर के रूप में उसने वलाशिया तथा मोल्डाविया का एकीकरण करके, रूमानिया के नए राज्य के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान भी दिया ! किंतु, विदेश नीति के क्षेत्र में उसकी सर्वाधिक चमत्कृत कर देने वाली सफलता इटली में प्राप्त हुई। अनेकानेक कारणों से उसने औस्ट्रिया के विरूद्ध सार्डिनिया के शासक की सहायता करी-वह इटली के राष्ट्रवादी तत्वों का वास्तविक हमदर्द था। इसके अतिरिक्त, उसे इटली की परिस्थितियों में एक अवसर प्राप्त हुआ, कि, वह 1815 ई० की वियना की अपमानजनक संधि को फाड़ सके-इसी के चलते, इटली में औस्ट्रिया के प्रभाव वाली व्यवस्था का निर्माण हुआ था। अत: उसने 1859 ई० में, औस्ट्रिया को इटली से खदेड़ने में सार्डिनिया के शासक की सहायता करी। किंतु, इस अभियान के मध्य में ही उसने औस्ट्रिया के साथ "विलाफ्रैंका की संधि" कर ली तथा अपने समर्थक सार्डिनिया के शासक से सलाह करना भी अवश्यक नहीं समझा। किंतु, शीघ्र ही, उसने सार्डिनिया के राज्य में टस्कनी, मौडेना एवं रोमाग्ना का विलय हो जाने दिया और अपनी सहमति के मूल्य के रूप में नाइस तथा सेवौय हस्तगत कर लिया। अब वह अपनी सत्ता एवं प्रतिष्ठा के चर्मोत्कर्ष पर पहुँच गया था।

1860 ई० के पश्चात् तो ऐसा प्रतीत होने लगता है, कि, विदेश नीति के क्षेत्र में उसका भाग्य ही उससे रूठ गया। 1863 ई० में रूसी आधिपत्य के विरूद्ध उसने पोलिश विद्रोह को समर्थन का आश्वासन देकर भी, सहायता नहीं पहुँचाई-बस ज़ार से पोलैण्ड में अत्याचार के विरूद्ध अपने क्रोध की ही अभिव्यक्ति करता रहा, जिसका भी अनदेखा कर ज़ार ने पोल विद्रोह का क्रूरता

से दमन कर दिया। वह इस प्रकार दोनों-पोलैण्ड वासियों तथा ज़ार को असंतुष्ट ही कर सका। इससे भी अधिक असफलता उसे मेक्सिको के अभियान में मिली। मेक्सिको के गृह-युद्ध का लाभ उठाते हुए, उसने औस्ट्रिया के आर्कड्यूक मैक्समिलन को 1864 ई० में वहाँ का शासक नियुक्त करवा दिया और वहाँ के गण्तंत्र को समाप्त कर दिया। किंतु, जैसे ही संयुक्त राज्य अमरीका अपने गृह-युद्ध से मुक्त हुआ-उसने फ्राँस की सेना को मेक्सिको छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। यह लुई नेपोलियन व फ्राँस दोनों के लिए अपमानजनक था।

किंतु, शेष औपनिवेशिक अभियान सफल ही रहे। उसने सीरिया में फ्राँस व कैथोलिक हितों की सुरक्षा एवं संरक्षण हेतु एक सफल अभियान निदेशित किया; इंग्लैंड के समर्थन से वह चीन में फ्राँसीसी व्यापार के विस्तार में सफल रहा; तथा, 1864 ई० में कोचिन चीन की प्राप्ति से फ्राँसीसी औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार भी किया।

किंतु, फिर भी, मेक्सिको की असफलता की छाया इन विजयों से कहीं अधिक सशक्त थी और वह नेपोलियन बोनापार्ट का मौस्को ही प्रमाणित हुई। क्योंकि, मैक्सिको की असफलता के पश्चात् ही 1866 ई० में प्रशा की सेनाओं की औस्ट्रियाई सेनाओं के विरूद्ध अभूतपूर्व विजय प्राप्त हुई। जर्मनी के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में नेपोलियन से न तो सहायता-समर्थन की आशा की गई और न ही उसका संदर्भ ही आया, अत: यह अपने-आप में लुई नेपोलियन व फ्राँस के लिए अपमानजनक था-एक यूरोपीय महाशक्ति के रूप में उसका अनदेखा किया जाना था। यही नहीं, इसकी भी पराकाष्ठा तब हुई जब नेपोलियन ने इस अनदेखा किए जाने की क्षतिपूर्ति के लिए, राह्ईन क्षेत्र का कुछ भाग सैन्याभियान द्वारा हस्तगत करना चाहा तो बिस्मार्क ने उसे पराजित करके, उसकी वास्तविक मंशाएँ उजागर करके उसकी विजेता की छवि पूर्णत: नष्ट-भ्रष्ट कर दी।

चूँकि, लुई नेपोलियन की वास्तविक छवि ही एक विजेता की थी-वह फ्राँसीसियों की विजयी महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के आश्वासन पर ही सत्ता के समस्त अधिकारों को अपने हाथों मे केंद्रित करने में सफल रहा था, अत: इन नकारात्मक परिणामों के कारण, उसकी छवि व आन्तरिक स्थिति भी कमजोर हो गई, अत: समस्त दिशाओं से उसकी नीति पर आक्रमण प्रारम्भ हो गए। लोगों को उसके प्रबुद्ध निरंकुशवाद का वास्तविक स्वरूप समझ में आने लगा था, कि, राज्य की नीतियों के क्रियान्वयन में निरंकुशवाद ही प्रधान

था–प्रबुद्धता तो लुप्तप्राय थी। अत: गणतंत्रवादियों एवं समाजवादियों ने उसके विरूद्ध आवाज उठाई। लुई नेपोलियन ने उदारवादियों का समर्थन चाहा, किंतु, उन्होंने भी सुधारों की माँग करी–नेपोलियन ने समय–समय पर उनकी कुछ माँगें स्वीकार भी करीं–1860, 1861 व 1867 ई० में निर्वाचित प्रतिनिधियों को स्वतंत्रता के अनेक अधिकार प्राप्त हो गए–वे राज्य की नीति की आलोचना करने के साथ–साथ संविधान सम्बंधी विषयों पर भी मत प्रकट कर सकते व सलाह दे सकते थे। 1868 ई० में प्रेस को अधिक स्वतंत्रता एवं राजनीतिक जन–सभाओं की अनुमति भी प्राप्त हो गई। 1869 ई० में संविधान के एक मौलिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप, मंत्रियों को संसद के प्रति उत्तरादायी बना दिया गया। और तो और, धर्माधिकारियों, जिनके लिए उसने कितना कुछ किया था, उन्होंने भी उसका विरोध प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि, उनको लगा, कि, लुई नेपोलियन की इटली के प्रति नीति पोप के राजनीतिक अधिकार–क्षेत्र व सत्ता को ही समाप्त कर देगी।

लुई नेपोलियन को समझ में आने लगा, कि, उसकी पकड़ अब ढीली पड़ती जा रही है और कोई आश्चर्यजनक सैन्य–सफलता ही उसकी स्थिति एवं प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित कर सकती है। किंतु, उसकी इस महत्वाकांक्षी योजना ने ही उसे बिस्मार्क के हाथों में खेलने को विवश कर दिया–जब 1870 ई० में उसने प्रशा के साथ युद्ध को अपरिहार्य कर दिया, जिसमें वह पूर्णत: पराजित होकर, सेडन में बँदी बना लिया गया। उसके इस सैन्य पतन के साथ, साम्राज्य का भी पतन हो गया तथा, फ्राँस को तीसरे गणतंत्र के लिए एक दुष्कर व कष्टदायी मार्ग पर चलने हेतु बाध्य होना पड़ा !

□

[11]

1870 ई० के पश्चात् फ्राँस का इतिहास

जैसे ही लुई नेपोलियन की सेडन के रण-क्षेत्र में हुई पराजय की सूचना पेरिस पहुँची, एक अंतरिम गणतंत्र की स्थापना व एक राष्ट्रीय सुरक्षा की सरकार का गठन हो गया। किंतु, 1871 ई० की पेरिस-समर्पण की घटना के चलते इस सरकार का पतन हो गया। साथ ही, एक राष्ट्रीय सभा का निर्वाचन किया गया, ताकि, वह जर्मनी के साथ हुई संधि की पुष्टि कर सके। तियर्स को कार्यकारिणी का प्रमुख अथवा "चीफ़ ऑफ़ द एग्ज़्क्यूटिव" चुना गया। तियर्स ने एलसेस तथा लौरेन का एक भाग जर्मनी को प्रदान करके, उसके साथ संधि कर ली और युद्ध का हर्जाना देना भी स्वीकार किया एवं हर्जाने की अदायगी तक फ्राँस के खर्चे पर उसके पूर्वोत्तर क्षेत्र पर जर्मन आधिपत्य सेना की उपस्थिति निश्चित हो गई थी।

फ्राँस की पराजय के पश्चात् वहाँ पर गृह-युद्ध का भी वातावरण निर्मित होने लगा। राष्ट्रीय सभा में उत्कट राजतंत्रवादियों का बहुमत था, जो गणतंत्र के कट्टर विरोधी थे। जबकि, पेरिस के लोग-जन समान्य न केवल गणतंत्रवादी थे, अपितु, वे अपने दृष्टिकोण से साम्यवादी थे-अत: भयभीत रहते थे, कि, कहीं सभा द्वारा एक राजतंत्र की पुनर्स्थापना का प्रयास न कर दिया जाए। राष्ट्रीय सभा ने अपनी बैठक का स्थान बोर्दू से स्थानांतरित करते समय, पेरिस के प्रति अपने अविश्वास का प्रदर्शन करते हुए, वर्साय को चुना। पेरिसवासियों को यह एक अपमान लगा। पेरिस में इस समय अनेक प्रज्ज्वलनशील तत्व उपस्थित थे - बेरोजगार सैनिक, बेरोजगार श्रमिक, समाजवादी, गणतंत्रवादी तथा इन सबके ऊपर, अराजकतावादी। परिस्थितियों को मात्र एक चिंगारी की आवश्यकता थी और वह सरकार ने पेरिस से सरकारी बंदूकों को स्थानांतरित करके, प्रदान कर दी। पेरिस तत्काल विद्रोह कर उठा विद्रोहियों ने तत्काल कम्यून की स्थापना कर दी; पेरिस के लिए पूर्ण स्व-शासन की माँग करी; व प्रान्तों में भी जन शासन हेतु कम्यूनों की स्थापना की माँग कर दी। इस प्रकार, वे समस्त फ्राँस

को साम्यवादी आधार पर व्यस्थित करने के इच्छुक थे। किंतु, अन्ततः, वर्साई से सरकारी सैनिकों ने पेरिस में प्रवेश करके, प्रत्येक सड़क एवं मोहल्ले के लिए संघर्ष करते हुए पेरिस पर नियंत्रण प्राप्त करके साम्यवादियों का दमन कर, उनसे भयंकर प्रतिशोध लिया।

अब तियर्स ने राष्ट्रीय पुनर्निमाण का कार्य प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम, ऋण प्राप्त कर के, दो वर्षों के अंदर, युद्ध हर्जाने की अदायगी कर के, फ्राँस को जर्मन-आधिपत्य सेना से मुक्त करा दिया। तत्पश्चात्, उसने प्रशा के आधार पर फ्राँसीसी सेना का पुनर्गठन कर डाला; 1872 ई० में कानून पारित करके, सैन्य सेवा अनिवार्य कर दी। संविधान-पुनर्निमाण कार्य ने तब उसका ध्यानाकर्षित किया। राष्ट्रीय सभा में राजतंत्रवादियों का बहुमत था और संपूर्ण देश में ही राजतंत्र के समर्थक अधिक थे। तियर्स स्वयं और्लीन्स वंश का समर्थक होने के नाते राजतंत्रवाद का पक्षधर था। किंतु, अपने-आप में राजतंत्रवादी भी तीन प्रमुख गुटों में विभक्त थे: प्रथम, चार्ल्स दशम के पौत्र कौम्प्टे दे शैम्बोर्ड के समर्थक अथवा बूरबौं वंश के पक्षधर थे; दूसरा वर्ग, कौम्प्टे दे परिस या लुई फ़िलिप के पौत्र अथवा और्लीन्स वंश का समर्थक था; तीसरा गुट नेपोलियन तृतीय के पुत्र राजकुमार 'इम्पीरियल' अथवा बोनापार्ट वंश का पक्षधर था। अतः इन विषम विभाजन की परिस्थितियों मे, तियर्स ने गणतंत्र को इसी कारण से स्वीकार किया, कि, वह न्यूनतम विभाजन पर आधारित है- और इसी, कारणवश, राजतंत्रवादियों ने राजतंत्र की पृष्ठभूमि तैयार करने हेतु तियर्स को पद त्यागने के लिए, अन्ततः, बाध्य कर दिया एवं सेनापति मार्शल मैक्मोहन को नया राष्ट्रपति निर्वाचित कर के, राजतंत्र की पुनर्स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

अब तियर्स को मार्ग से हटाने के पश्चात्, बूरबौं एवं और्लीन्स वंशों ने पारस्परिक समझौता किया। इसमें यह निश्चित हुआ, कि 'कोम्प्टे दे चैम्बोर्ड' जो निस्संतान था, वह शासक बन जाए एवं उसका उत्तराधिकारी और्लीन्स वंशीय 'कोर्ट ऑफ़् पेरिस' हो। किंतु, चैम्बोर्ड इतना अधिक बूरबौं वादी था, कि, वह अपना वंशीय श्वेत राज्य ध्वज त्यागने और क्राँति का तिरंगा ध्वज स्वीकार करने को तैयार नहीं था, अतः वह हेनरी पंचम का विरूद धारण करके सिंहासनारूढ़ होते-होते रह गया। इसी बीच ओजस्वी नेता गैम्बेटा फ्राँस के प्रान्तों के ग्रामांचलों का दौरा करके लोगों को राजतंत्र से विमुख करने में सफल रहा था-वह गणतंत्रवादी था। और इन तमाम कारणों के चलते, 1875 ई० में, एक राजतंत्रवादी राष्टपति व राजतंत्रवादी बहुमत वाली राष्ट्रीय सभा ने एक मत के बहुमत से गणतंत्र की

स्थापना फ्रॉंस में कर दी !

1875 ई० के संविधान के अनुसार, राष्ट्रपति सात वर्ष की अवधि के लिए दो सदनों वाले संसद द्वारा निर्वाचित होगा। संसद का उच्च सदन 'सेनेट' था, जिसके सदस्यों का अप्रत्यक्ष निर्वाचन होता था; निचला सदन 'चेम्बर ऑफ़ डिप्टीज़' कहलाता था तथा इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष मताधिकार द्वारा होता था-सभी नागरिकों को मताधिकार प्राप्त था। मंत्रियों का सदन के प्रति उत्तरदायित्व निर्धारित कर दिया गया था। राजतंत्रवादियों ने फ्रॉंस में 'कूप' द्वारा राजतंत्र की स्थापना का विफल प्रयास किया व, अंततः, राजतंत्रवादी राष्टपति मार्शल मैक्मोहन ने अपने पद से 1879 ई० में त्याग-पत्र दे दिया। गैम्बेटा का उम्मीदवार जूल्स ग्रेवी, उसके स्थान पर नया राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। पूर्ण मंत्रिमंडल एवं संसद भी गणतंत्रवादी निर्वाचित हुए थे ! 1882 ई० में गैम्बेटा की मृत्यु तक, फ्रॉंस में तृतीय गणतंत्र को पर्याप्त स्थायित्व प्राप्त हो चुका था!

किंतु, फिर भी, फ्रॉंस मे गणतंत्रवाद के अनेक विरोधी अब भी शेष थे, जो यह विश्वास करते थे, कि, तृतीय गणतंत्र भी अपने पूर्ववर्ती दो अन्य गणतंत्रों की नियति को प्राप्त होगा, 1886 ई० में नियुक्त युद्ध मंत्री जनरल बूलैन्जर के नेतृत्व में इन विरोधी तत्वों का ध्रुवीकरण प्रारम्भ हो गया। उसने सैनिकों को अनेक सुविधाएँ प्रदान करके अपने पक्ष में कर लिया तथा जर्मनी के विरूद्ध प्रतिशोध के युद्ध के नाम से लोगों के जनमानस में स्थान बना लिया। अतः राजतंत्रवादी, बोनापार्टवादी एवं धर्माधिकारी वर्ग उसके समर्थन में आ गए-वे संसदीय शासन के स्थान पर "बूलैन्जिस्ट अधिनायकवाद" स्थापित करने के इच्छुक थे। राष्ट्रपति ग्रेवी के दामाद के भ्रष्टाचार ने इन्हें एक अवसर भी प्रदान कर दिया। किंतु, चूँकि, बूलैंजर सही समय पर योजना को क्रियान्वित करने में असफल रहा, अतः यह योजना व्यर्थ गई। बूलैन्जर को बंदी बनाए जाने के आदेश दिए-गए। वह बेल्जियम पलायन कर गया और वहाँ उसने आत्म-हत्या कर ली। इस पूरे प्रकरण से गणतंत्र और सशक्त एवं स्थायी हो गया, क्योंकि, उसके विरोधियों का पर्दाफ़ाश हो गया।

किंतु, भ्रष्टाचार के आरोपों से गणतंत्र एक बार पुनः घिरा, जब पनामा नहर कम्पनी के डायरेक्टरों द्वारा संसद-सदस्यों व मंत्रियों को धन दिए जाने की बात सामने आई। इससे गणतंत्र की लोकप्रियता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। यही पर्याप्त नहीं था, 1894 ई० में तृतीय गणतंत्र को 'ड्रेफ़स काण्ड' से गुजरना पड़ा। ड्रेफ़स एक ज्यू यहूदी सैन्याधिकारी (कप्तान) था, जिसे शत्रु देश जर्मनी

को गुप्त राष्ट्रीय दस्तावेज देने के अपराध में दक्षिण अमरीका के "डेविल्स आइलैंड" कारावास भेज दिया गया था। अनेक लोगों को इस प्रकरण में न्यायिक प्रक्रिया पर संदेह था। 1896 ई० में जब कर्नल पिक्कार्ट को गुप्तचर विभाग का प्रमुख नियुक्त किया गया तो उसके हाथ वह दस्तावेज लगा, जिसपर उसका दण्ड आधारित था। यह दस्तावेज नकली था, जिसे एक अपदस्थ मेजर ऐस्टरहेज़ी ने तैयार किया था। सरकार तथा युद्ध मंत्रालय-कार्यालय दोनों ही सरकार व मंत्रालय की छवि के कारण, इस मामले को दबाने के इच्छुक थे, अत: पिक्कार्ट को विदेश सेवा में स्थानांतरित, करके हेनरी को वहाँ नियुक्त कर दिया। किंतु, इधर इस विवाद से पूरे राष्ट्र में उथल-पुथल मच गई थी व लगभग समस्त राष्ट्र ड्रेफ़स-समर्थक एवं ड्रेफ़स-विरोधी गुटों में विभक्त हो चुका था। ड्रेफ़स-समर्थकों में एमिली ज़ोला, एनातोले फ्राँस एवं क्लेमेनक्यू जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व थे - ज्यू, प्रोटेस्टेंट, उत्कटतावादी तथा समाजवादी आदि थे। जबकि, उसके विरूद्ध पेरिस की उग्र भीड़, सेना, चर्च एवं जनतंत्रवादी एकीकृत थे। यह प्रकरण तत्कालीन फ्राँस की सामाजिक, राजनीतिक एवं संवैधानिक विवाद की धुरी में परिणित हो गया था। यह प्रगतिवादी एवं रूढ़िवादी, अधिकारी एवं स्वतंत्रता के स्वरूप, राज्य के नागरिक एवं सैन्य स्वरूप के मध्य संघर्ष में परिवर्तित हो गया था।

ड्रेफ़स के समर्थक पुन: मुक्कदमें की माँग उतने ही जोर-शोर से करने लगे, जितने जोर से उसके विरोधी उस माँग का विरोध कर रहे थे। इस बीच 1898 ई० में कर्नल हेनरी ने स्वीकारोक्ति, कि, यह नकली दस्तावेजों पर निर्मित प्रकरण है और फिर हेनरी ने आत्महत्या भी कर ली-सरकार को विवश होकर पुन: सुनवाई करनी पड़ी एवं उसका दण्ड घटाकर दस-वर्षीय कैद में परिवर्तित कर दिया। खैर राष्ट्रपति लौबेत ने यह दण्ड भी क्षमा कर दिया। किंतु, ड्रेफ़स समर्थकों ने 1906 ई० में नए सिरे से सुनवाई पुन: प्रारम्भ करी। वस्तुत: ड्रेफ़स बेदाग छूट गया तथा उसे पदोन्नति भी प्रदान की गई। ड्रेफ़स का निरपराधी प्रमाणित होना, गणतंत्र के शत्रुओं की जबर्दस्त पराजय थी, इसके द्वारा सैन्याधिकारी के ऊपर कार्यकारी शासन का वर्चस्व स्थापित हो गया तथा सैन्यवाद व धर्मवाद को भी एक सशक्त धक्का लग गया!

एक अन्य महत्वपूर्ण विषय, जिस पर तृतीय गणतंत्र ने निर्णय लिया, वह राज्य एवं धर्म अथवा चर्च के पारस्परिक सम्बंधों की परिभाषा थी। यह एक राजनीतिक प्रश्न अधिक था, क्योंकि, धर्माधिकारी अधिकांशत: राजतंत्रवादी थे। गैम्बैटा ने तो 1877 ई० में ही घोषित कर दिया था, कि, धर्मवाद गणतंत्र

का शत्रु है। धर्माधिकारी वर्ग, बूलैन्जर के समर्थक था तथा ड्रेफ़स - विरोध के अभियान में भी ये जुटे रहे थे तथा, शिक्षा, गणतंत्रवादियों का प्रिय विषय था और वे शिक्षा से धर्माधिकारी अथवा राजतंत्रवादियों के प्रभाव को क्षीण करना चाहते थे। ड्रेफ़स प्रकरण के ठंडे पड़ते ही, 1901 ई० में "लौ ऑफ़ ऐसोशिएशन" (संघ या संगठन की विधि) पारित करके, गैर-मान्यता (सरकारी) प्राप्त धार्मिक संगठनों को अवैधानिक घोषित कर दिया। और, इस प्रकार के अवैधानिक संगठन के सदस्यों को शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन का अधिकार प्रदान नहीं किया गया। 1904 ई० में तो शिक्षा को पूर्णतः पंथ निरपेक्ष घोषित करके, धर्माधिकारियों से अध्यापन का अधिकार पूर्णतः छीन लिया गया। अंत में, 1905 ई० में पारित "एक्ट ऑफ़् सेपेरेशन" द्वारा नेपोलियन का "कौनकोर्डा" समाप्त कर दिया गया। राज्य ने धर्माधिकारियों को वेतन देना समाप्त कर दिया; न ही किसी धर्म को अब राज्य अनुदान ही प्रदान कर सकता था। इस प्रकार से चर्च एवं राज्य दोनों पृथक इकाईयों के रूप में स्थापित हो गए-दोनों की पारस्परिक निर्भरता जो प्राचीन काल से चली आ रही थी, इस प्रकार, समाप्त हो गई।

किंतु, जिस क्षेत्र में तृतीय फ्राँसीसी गणतंत्र की उपलब्धियाँ अधिक महत्वपूर्ण थीं वह औपनिवेशिक विस्तार था। वस्तुतः इस विस्तारवादी व आक्रामक औपनिवेशिक प्रसार की नीति का मुख्य प्रवर्तक ज्यूल्स फ़ेरी था, जो 1881 ई० में, तत्पश्चात् 1883 से 1885 ई० तक प्रधान मंत्री रहा था। उसी के द्वारा नियोजित नीति के परिणामस्वरूप ग्रेट ब्रिटेन के बाद फ्राँस की गणना द्वितीय औपनिवेशिक महाशक्ति के रूप में होती थी। फ्राँस ने एल्जिरिया मे अपना अधिपत्य तो लुई फ़िलिप के काल में स्थापित कर लिया था। अब वह पश्चिमोत्तर अफ्रीका में प्रसार की योजना बनाने लगा। 1881 ई० में इसी प्रकार ट्यूनिस में अभियान निर्देशित करके, वहाँ के शासक को फ्राँस का संरक्षणत्व स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया। किंतु, इसपर ईटली की नजर भी थी अतः रूष्ट होकर, उसने औस्ट्रिया व जर्मनी के साथ "ट्रिपिल एलायन्स" (त्रिगुटीय संधि) में अपने आप को सम्मिलित कर लिया। इसी प्रकार, सहारा का एक बड़ा रेगिस्तानी भू-भाग -फ्राँस के अधीन आ गया-जिसमें फ्राँसीसी बस भी नहीं सकते थे! पश्चिम अफ्रीका में फ़ेरी ने फ्राँसीसी कौंगो की स्थापना करी तथा मेडागास्कर की ओर भी एक अभियान निर्देशित किया। अंततः, मैडागास्कर 1896 ई० में फ्राँसीसी आधिपत्य के अन्तर्गत आगया तथा, 1904 ई० में मोरक्को भी फ्राँसीसी प्रभुत्व

का क्षेत्र हो गया। इसी प्रकार, सेनेगल, गिनिया, दहोमी, आइवरी कोस्ट (तट) एवं नाइज़र का क्षेत्र फ्राँसीसी प्रभाव-क्षेत्र हो गए थे और, बावजूद जर्मनी के विरोध के ,मोरक्को अंततः 1912 ई० में, फ्राँस के औपनिवेशिक साम्राज्य का अविभाज्य अंग बन चुका था। फ्राँस ने नेपोलियन तृतीय के काल में, इण्डोचीन में कुछ क्षेत्र हस्तगत कर लिए थे-उसने कम्बोडिया एवं कोचिन-चीन पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। फ़ेरी के अधीन इन्डोचीन पर आधिपत्य तब पूर्ण हो गया था, जब टोन्किन पर विजय प्राप्त कर ली एवं अन्नाम पर संरक्षणत्व (प्रोटेक्ट्रेट) स्थापित कर दिया।

औपनिवेशिक साम्राज्य-निर्माण की प्रतस्पर्धा के चलते यूरोप शनैः शनैः दो स्पष्ट गुटों में विभक्त हो गया था। बिस्मार्क की नीति के चलते, जर्मनी, औस्ट्रिया एवं इटली की त्रिराष्ट्रीय गुटबंदी अथवा "ट्रिपिल एलायन्स" स्थापित हो गई थी (1882 ई०), जिसके फलस्वरूप, फ्राँस का पृथकीकरण पूर्ण हो गया था। उसकी लम्बी पूर्वी सीमा पर सशक्त जर्मन सैन्य साम्राज्य था, जो उसका प्रत्यक्ष विरोधी एवं शत्रु था। साथ ही, ब्रिटेन के साथ भी उसके सम्बंध सौहार्दपूर्ण न थे। मिस्र व पश्चिमी अफ्रीका में दोनों के हितों में परस्पर वैमनस्य था। रूस ही एकमात्र ऐसा देश था, जो फ्राँस को सुरक्षित समर्थन प्रदान कर सकता था। 1890 ई० में फ्राँस को वह अवसर भी प्राप्त हो गया, जब बिस्मार्क के पतन के पश्चात् जर्मन शासक कैसर विलियम द्वितीय ने रूस के साथ 1887 ई० में सम्पन्न 'पुनराश्वासन संधि' ("रीइनश्योरेन्स ट्रीटी") को समाप्त प्रायः हो जाने दिया। रूस भी इस प्रतिद्वन्दिता के वातावरण में अकेले सुरक्षित अनुभव नहीं कर रहा था। रूस व औस्ट्रिया के हित बाल्कन क्षेत्र में पूर्णतः विरोधी थे। साथ ही त्रिराष्ट्रीय गुटबंदी के चलते, जर्मनी तो औस्ट्रिया की हर-हाल में सहायता करने के लिए वचनबद्ध था। इसके अतिरिक्त, रूस को अपने आन्तरिक-आर्थिक विकास के लिए धन की आवश्यकत थी-जो जर्मनी उपलब्ध करवाने में तत्पर नहीं था, अपितु, फ्राँस तैयार था। इस प्रकार, राजनीतिक व आर्थिक कारणों से, रूस के लिए फ्राँसीसी मित्रता अपरिहार्य हो गई थी एवं 1894 ई० में दोनों के मध्य परस्पर द्विराष्ट्रीय संधि ("ड्यूवैल एलायन्स") सम्पन्न हो गई। इस संधि की मुख्य धारा यही थी, कि, यदि फ्राँस पर जर्मनी का अथवा जर्मन-समर्थित औस्ट्रिया का आक्रमण हो तो रूस सहायता करेगा और यदि, इसी प्रकार, रूस पर इन दो शक्तियों का समर्थित आक्रमण हो तो फ्राँस हर प्रकार की सहायता

के साथ तत्पर रहेगा–यह बिस्मार्क की त्रिराष्ट्रीय गुटबंदी का उत्तर था।

रूस के साथ स्थायी सम्बंधों का सुरक्षा कवच निर्मित करने के बाद फ्राँस स ने ब्रिटेन के साथ भी अपने सम्बंधों को सुधारने के लिए प्रयास किया। 1882 ई० में इंग्लैड द्वारा मिस्त्र पर आधिपत्य पर प्रत्यक्ष असंतोष फ्राँस अभिव्यक्त कर ही चुका था। मध्य अफ्रीका में भी दोनों के हित टकरा रहे थे। 1898 ई० में तो फ्राँस अभियान दल द्वारा ऊपरी नाइल नदी (पश्चिम अफ्रीका में) पर बसे सरोदा पर आधिपत्य स्थापित कर लेने से दोनों देशों के मध्य युद्ध के बादल मँडराने लगे, क्योंकि, फसोदा इंग्लैड के प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत आता था। अन्ततः, यह संकट फ्राँस द्वारा वहाँ से हट जाने से समाप्त हो गया। दोनों ने अब जर्मनी के रूप में समान आक्रामक शत्रु के चलते, अपने पारस्परिक सम्बंधों को सुधारना आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य समझा और "आँतात् कौर्डियल" (हार्दिक समझौता) पर हस्ताक्षर कर दिए (1904 ई०)। इस समझौते के कारण ही दोनों देशों के मध्य–न्यूफ़ाउन्डलैंड मत्स्य उद्योग, सियाम, मैडागास्कर, पश्चिम अफ्रीका व मिस्त्र तक के विवाद सुलझा लिए गए। जहाँ फ्राँस ने मिस्त्र में इंग्लैंड के हितों के महत्व अतः प्रभुत्व को स्वीकार किया। वहीं, इंग्लैंड ने भी मोरक्को में फ्राँस की स्थिति को स्वीकारा। 1907 ई० में इस समझौते को विस्तृत करके, उसमें रूस को भी सम्मिलित कर लिया गया तथा इंग्लैंड ने रूसी हितों के विरूद्ध फ़ारस, अफगानिस्तान एवं तिब्बत में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया। अतः, इस प्रकार, फ्रांस, रूस एवं इंग्लैंड के मध्य त्रिराष्ट्रीय समझौता ("ट्रिपिल आंतात्") सम्पन्न हो गया, जो "ट्रिपिल एलायन्स" की शक्ति को संतुलित कर सकता था।

मोरक्को में फ्राँस को हार्दिक समझौते से जो विशेष महत्व का स्थान प्राप्त हुआ था (1904 ई० में) उसे अपनी तानजियर यात्रा के दौरान, 1905 ई० में कैसर विलियम द्वितीय ने चुनौती दे दी। उसने घोषित किया, कि, वह हर–हाल में, मोरक्को में जर्मन व्यसायिक हितों की सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करेगा। व उसके इस दृष्टिकोण के चलते एक अन्तर्राष्ट्रीय संकट उत्पन्न हो गया, जिसके समाधान हेतु, 1906 ई० में एल्जीसीराज़ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इसके द्वारा सम्पन्न समझौते के अनुसार, जर्मनी एवं अन्य शक्तियों के हितों को भी मोरक्को में सुरक्षित स्थान प्राप्त हो गया तथा यह भी निर्णय हुआ, कि,मोरक्को में फ्राँस एवं स्पेन को ही पुलिस अधिकार प्राप्त होगा। किंतु, न केवल फ्राँस ने मोरक्को में अपनी स्थिति को बनाए रखा, अपितु, उसे और भी सुदृढ़ किया। अतः 1911 ई० में जर्मनी ने तोप–युक्त पोत अगादीर भेज कर, एक चुनौती और

प्रस्तुत कर दी, ताकि, यह स्पष्ट हो जाए, कि, मोरक्को में फ्राँस की स्थिति अद्वितीय कदापि नहीं है। परन्तु, चूँकि, फ्राँस के पक्ष में इंग्लैंड तत्पर था, अत: जर्मनी को फ्राँस के साथ अन्तत: एक समझौता करना पड़ा। इस समझौते के अनुसार, जर्मनी ने मोरक्को में फ्राँस के अति महत्वपूर्ण स्थिति को स्वीकार किया एवं फ्राँस ने जर्मनी को फ्राँसीसी कौन्गो का एक बड़ा भाग प्रदान कर दिया। इस प्रकार दो गुटों में विभक्त यूरोप संकट टालने में सफल हो गया !

□

[12]

प्रथम विश्व-युद्ध और फ्राँस

1914 - 1918 ई०

1914 ई० की अगस्त में जो युद्ध फूट पड़ा, वह शीघ्र ही विश्व-व्यापी हो गया। यह महायुद्ध वस्तुतः एक पीढ़ी व अधिक के परिवर्तनों एवं विकास की परिणति थी। मूलतः, इसकी पृष्ठ-भूमि में जर्मनी की भूमिक काफी महत्वपूर्ण थी। "ट्रिपिल आंतात्" के निर्माण को जर्मनी न केवल अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति में व्यवधान के रूप में देख रहा था-अपितु, उसकी दृष्टि में, यह एक ऐसी घटना थी, जो उसके अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव को पर्याप्त-रूप से कम कर देती। अतः 1907 ई० से 1914 ई० के मध्य वह 'आतांत्' को विघटित करने के प्रयास में जुट गया। साथ ही, बाल्कान में एकमात्र विश्वास-पात्र मित्र औस्ट्रिया की स्थिति को सुदृढ़ करने एवं तुर्की को अपनी ओर मिलाने के कार्य में भी जुट गया। उसकी महत्वाकांक्षा यह भी थी, कि, विश्व-राजनीति में वह महाशक्तियों के साथ समानता के आधार पर बात-चीत करे। और जर्मनी की यह नीति ही मुख्यतः उत्तरादायी थी, कि, "ट्रिपि आतांत्" एवं मध्यदेशीय शक्तियों ("सेंट्रल पावर्स") के सम्बंधों में थोड़े-थोड़े अन्तराल में संकट उत्पन्न होने लगे थे- ये संकट भी किसी व्यापक-स्तरीय भावी युद्ध के स्पष्ट संकेत भी थे !इन संकटों के आविर्भाव-केन्द्र-बिंदु दो थे-एक जो, फ्राँस से प्रत्यक्षतः सम्बंधित था - वह मोरक्को की परिस्थिति से उत्पन्न होता था। दूसरा, बाल्कान की समस्या एवं वहां पर औस्ट्रिया तथा रूस के पारस्परिक वैमनस्य से सम्बंधित था। किंतु, ये दोनों ही, जर्मनी की महत्वाँकांक्षा के एक समान सूत्र से जुड़े हुए थे - दोनों में ही जर्मनी के हित प्रत्यंक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संपृक्त थे ! वह सूर्य के प्रभा-मण्डल में एक बड़ा तथा महत्वपूर्ण स्थान तलाश रहा था !

विशेषतौर से, जर्मनी को 1909 ई० के 'फ्रैको-जर्मन' समझौते पर रोष स्वाभाविक रूप से था, क्योंकि, इस के द्वारा मोरक्को पर फ्राँस का विशेष राजनीतिक हित व अधिकार स्वीकार कर लिये गये थे। जर्मनी अब मोरक्को का फ्राँसीसी साम्राज्य में पूर्ण विलय रोकने का इच्छुक था अन्यथा, विकल्प के रूप में, वह कुछ हर्जाना प्राप्त करने का इच्छुक था। 1911 ई० में मोरक्को की राजधानी

फ़ेज़ के निकट कुछ अनुशासनहीन जन-जातियों ने अव्यवस्था फैला दी। स्वाभाविक ही था, फ्राँस को सैन्य बलों के साथ हस्तक्षेप करना ही पड़ा ताकि व्यवस्था पुनर्स्थापित हो सके। जर्मनी ने इसी के प्रतिरोध-स्वरूप व आतांत् के परीक्षण हेतु युद्ध-पोत "पैंथर" अगादीर के बंदरगाह भेज दी थी (देखें ऊपर भी पृ० 101-102)। इससे जर्मनी यह भी स्पष्ट करना चाह रहा था कि फ्राँस ही मोरक्को का एकमात्र भाग्य-निर्माता नहीं है-उसे भी मोरक्को में हस्तक्षेप करने का पूरा अधिकार है। ब्रिटिश सरकार ने प्रत्युत्तर-स्वरूप, एक 'क्रयूसर' जहाज भेजकर यह स्पष्ट कर दिया था, कि, वह भी अपने समर्थक फ्राँस के सहायतार्थ तत्काल उपस्थित होगा। अतः जर्मनी ने तुरन्त संकट न खड़ा करने की नियत से समझौता कर लिया। इसके परिणामस्वरूप, मोरक्को पर फ्राँसीसी 'प्रोटेक्ट्रेट' या संरक्षणत्व स्थापित हो गया, किंतु, फ्राँस ने मोरक्को में एक खुला द्वार छोड़ दिया तथा फ्राँसीसी कौन्गो का एक भाग भी जर्मनी को देना स्वीकार कर लिया।

किंतु, इस घटनाचक्र ने जर्मनवासियों की फ्राँस के प्रति शंका, भय एवं घृणा को सशक्त भी कर दिया। फ्राँसीसी भी फ्राँसीसी कौंगो प्रदान करने को, आपदा काल में, जर्मनी द्वारा जबर्दस्ती वसूला गया क्षेत्र मानते थे। वे इसे जर्मनी का भयादोहन ही मानते रहे। दूसरी ओर, जर्मनी को लगा कि फ्राँस एवं इंग्लैंड के संयुक्त सुनियोजित षडयंत्र के चलते, महाशक्ति के रूप में उसके उद्भव को एक झटका लगा है। अतः यह स्पष्ट होने लगता है, कि, '1914 ई० के संकट के प्रारम्भिक बादल व पूर्व छाया थी, अगादीर की घटना'।[10]

जिस प्रकार मोरक्को के दो संकटों में फ्राँस और जर्मनी के हित टकरा रहे थे उसी के समानान्तर (व उसी प्रकार) बाल्कान में 'औस्ट्रिया-हंगरी' तथा रूस के हितों में भी पारस्परिक टकराव स्पष्ट था। मोरक्को के दोनों संकट तो खैर टल भी गए किंतु, बाल्कान की यह पूर्वी समस्या अपने संकटों के साथ, एक बड़े मकड़-जाल का विस्तार लिए हुई थी-उसमें पारस्परिक मतभेद तथा वैमनस्य का इतना आधिक्य था, कि, समाधान सम्भव ही नहीं था ! अतः, इसके कारण जहाँ दो बाल्कान समस्याओं (प्रथम, 1908 ई० की - जब औस्ट्रिया ने बोस्निया हड़प लिया था और औस्ट्रो-सर्बियन शत्रुता सुदृढ़ हो गई और दूसरी, 1912-13 ई० वाली, जब औस्ट्रिया की सर्बिया-विरोधी नीति के कारण, वैमनस्य और भी बढ़ गया था-उसने एक जर्मन राजकुमार के अधीन अलबैनिया को स्वायत्त-शासित राज्य में परिवर्तित करके सर्बिया का समुद्री द्वार अवरूद्ध करके उसे युद्ध के लिए विवश कर दिया) ने यूरोप को युद्ध के बिल्कुल समीप लाकर

खड़ा कर दिया और, तीसरे संकट ने तो विश्व-व्यापी वैमनस्य, शत्रुता व प्रतिद्वन्दिता को मूर्त-रूप प्रदान कर दिया। और, यह तीसरा संकट दूसरे संकट, के पंद्रह माह के अन्दर ही उत्पन्न हो गया, जब औस्ट्रिया के सम्राट के भतीजे ड्यूक फ्राँसिस फर्डिनेन्ड की हत्या बोस्निया की राजधानी सारायेवो में एक छात्र द्वारा कर दी गई।

इस हत्या के प्रतिशोध-स्वरूप औस्ट्रिया की भावी योजना सर्बिया को समाप्त करने की ही थी और, इसमें उसे जर्मनी का पूर्ण एवं अंघ-समर्थन भी प्राप्त था। रूस स्वयं एक स्लैव राष्ट्र था, अत: उसे एक स्लैव राष्ट्र को पूर्णत: मृतप्राय: करने की चाल नहीं पच सकी। उसने जोर देकर कहा, कि, यह प्रश्न तो पूरे यूरोप को प्रभावित करता है, क्योंकि, बाल्कान से सम्बंधित सभी निर्णय यूरोपीय शक्तियों के सम्मेलनों व सभाओं में हुए थे। किंतु, औस्ट्रिया का यह दृष्टिकोण था कि, चूँकि, यह मामला उसके एवं सर्बिया के बीच का द्विपक्षीय मामला है, अत: इसमें समस्त यूरोपीय देशों के सम्मेलन का कोई औचित्य ही नहीं है। रूस ने अंतत: औस्ट्रिया के विरूद्ध सैन्य तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं और रूस की इस कार्यवाही के चलते, जर्मनी-जो "ट्रिपिल एलायन्स" द्वारा औस्ट्रिया से बँधा हुआ था-को भी मैदान में उतरना पड़ा। किंतु, रूस के विरूद्ध जर्मन युद्ध उद्घोष का अर्थ था फाँस के विरूद्ध भी जर्मनी की युद्ध-घोषणा, क्योंकि, इधर रूस व फ्राँस भी मैत्री एवं शत्रु से युद्ध में पारस्परिक सहायता के लिए वचनबद्ध थे।

अब तक के वातावरण में इंग्लैंड पूर्णत: पृथक एवं तटस्थ रहा था। किंतु, तात्कालिक व द्रुत-गति से विजय एवं लाभ प्राप्त करने के लोभ में जर्मनी ने बेल्जियम से अपनी सेनाओं के लिए एक मार्ग देने की माँग करी और उसके इंकार करने पर, उसके क्षेत्र में अपनी सेना को प्रविष्ट करके, इंग्लैंड को भड़का दिया-क्योंकि, बेल्जियम की तटस्थता का आश्वासन प्रशा (1870 ई० के पूर्व का जर्मन-राज्य) सहित सभी यूरोपीय शक्तियों ने दिया था। अत: इंग्लैंड ने इस समझौते के उल्लंघन-कर्ता जर्मनी के विरूद्ध युद्ध का एलान करना, अपनी विवशता ही मानी। साथ ही, बेल्जियम के तट पर शत्रु के आधिपत्य स्थापित हो जाने से, इंग्लैंड की सुरक्षा भी भेदी जा सकती थी, अत: इस दृष्टिकोण से भी वह युद्ध का भागीदार हो गया !

जर्मनी के आकस्मिक आक्रमण से बेल्जियम की सेनाएँ व सीमान्त

फ्राँसीसी सेनाएं पराजित हो गईं। मोन्स से तात्कालीक अपवर्तन (रीट्रीट अथवा वापसी) से आंग्ल तथा फ्राँसीसी सेनाएँ सुरक्षित रह गईं। एलाइड सेनाएँ इस प्रकार से वापस पलटी, कि, वे मार्थ के पीछे वर्दून तथा पेरिस की धुरि पर केंद्रित हो गईं। इस बीच एल्सेस-लौरेन पर भी फ्राँसीसी आक्रमण निष्फल हो चुका था। जर्मन सेनाएँ अब पेरिस की ओर अग्रसर होने लगीं तथा मार्न पार कर गई ! किंतु, द्रुत-गति से आगे बढ़ने के कारण, उनकी प्रथम व द्वितीय सेनाओं के मध्य एक रिक्तता उत्पन्न हो गई, जिसका तुरन्त लाभ, फ्राँसीसी जनरल फ़ोच तथा सैन्याभियान - प्रमुख जौफ्रे ने उठा लिया और ब्रिटिश-सेनाओं की मदद से ऐसा प्रभावशाली अक्रमण किया, कि, जर्मन सेनाएं मार्न से वापस पलायन के लिए बाध्य हो गईं। और, यही, 'मार्न का युद्ध' इस लड़ाई का प्रभावकारी मोड़ प्रमाणित हुआ। इसने जहाँ जर्मनी की द्रुत-गति से फ्राँस को करारी मात देने की योजना को निष्फल कर दिया, वहीं इंग्लैंड तथा फ्राँस की सेनाओं को सुनियोजित-संयुक्त आक्रमण करने के लिए पर्याप्त समय प्रदान कर दिया !

आइन (Aisne) नदी के तट पर जर्मनवासी स्थायी से हो गए तथा उन्होंने वहाँ से हटाने के समस्त फ्राँसीसी प्रयास निष्फल कर दिए। पुन: दोनों सेनाओं ने एक-दूसरे को परास्त करने के लिए उत्तर दिशा की ओर बढ़ना शुरू किया- किंतु यह भी निष्परिणाम ही रहा। अब स्विट्ज़रलैण्ड से लेकर 'नौर्थ सी' (उत्तरी सागर) तक की सीमा पर इन दोनों शत्रुओं के मध्य प्रसिद्ध "ट्रेन्च (खाई) युद्ध" प्रारम्भ होकर चार लम्बे वर्षों तक चलता रहा। इसी बीच जर्मनी, बेल्जियम को पूर्णत: रौंदने तथा एन्टवर्प को विजित करने में सफल हो गया। किंतु, इंग्लैंड एव फ्राँस की सेनाएँ उनका सफलता-पूर्वक प्रतिरोध करती रहीं।

इस दीर्घकालीन युद्ध में 1916 ई० का वर्ष काफी महत्वपूर्ण है, क्योंकि, फरवरी से लेकर दिसम्बर तक फ्राँस की क्षमता का भरपूर परीक्षण हुआ। वर्दून की शहादत से, हाँलाकि, फ्राँस विजयी होकर उभरा, किंतु, इसी से वह अत्यधिक क्षीण हो गया था। युद्ध के लम्बे खिंचने के कारण व सफलतापूर्वक प्रतिरोध करने की क्षमता के कारण, फ्राँसीसी मनोबल शनै: शनै: बढ़ने लगा और बढ़ता ही रहा ![41] हाँलाकि, आठ मील के इस क्षेत्र में जर्मनी की चौदह सौ (1400) तोपें-जिनमें आधी भारी एवं भीषण-प्रभाव वाली हौवित्ज़र थीं - कहर बरपा रही थी, फिर भी, इस क्षेत्र में जो फ्राँसीसी सुरक्षात्मक दुर्गों की उपस्थिति थी- उसके कारण भी फ्राँसीसी सुरक्षा सुदृढ़ थी और युद्ध के दौरान, फ्राँसीसी तोप-

विभाग ने जो तकनीक व शैली विकसित कर ली थी वह भी अद्भुत् तथा मारक-क्षमता पूर्ण थी अतः फ्राँस ज्यादा अच्छे ढंग से युद्ध संचालन कर, जर्मनी से दो-दो हाथ कर सका!

इस प्रकार, उत्तर में, नवीन ब्रिटिश सेनाओं के आगमन से इंग्लैंड व फ्राँस की संयुक्त सेनाओं में नए जोश का संचार हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति 'सोम्म के युद्ध' में हुई ! किंतु, जितना भयंकर यह युद्ध एवं जितनी भीषण इसकी विभीषिका थी उतनी ही फ्राँसीसी सेनाओं की थकावट थी-युद्धों की अविरलता तथा भीषणता के अनुपात में उस सेना का 'चुक जाना' भी स्वाभाविक व अपरिहार्य था। और, इसके परिणामस्वरूप, 1917 ई० की जोफ्रे की आक्रमण की योजना निष्फल हो गई ! वस्तुतः अपनी हिंडेनबर्ग रेखा की ओर पलटना ही जर्मनी-सेनाओं की सफलता का कारण था।[42] और इसी ने 'एलाइड' सेनाओं के आक्रमण को निष्प्रभावी कर दिया और इसी के परिणामस्वरूप, फ्राँसीसी सेनाओं की निराशा घनी हो गई। तथा, 1917 ई० की ग्रीष्म भर, वे मात्र अपनी खंदकों की ही रक्षा में लगे रहे-आक्रमणों का साहस नहीं बटोर सके !

और ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में पेटेन ने फ्राँसीसी लोगों की प्रशंसा प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली। उसने फ्राँसीसी सेनाओं को पुनर्जीवित करने का चमत्कार कर दिखाया और सोने में सुहागा वाली परिस्थिति तब बन गई जब 1917 ई० में क्लेमेन्क्यू फ्राँस का प्रधान-मंत्री बन गया, अपितु, 1917 ई० के अन्त में ! उसके आग्मन के साथ ही, नागरिकों में एक अभूतपूर्व विश्वास एवं जोश प्रवाहित होने लगा। विश्वासघातियों की गिरफ्तारी बड़े पैमाने पर शुरू कर दी गई ; जर्मन - समर्थकों को बंदीगृह पहुँचाया गया तथा पराजयवादियों की सर्वत्र निन्दा की जाने लगी। अगले वर्ष के संपूर्ण भाग तक, जब तक विजयश्री अर्जित न हो गई, क्लेमेन्क्यू ने एक प्रजातांत्रिक अधिकनायकवाद के आधार पर शासन किया। उसके व्यक्तिगत चर्मोत्कर्ष की तुलना ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लौयड् जौर्ज के चढ़ते राजनीतिक प्रभाव से की जा सकती है। क्लेमेन्क्यू की दृष्टि जर्मन-पराजय पर केंद्रित थी, अतः उसकी दृष्टि अन्ततः फोच् जैसे सेनानायक पर केंद्रित होनी स्वाभाविक थी -वही एक मात्र ऐसा सेनानायक था जिसकी आक्रामकता कदापि प्रभावित नहीं हुई थी तथा जिसकी मान्यता थी, कि, विजय सम्भव है। क्लेमेन्कयू ने ब्रिटिश सेनाओं को भी उसके नेतृत्व में संयुक्त रूप से युद्ध करने के लिए तैयार कर लिया। यह सही समय पर लिया गया एक

उचित निर्णय था। 1918 ई० के बसंत में ल्यूडेनडौर्फ़ के सेनापतित्व में जर्मनी के अन्तिम एवं सर्वशक्तिशाली आक्रमण की शुरूआत हुई – इसकी दिशा मुख्यत: ब्रिटेन-विरोधी थी। इस आक्रमण की भीषणता का आभास इसी तथ्य से हो जाता है, कि, जर्मन सेनाओं ने पछत्तर लाख युद्ध-बंदी बना लिए थे; वे मार्न तक पहुँच कर, पेरिस को भयभीत कर चुके थे। स्थिति भयावह थी और क्लेमेन्क्यू की उपस्थिति के वास्तविक अर्थ का आभास हमें इसी से होता है 'उसका अतृप्त साहस इन्हीं प्रतिकूल परिस्थितियों में दीप्तमान हो रहा था।'[43] उसने प्रतिनिधि सभा-के सदन में उद्घोषित किया, "मै पेरिस के पूर्व भी युद्ध करूँगा, पेरिस में भी युद्ध करूँगा तथा पेरिस के पश्चात् भी युद्ध करूँगा" ("I will fight before Paris, I will fight in Paris, I will fight behind Paris")[44]

उसकी धारणा थी, कि, यदि नागरिक-अधिकारी व प्रशासन भी अपने दायित्वों का निष्ठापूर्ण निर्वहन करें तो फ्राँस युद्ध में पराजित नहीं हो सकता। उसके नेतृत्व में सार्वजनिक-प्रशासन ने नई उचाईयों को स्पर्श किया। अत: 1918 ई० में जब जर्मन – सेनाएं पेरिस की ओर अग्रसर हो रही थीं, तब फोच् सुनियोजित प्रति-आक्रमण की तैयारी में व्यस्त था। उसे ब्रिटिश सेनाओं के प्रतिरोध पर अदम्य विश्वास था – वह उनकी सहायतार्थ न तो गया और न ही सेनाएँ भेंजीं- वह अपना एक-एक सैनिक उस अंतिम निर्णायक क्षण के लिए रोके हुए था जब जर्मन-सेनाएँ अपनी आक्रामक गति के अन्तिम सीमा पर होगीं। इसी बीच अमरीकी सैनिकों का भी सहायतार्थ – आग्मन प्रारम्भ हो गया था। अन्तत: मध्य-जुलाई 1918 ई० को वह निर्णायक क्षण व अवसर आ ही गया फोच् ने सोइसन्स एवं चैत्यू-थ्येरी के मध्य आक्रमण किया और यही अन्त का श्रीगणेश साबित हुआ। अगस्त 8, 1918 ई० को 'हिन्डेनबर्ग रेखा' अथवा पंक्ति टूट गई और तब से निरन्तर युद्धों में फँसाकर फोच् ने शत्रु को कोई आराम व क्षणिक विश्राम भी लेने नहीं दिया। फ्राँसीसी सेना ऐसे लड़ रही थी जैसे वह किसी परा-शक्ति से परिचालित हो! सितम्बर आते-आते तो फ्लैंडर्स में ब्रिटिश सेनाओं व म्यूस में फ्राँसीसी सेनाओं ने आक्रमण कर, जर्मन सेनाओं की हिन्डेनबर्ग रेखा के मध्य (केंद्र)की ओर अग्रसर होना प्रारम्भ कर दिया था। जर्मन-सेनाएँ अपनी सीमाओं की ओर लौटने के लिए बाध्य हो गईं ! नवम्बर 9, 1918 ई० को केसर का साम्राज्य विलुप्त हुआ-उसने पद त्याग दिया तथा जर्मनी में नवीन गणराज्य की स्थापना हुई और इसी से शाँति-वार्ता प्रारम्भ हुई। नवम्बर 11, को फोच् ने उन्हें युद्ध-विराम का आश्वासन प्रदान किया।

हाँलाकि प्रथम, विश्व-युद्ध में फ्राँस अन्ततः विजयी होकर निकला, फिर, भी वह काफी थक व क्षीण हो चुका था। वह न केवल सैन्य रूप से दुर्बल हो गया था, बल्कि, कूटनीतिक दृष्टिकोण से भी यूरोप में उसकी तुलनात्मक शक्ति व स्थिति का ह्रास ही हुआ था। अतः इस प्रकार, विजय की हुंकार में, फ्राँस की वास्तविक स्थिति छिपकर रह गई थी। बावजूद दिखावट के, फ्राँस की मानसिकता पराजित राष्ट्र की सी हो गई थी, उसे जन, धन व साधन की इतनी हानि झेलनी पड़ी थी, कि, वह दोबारा उठने व लड़ने लायक नहीं रह गया था। अतः अब वह अपनी सुरक्षा के प्रति अत्यधिक चिंतित रहने लगा था। हाँलाकि, यह स्वाभाविक एवं तार्किक भी था परन्तु इंग्लैंड कभी भी फ्राँस की मानसिकता को समझ ही न सका और अमरीका को तो इसका आभास भी नहीं हुआ, किंतु, फ्राँस द्वितीय विश्व-युद्ध तक अपनी सुरक्षा के ही उधेड़-बुन में फँसा रहा और यह मानसिक उलझन कितनी वास्तविक थी-यह तो द्वितीय विश्व-युद्ध ने सुस्पष्ट ही कर दिया।

फोच् तथा क्लेमेन्क्यू के विरूद्ध पोइन्केयर जर्मनी की पराजय पूर्णरूपेण चाहता था तथा वह यह भी चाहता था, कि, यह जर्मन पराजय सर्वविदित भी हो जाए ! कम से कम, इससे नात्सी उदय के काल्पनिक कारण का तो भण्डाफोड़ हो ही जाता। जनवरी 1919 की शाँति वार्ता में भी पोइन्केयर ने राह्इन के पश्चिमी तट को जर्मनी से असम्बद्ध करके, फ्राँस की सुरक्षा के आश्वासन की माँग करी, किंतु, क्लेमेन्क्यू ने इसे सहर्ष त्याग कर के, उसके स्थान पर संयुक्त राज्य अमरीका एवं ग्रेट ब्रिटेन के साथ सैन्य-समझौतों को वरीयता प्रदान करी। पोइन्केयर पेशे से वकील होने के कारण, इस बात से अवगत था, कि, यह समझौता बहुत उपादेय साबित नहीं हो सकता है। फोच् के भी विचारानुसार, अमरीका और फ्राँस तब तक पराजित व अधिकृत हो जाएगा। वस्तुतः यही सत्य भी प्रमाणित हुआ ज़ब 1940 ई० में फ्राँस पर द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान आक्रमण आसन्न हुआ ! और जो चेतावनी पोइन्केयर ने दी थी वह भी सत्य प्रमाणित हुई - 1936 ई० में हिटलर ने यूरोपीय समझौते का उल्लंघन करते हुए, राह्इनलैंड का सैन्यीकरण पुनः कर दिया और ब्रिटेन द्वारा किसी भी प्रकार के विरोध अथवा प्रतिरोध ने जर्मनी का आक्रामक मार्ग सुगम कर दिया !

संयुक्त राज्य सभा या लीग ऑफ़् नेशन्स के संविधान की आलोचना पोइन्केयर ने तभी कर दी थी कि, चूँकि, इसके पास कोई क्रियान्वयन विधि नहीं है, अतः चाहकर भी यह संस्था समुचित व्यवस्था नहीं बना पाएगी और

वही हुआ भी। शाँति समझौते के पांच माह बाद ही अमरीका व ब्रिटेन ने सीमाओं (जिसमें फ्राँस की सीमाएँ भी सम्मिलित थीं) की सुरक्षा की गारन्टी लेने अथवा ठोस आश्वासन देने से इन्कार कर दिया ! फ्राँस विवश होकर, अपनी सीमाओं की सुरक्षा के लिए आत्म-निर्भर होने के उपाय सोचने लगा, ताकि, उसकी सीमाएँ सुरक्षित रह सकें ! बस ब्रिटेन से थोड़ी बहुत आशा थी-वह भी फ्राँस की पश्चिमी सीमा पर और केन्स में सन् 1922 ई० में ब्रिटिश प्रधानमंत्री लौयड जौर्ज ने, वस्तुतः, पश्चिमी सीमाओं की सुरक्षा का पूर्ण आश्वासन दे दिया, किंतु, पूर्वी सीमाओं की सुरक्षा के सम्बंध में वह भी मौन ही रहा ! दुर्भाग्य से, 1918 ई० के महायुद्ध की समाप्ति पर, यूरोपीय राजनीतिक समीकरण कुछ सीमा तक इतना प्रभावित था कि पराजय के बावजूद भी, यह जर्मनी को सशक्त कर गया था।

राजनीतिक दृष्टि से, वर्साय की संधि यूरोप को ध्वस्त करने वाली शक्ति के प्रति बहुत उदार साबित हुई। अतः वे दोबारा इससे भी अधिक अव्यवस्था फैलाने के विषय में सोच सके ! आर्थिक क्षेत्र में, विशेष रूप से, जर्मनी से हर्जाने की वसूली की विधि के प्रश्न पर, ब्रिटेन व फ्राँस में स्पष्ट मतभेद थे और शनैः शनैः पुन शक्तिशाली होते जर्मनी ने, कम से कम अदायगी की चाल शुरू कर दी और अमरीका का पैसा, जो युद्ध से क्षत-विक्षत जर्मनी के पुनर्वास पर खर्च होना था- वह भी जर्मनी के आयुध भण्डारन में ही अधिक काम आया और, इसी से, द्वितीय विश्व-युद्ध सम्भव भी हो सका!

दूसरी तरफ, जहाँ तक फ्राँस की अपनी समुत्थान की समस्या थी - उसने थोड़े से समय-थोड़ी बहुत सहायता से अभूतपूर्व उपलब्धि अर्जित कर ली। 1921-1924 ई० के मध्य उसकी आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ होने लगी तथा व्यापार-संतुलन भी उसके अनुकूल हो गया। 1925 ई० तक फ्राँस की आन्तरिक अर्थ-व्यवस्था पूर्णतः पुनः पटरी पर आ चुकी थी और फ्राँस की यह समुत्थान प्रक्रिया उसके अपने प्रयासों से ही सम्भव हो सकी थी ! किन्तु, जब जर्मनी से हर्जाना - वसूली के प्रश्न पर ब्रिटेन व फ्राँस का मतभेद हुआ ही था तब तक एक अन्य समस्या ने इनके मध्य दूरी को और अधिक बढ़ाने में सक्रिय योगदान दिया। यह समस्या निकट-पूर्व की थी जहाँ मिस्र व तुर्की के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया था। इस युद्ध में ब्रिटेन मिस्र का एवं फ्राँस, तुर्की का पक्षधर बना। और जर्मनी ने भी इस दौर में पुनः अपनी-अपनी ढ़पली अपना-अपना राग कर रहे यूरोप को पूर्व एवं पश्चिमी के खेमों में विभक्त करने में सफलता

अर्जित की – उसने रूस के साथ संधि कर ली, जिसका उल्लंघन उसने जनबूझकर किया व द्वितीय महायुद्ध का श्रीगणेश किया। फिर भी, वह अपने गंतव्य में सफल रहा। रूस को पाश्चात्य पर तनिक भी विश्वास न था और, विचारधारा के आधार पर तो वह पाश्चात्य को स्वयं पसंद नहीं करता था और, न ही, वह स्वयं पाश्चात्य को फूटी आँख, सुहाता था, अत: विचारधारात्मक युद्ध-दो महायुद्धों के मध्य-काल में ही प्रारम्भ हो गया था। अत: नात्सीवाद व साम्यवाद के मध्य घृणापूर्ण बैर के बावजूद भी इन दो शक्तियों के मध्य एक कृत्रिम समझौता – कुछ समय के लिए ही सही हो, गया और पाश्चात्य विश्व – विशेषत: फ्राँस अवाक् रह गया और रूस पर दोषारोपण करने लगा। जर्मनी यही चाहता था – यूरोप को पूर्व व पाश्चात्य के वैमनस्यपूर्ण खेमों मे विभक्त करके, वह अपनी समुत्थान की प्रक्रिया को सुचारू रूप से सक्रिय रखने में सफल हो गया एवं शीघ्र ही अपने आप को सैन्य-शक्ति के रूप में पुन: परिवर्तित कर सका !

ब्रिटेन से सहायता न प्राप्त होने की स्थिति में, पोइन्केयर अपने को पूर्ण निराशा से न रोक सका और अन्तत: बल-प्रयोग के विकल्प के विषय में सोचने को बाध्य हो गया। 1923 ई० में उसने रूह्र पर फ्राँसीसी आधिपत्य करवा दिया-उन्हें जर्मनी सरकार द्वारा समर्थित निष्क्रिय प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। फ्राँसीसी गणतंत्र के नए राष्ट्रपति मिलेराँ ने अब जर्मनी से प्रत्यक्ष वार्ता पर बल दिया। राह्इन क्षेत्र में फ्राँस अपनी सुरक्षा अब स्थापित करवा सकता था, किंतु, जैसा कि, पोइन्केयर ने स्वयं स्वीकार किया है, कि, 'फ्रांस पूर्णत: चुक गया था अत: मेरा अनुगमन करने में असमर्थ रहा।'[45] अत: उसकी दृढ़ता की नीति को फ्राँस में ही समर्थक न मिले। सब शाँति के पक्षधर हो गए और युद्ध तथा युद्धपरक परिस्थितियों के विरूद्ध हो गए थे। अत: अब एक ही विकल्प शेष रह गया था और वह था शाँति-वार्ताओं का विकल्प।

इसी समय संयोगवश, फ्राँस में वामपंथी एवं समाजवादियों को राजनीतिक विजयश्री भी प्राप्त हो गई थी और उनका पहला कृत्य था, मिलेराँ को राष्ट्रपति पद से हटाकर, महत्वहीन दोमर्ग्य (Doumergu) को उनके स्थान पर नया राष्ट्रपति बनाना। वामपंथियों की विदेश नीति अधिक सफल प्रमाणित हुई – क्योंकि, ब्रिटेन में भी पहली बार श्रमिक अथवा लेबर राजनीतिक-दल की सरकार गठित हो गई थी, अत: फ्राँस तथा ब्रिटेन ने पारस्परिक मतभेदों को भुलाकर, 'जेनेवा प्रोटोकौल' पर हस्ताक्षर कर दिए, जिसमें संयुक्त सुरक्षा एवं नियंत्रित निशस्त्रीकरण के प्रावधान भी सम्मिलित थे। किंतु, दुर्भाग्यवश, ब्रिटेन में लेबर सरकार शीघ्र

ही गिर गई एवं कंज़र्वेटिव दल की सरकार ने इस संधि की पुष्टि करने से भी इंकार कर दिया और, इस प्रकार, यह संयुक्त प्रयास धराशायी हो गया और, फ्राँस पुनः प्रत्यक्ष रूप से जर्मनी से, वार्ता करने को विवश हो गया।

फ्राँस और जर्मनी के मध्य प्रत्यक्ष वार्ता के प्रयासों के परिणामस्वरूप ही लोकार्नो संधियाँ 1925 ई० में सम्भव हो सकीं थीं। इस समझौते की नीति का स्थापत्यकार, ब्रियान् था, जो 1925 ई० से 1932 ई० तक फ्राँस का विदेश-मंत्री रहा। लोकार्नो में, जर्मनी ने फ्राँस की पूर्वी सीमाओं की सुरक्षा का आश्वासन दे दिया ; इसके बदले में, जर्मनी संयुक्त राज्य सभा की सदस्यता ग्रहण कर सकता था ; एवं, कोलोन के सैन्य-आधिपत्य को समाप्त करना भी स्वीकृत कर लिया गया। किंतु, दूसरी ओर, जर्मनी और रूस के मध्य 'रैपैलो संधि' का नवीनीकरण हो गया, जिससे ये दोनों देश एक-दूसरे के और नज़दीक आ गए और अत्यधिक चालाकी से स्ट्रेस्मैन ने 'ऐलसेस-लौरेन' के स्पष्ट परित्याग के मुद्दे को टालने में सफलता प्राप्त कर ली-यह फ्राँस के हितों के प्रतिकूल था। ब्रियान् संयुक्त राज्य सभा के अधार पर, एक संयुक्त यूरोपीय व्यवस्था की परिकल्पना एवं उसके कार्यान्यवन का प्रयास करता रहा। हाँलाकि, उसके विदेश - मंत्रित्व के संपूर्ण काल में, फ्राँस के ऊपर, आक्रामकता का आरोप लगता रहा, किंतु उसे सदन में निरन्तर बहुमत का समर्थन मिलता रहा एवं फ्राँस में अनिवार्य सैन्य-सेवा की अवधि तीन वर्षों से घटाकर मात्र एक वर्ष कर दी गई थी !

□

[13]

द्वितीय विश्व-युद्ध का काल

फ्राँस, इंग्लैंड एवं संयुक्त राज्य अमरीका सभी ने न केवल एक-स्वर से जर्मनी को द्वितीय विश्व-युद्ध के लिए उत्तरादायी तथा दोषी माना, अपितु, उसे अपराधी का सा स्तर भी प्रदान कर के, वैसा ही व्यवहार भी किया। किंतु, क्या वे अपने उत्तरादायित्व से भी बच सकते हैं-उन्होंने नात्सी प्रचार-प्रसार को जानते-समझते हुए भी, उसके विरूद्ध कोई संयुक्त प्रतिरोध अथवा विरोध का प्रयास कभी कयों नहीं किया ? इतिहासकार ए. जे. पी. टेलर ने बहुत ठीक ही लिखा है कि 'अधिकांशतः, द्वितीय विश्व-युद्ध प्रथम की ही पुनरावृत्ति थी।'[46] जिस प्रकार से यूरोपीय महाशक्तियाँ जर्मनी के विरूद्ध पेश आईं थीं -उसका प्रतिशोध अपरिहार्य था और जैसे ही इन शक्तियों ने जर्मनी को पुनर्स्थापना का अवसर ही नहीं, इस दिशा में अग्रसर होने के लिए, उसको सहायता भी प्रदान करी, वैसे ही जर्मनी ने अपने-आप को सशक्त करना प्रारम्भ कर दिया और, फिर अवसर का लाभ उठाते हुए, इंग्लैंड की तटस्थता एवं संयुक्त राज्य अमरीका की उदासीनता के चलते, बहुत द्रुत गति से अपना सैन्यीकरण कर लिया। आगे चलकर, यही आधार बना नात्सी प्रचार-प्रसार का-और बिना नात्सीवाद के आक्रामक राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय शर्म एवं उसके प्रतिशोध की सम्भावनाएँ नगण्य थीं और इन सबके लिए, अन्ततः उत्तरदायी जर्मनी के अतिरिक्त, शेष शक्त्यिां नहीं थीं क्या? क्या वे इस अपराध बोध को छुपाने के लिए जर्मनी पर अधिक जोर-शोर से आरोप व दण्ड नहीं लगा रहे थे ?

वस्तुतः, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका का उत्तरदायित्व स्वाभाविक रूप से अधिक था, क्योंकि, कम से कम, फ्राँस ने तो 1920 के दशक में ही जर्मनी की नियत व वास्तविक चरित्र को भली-भाँति समझ लिया था। संयुक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन की तुलना में, ब्रिटेन का उत्तरदायित्व इस दृष्टिकोण से अधिक हो जाता है, कि, अमरीका यूरोप से बहुत दूर स्थित था अतः सम्भवतः सही आंकलन न कर सका हो, किन्तु, ब्रिटेन तो पास होने के बावजूद भी, अनेक भ्रमों में पड़ा रहा। जबकि, 1930 के पूर्ण दशक में फ्राँस की विदेश नीति, विशेष रूप से, जर्मन के प्रति जो नीति थी-उसमें एक स्पष्ट स्थिरता एवं

अविरलता दिखाई देती है। पाश्चात्य देशों की पूरी स्थिति इस लिए और भयावह एवं असुरक्षित हो गई थी, क्योंकि, संयुक्त राज्य अमरीका ने अपने-आपको इस पूरे परिदृश्य से पूर्णतः असम्बद्ध कर लिया था। फिर भी, फ्राँस एवं ब्रिटेन की संयुक्त नीति नात्सी आक्रामक प्रसारवाद का प्रतिरोध करने में सफल हो गई होती और परिस्थिति भी असामान्य एवं अनियंत्रित न हो पाती, किंतु, ब्रिटेन की नीति दिशाहीन थी और समय-समय पर विवेक से परे कुछ निर्णय कीमती साबित हो गए। 1930 के दशक के प्रथम भाग में तो हम ब्रिटेन को दो विकल्पों व विचारों के मध्य अस्थिर पाते हैं और, दूसरे भाग में, ब्रिटेन ने तुष्टीकरण की घातक नीति अपना ली, जिसके परिणामस्वरूप सुरक्षित व सुदृढ़ फ्राँसीसी विदेश नीति निरर्थक तथा दिग्भ्रमित प्रतीत होने लगी। चेम्बरलेन के अधीन ब्रिटिश नीति पूर्णतः जर्मनी के तुष्टीकरण की नीति हो गई। अब फ्राँस के लिए एक स्वतंत्र मार्ग की सम्भावना समाप्त हो गई।

ब्रिटेन और फ्राँस दोनों ही देश मूलतः प्रजातांत्रिक देश थे। वे रूस जैसे साम्यवादी देश अथवा जर्मनी जैसे नात्सी देश की भाँति एकरूप नहीं हो सकते थे। सार्वजनिक दबाव व जनमत के कारण, वे ऐच्छिक नीति का नियोजन एवं कार्यान्वयन नहीं कर पाते थे। जनमत अधिकांशतः मतभेदों को उभार देता था और यह मतभेद उस महायुद्ध को निमंत्रण दे बैठा-जिसके चलते अन्ततः एकीकृत राष्ट्र उभर सके-संकट की घड़ी में तो पारस्परिक मतभेद भुलाकर, शत्रु के सम्मुख एकीकृत राष्ट्र खड़े हो गए, किंतु, राष्ट्रीय हित में पारस्परिक मतभेदों को भुला दिया होता तो सम्भवतः विश्व को तीन दशकों में ही दूसरे महायुद्ध की विभीषिका न झेलनी पड़ती !

वस्तुतः, इस पूरे दौर में, फ्राँस की आन्तरिक राजनीति में जो कुछ घटा वह प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों से प्रभावित था। जर्मन खतरे के विरूद्ध एक सुरक्षात्मक संयुक्त मोर्चे के गठन का अन्तिम फ्राँसीसी प्रयास उस समय निष्फल हो गया, जब मार्स्यील्स (Marseilles) में 1934 ई० में, फ्राँसीसी विदेश मंत्री व पोइन्केयर के पुराने मित्र बार्थो एवं यूगोस्लाविया के शासक अलैक्ज़ैंडर की हत्या कर दी गई। इस हत्या-काण्ड ने फ्राँस की आंतरिक सुरक्षा, उसकी पुलिस व्यवस्था, उसकी सेनाओं एवं कार्यकारी (प्रशासन) की कलई खोल दी। इन सभी शाखाओं में असंतोष इस सीमा तक व्याप्त था, कि, असंतुष्ट तत्व शत्रु की प्रशंसा, आत्म-हन्ता के भाव से करते थे। वे उद्घोष करते थे,

कि इस शासन से तो अच्छी स्थिति जर्मन - आधिपत्य में होगी - स्थिति इतनी बिगड़ी तो न रहेगी। और इसी पराजय-भाव ने फ्राँस को युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ही 1940 ई० में ही पराजित कर दिया। प्रचलित चुनाव-प्रणाली के अन्तर्गत होने वाले चुनावों ने इस काल में निरन्तर वामपन्थियों को बहुमत प्रदान किया अतः दक्षिण-पंथी शक्तियाँ फासीवादी संगठनों का उपयोग अपनी स्वार्थ - सिद्धी के लिए करने को तत्पर हो गई-यह जानते हुए भी, कि, इनमें से कुछ विदेशी (शत्रु - अर्थात्, जर्मनी एवं इटली) समर्थित व सहायता प्राप्त या संयुक्त संगठन थे।

इन तमाम शक्तियों ने एकीकृत प्रयास द्वारा तत्कालीन फ्राँसीसी सरकार को अधिक ही डरा-धमका दिया था, किंतु, यह एक अपरिपक्व प्रयास था - फरवरी 6,1934 ई० को उन्होंने सरकार को तो अपदस्थ करने में सफलता प्राप्त कर ली थी, किन्तु, वे संसदीय संस्थाओं को विनष्ट व समाप्त करने में सफल न हो सके अर्थात् , प्रजातांत्रिक भावना उसी प्रकार सक्रिय रही। अन्ततः इन दो विरोधी आन्तरिक शक्तियों के मध्य एक समझौता हुआ, जिसके केंद्र-बिंदु में एक भूतपूर्व समाजवादी लैवेल था। लैवेल का द्वैववृत्तिपूर्ण व्यक्तित्व एवं राजनीति, वास्तव, में इस तृतीय फ्राँसीसी गणतंत्र के अन्तिम वर्षों का प्रतीक थी। किंतु इसके बावजूद, उसके जीवन-काल में एक सामंजस्य था। वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी होते हुए भी शाँतिवादी एवं पराजय-भाव से ओत-प्रोत व्यक्ति था। 1917 ई० में जब प्रथम विश्व-युद्ध का सबसे निर्णायक क्षण था तब भी पराजयवाद का प्रचार कर रहा था, तत्पश्चात् उसने वर्साय की संधि का भी विरोध किया था। 1920 ई० में उसने वामपंथ का दामन त्याग दिया और पद प्राप्त कर लिया। फिर भी, वह दोनों पक्षों को साधने वाला एक सफल कूटनीतिज्ञ व वार्ताकार प्रमाणित हुआ। वह भी इटली के अधिनायक फासीवादी मुसेलिनी की भाँति प्रसिद्ध दार्शनिक सोरेल का अनुयायी था। इसीलिए लैवेल एवं मुसोलिनी दोनों एक-दूसरे को खूब समझते थे।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों अथवा विश्व के मामलों में सिद्धान्तों के अभाव के कारण, उत्पन्न खतरा इंग्लिश चैनेल के दोनों तरफ अर्थात्, फ्राँस व इंग्लैंड में 1935 ई० में सुस्पष्ट होने लगा था। इटली प्रथम विश्व-युद्ध में विजित देशों के साथ होने के बावजूद अपनी आशाओं की पूर्ति न हो पाने के कारण निराश व पराजय-भाव से ग्रस्त थी। अतः अबीसिनिया (अथवा इथ्योपिया) पर अपने

आधिपत्य व प्रसार को तर्क–संगत एवं न्यायिक माना और, उसपर औपनिवेशिक अधिकार की योजना बना डाली। इटली ने यह मान रखा था, कि, जर्मनी के विरूद्ध संतुलन के लिए वह इंग्लैंड तथा फ्राँस के लिए अपरिहार्य था, अतः वे उसके प्रसार का विरोध तथा प्रतिरोध नहीं करेंगे। किंतु, इटली के इस नग्न आक्रामकता की निंदा लगभग पूर्ण प्रजातांत्रिक विश्व में प्रारम्भ हो गई तथा संयुक्त राज्य सभा अथवा 'लीग ऑफ़् नेशन्स' में ब्रिटेन ने विरोध का मुखर नेतृत्व भी किया। वस्तुतः, यह लीग ऑफ़् नेशन्स के अस्तित्व के लिए परीक्षण प्रकरण हो गया था। इसके द्वारा यूरोप की संयुक्त सुरक्षा की उपादेयता प्रमाणित होनी थी तथा तीव्र गति से विभाजित हो रहे विश्व की एकमात्र आशा की किरण यही थी। किंतु, इटली के विरूद्ध कोई ठोस निषेधात्मक कार्यवाही न हो सकी – हाँलाकि, बाद में, युद्ध के अन्तर्गत इटली के पराक्रम–अभाव व सैन्य–शिथिलता से यही प्रमाणित होता है, कि, हल्के से प्रतिरोध अथवा अनुशास्ति में भी इटली ने प्रसारवादी औपनिवेशिक नीति का परित्याग कर दिया होता। सम्भवतः मुसोलिनी को लैवेल द्वारा पूर्ण सूचना मिल जाने के कारण भी, यह आक्रामकता सम्भव हो सकी हों। लैवेल फ्राँस के दक्षिणपंथियों को खुश करने के लिए शायद ऐसा करने पर विवश था। इसी बीच, ब्रिटेन में बैल्डविन सरकार को इस आधार पर बहुमत प्राप्त हो गया, कि, वह संयुक्त राज्य सभा की संयुक्त सुरक्षा नीति के प्रावधानों के कार्यान्वयन को सम्भव बना देगा। कितु, इटली द्वारा अबीसीनिया पर आधिपत्य को स्वीकारते हुए दोनों देशों के मध्य एक समझौता हो गया–जो ब्रिटिश आधिकारिक नीति के प्रतिकूल था, अतः ब्रिटेन में जनमत इसके विरूद्ध हो गया। किसी प्रकार विदेश मंत्री, जिसने लैवेल के समझाने पर हस्ताक्षर किए थे–उसी की बलि चढ़ाकर, बाल्डविन सरकर अपनी जान बचा पाई। ब्रिटेन के समस्त वामपंथी तत्व इस ब्रिटिश सरकार के सक्रिय विरोधी हो गए तथा फ्राँस व ब्रिटेन के मध्य भी अविश्वास पनपने लगा। और, मुसोलिनी द्वारा किए गए औपनिवेशिक प्रसार ने संयुक्त राज्य की सुरक्षा–व्यवस्था को धता बताकर हिटलर का मार्ग प्रशस्त कर दिया–जो अब बिना अनुशास्ति (sanctions) के भय के, अपने प्रसार के नग्न नृत्य का श्रीगणेश कर सकता था।

अतः मार्च 1936 ई० में उसने वर्साय की संधि और उसके जमानतदारों अथवा संरक्षकों (ब्रिटेन एवं फ्राँस) को धता बताते हुए, राइनलैंड का सैन्यीकरण पुनः कर डाला। यह एक निर्णायक मोड़ व क्षण था। फ्राँस सरकार हस्तक्षेप

भी करना चाहती थी। किंतु, ब्रिटेन जो मुसोलिनी से अधिक सशंकित था–उसने फ्राँस को हतोत्साहित कर दिया। और, एक बार जब राइनलैण्ड के सैन्यीकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो गई, तब बिना पूर्ण-स्तरीय युद्ध के हस्तक्षेप सम्भव ही नहीं था। हिटलर की जर्मनी अब यूरोप पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की योजना को क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता प्राप्त कर चुकी थी। अतः, शनैः शनैः, यह अभियान आगे बढ़ा। 1938 ई० के प्रारम्भ में, औस्ट्रिया पर आक्रमण; शरद ऋतु में म्यूनिक पर आक्रमण; तथा, चेकोस्लोवाकिया का विखण्डन; मार्च 1939 ई० में प्राहा (Prague) पर अक्रमण तथा चेकोस्लोवाकिया की स्वत्रंता का अन्त; तथा, सितम्बर 1939 ई० में पोलैण्ड पर आक्रमण तथा महायुद्ध का श्रीगणेश!

इसी बीच फ्राँस में भी लैवल, दक्षिणपंथियों एवं फासीवादी शक्तियों के विरूद्ध एक जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई तथा, वामपंथियों-समाजवादियों को 1936 ई० के चुनावों में बहुमत प्राप्त हो गया और, लियोन् ब्लम ने पहली बार सत्ता सम्भाली ! बौद्धिक क्षमताओं से परिपूर्ण यह समाजवादी, आदर्शवादी, ईमानदार देश-प्रेमी ब्लम एक शाँतिप्रिय व्यक्ति था जो निशस्त्रीकरण पर अत्यधिक जोर देता था। उसे जर्मनी के सामाजिक-प्रजातांत्रिक (सोशल डेमोक्रेटिक) दल पर भी विश्वास था। वह कहता था, कि, फासीवादियों से कोई वास्तविक भय नहीं हो सकता है और यही उसके मूल्यांकन की सबसे बड़ी व भयंकर भूल साबित हुई। जो फ्राँसीसी सुरक्षा का अपरिहार्य कदम होना चाहिए उनसे उसमें भी चूक हो गई। ब्लम व समाजवादियों ने अनिवार्य सैन्य-सेवा की अवधि को एक वर्ष से बढ़ाकर दो वर्षीय करने से इंकार कर दिया। अतः 1940 ई० में आवश्यकता पड़ने पर फ्रांसीसी सुरक्षा व्यवस्था में जो रिक्तता रह गई थी, उसके लिए उन्हें जबरदस्त अपराध-बोध हुआ।

समाजवादियों के सत्तासीन होने के कारण, एक निर्णायक मोड़ पर प्रतिकूल निर्णय व परिवर्तनों ने फ्रांसीसी अर्थ-तंत्र, समाज और अन्ततः राजनीति पर कुप्रभाव छोड़ा और उसकी शक्ति क्षीण कर दी ! श्रमिक वर्ग की अनुशासनहीनता ने अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया और उनकी पुरानी मांगों की सरकारी पूर्ति ने उसके स्वर को और भी मुखर कर दिया। शस्त्र उद्योग का राष्ट्रीयकरण भी कर दिया गया। बैंक ऑफ् फ्राँस के नियंत्रण को प्रजातांत्रिक कर दिया गया। इसके फलस्वरूप, अब जहाँ वित्तीय संकट फ्रांस को दबोचने लगा, वहीं स्पेनी गृह-युद्ध ने विदेशी मामलों में भी फ्राँस को असफल पाया ! अन्ततः राष्ट्रपति

ब्लम को त्याग-पत्र देना ही पड़ा ! अत: 1938 ई० को जब हिटलर ने औस्ट्रिया पर आक्रमण किया तथा उसको अधिग्रहीत कर लिया, तब फ्राँस एक सरकार विहीन राष्ट्र था ! क्लेमेन्क्यू व पोइन्केयर के काल के उपरान्त, फ्राँस की कैसी अवनति हुई थी ![47] और, जैसे-जैसे संकट की घड़ी आती गई-फ्राँस स्तब्ध रह गया और प्रथम विश्व-युद्ध में अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन कर चुके फ्राँस ने तो हथियार ही डाल दिया। ऐसी विषम परिस्थितियों मे कोई सकारात्मक मार्ग शेष भी न था। राजनीति एवं प्रशासन के उच्च शिखर पर एक शून्य-सा उत्पन्न हो गया था, क्योंकि, प्रत्येक राजनीतिक दल में पारस्परिक मतभेदों के चलते, अत्यधिक आन्तरिक विभाजन था। अत:, राजनीतिक नेतृत्व की सम्भावनाएँ ही समाप्त हो गई थीं। इस राजनीतिक नेतृत्व के अभाव में, फ्राँस के पास मात्र एक ही विकल्प था, कि, वह ब्रिटिश नीति व समर्थन पर आधारित व आश्रित हो जाए। और, ब्रिटिश राजनीति अल्पज्ञानी एवं वृद्ध नेता द्वारा निर्देशित होने के कारण, सिर्फ संकट व विनाश की ओर ही ले जा सकती थी।[48] अत: इसी कारण म्यूनिख़ की आक्रामक नीति के विरूद्ध इन दोनों राष्ट्रों में एक अनिर्णयपूर्ण उहापोह का वातावरण बन गया था। और, इसी कारणवश, जब फ्राँस के समर्थक व मित्र देश चेकोस्लोवाकिया पर जर्मनी का आधिपत्य हो गया तब, फ्राँस को यह भली-भाँति समझ में आ गया था, कि, यह भी शाँति स्थापित न कर सकेगा, अपितु, इसके विपरीत, जर्मनी की भूँख व निर्भय रूप से प्रसार कार्य में संलग्न रहना और भी बढ़ जाएगा। किंतु, जैसे-जैसे युद्ध सन्निकट हुआ-जहाँ, एक ओर फ्राँस में फैली निराशा में अभूतपूर्व रूप से वृद्धि हुई, वहीं, दूसरी ओर, इंग्लैंड में लोग राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत होकर, युद्ध के लिए तत्पर होने लगे। वे इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे, कि, जर्मनी से युद्ध अपरिहार्य हो गया है।

हिटलर ने अंतत: इंग्लैंड व फ्राँस को दिए आश्वासन के विरूद्ध जब मार्च 1939 ई० में प्राहा (Prague) पर आधिपत्य स्थापित कर लिया तब ब्रिटेन की चैम्बरलेन सरकार ने अपनी नीति को पलटने हेतु अपने-आप को विवश पाया-ब्रिटिश जनता ने खतरे के चिंह स्पष्टत: देख लिए थे ! सोवियत संघ से समझौता करके, हिटलर का मार्ग, पोलैण्ड आक्रमण के लिए अब सुलभ हो गया था। इन परिस्थितियों ने जहाँ द्वितीय विश्व-युद्ध का श्रीगणेश किया, वहीं, दूसरी ओर, इसने फ्राँसीसी जनता के मनोबल पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव डाला। दक्षिणपंथी तो पराजय-भाव से पीड़ित थे ही, फासीवादी सहानुभूति वालों ने शत्रु के पक्षधर होने की तत्परता दिखाई तथा वामपंथियों ने सोवियत

संघ पर आक्रमण (जून 1941 ई०) से पूर्व इस युद्ध को जर्मनी के विरूद्ध 'साम्राज्यवादी युद्ध' तक घोषित कर रखा था। किंतु, इस सोवियत संघ पर आक्रमण के कारण तो यह युद्ध उनके दृष्टिकोण से 'प्रजातंत्र के विरूद्ध' हो गया था। वस्तुतः, वाम व दक्षिण-दोनों ही पंथी अपने वैचारिक स्तर पर अथवा विचारधारात्मक दृष्टिकोण से जितने भी ईमानदार माने जाएँ, किंतु, जहाँ तक फ्राँस के राष्ट्रीय हितों का प्रश्न है, वे इसके आधार पर खरे नहीं उतरे। राष्ट्रीय हितों का परित्याग करने वाले यदि राष्ट्र-प्रेमी व राष्ट्रवादी नहीं होते तो वे राष्ट्र-प्रेमी एवं राष्ट्रवादी कदापि नहीं थे। तथा, फ्राँसीसी परम्पराओं के प्रतिकूल कार्य कर रहे थे।

किन्तु, फिर भी, आवश्यकता पड़ने पर, ब्रिटेन के साथ अपने गठबंधन के प्रति फ्राँस निष्ठावान बना रहा तथा 1939 ई० के सितम्बर माह में युद्ध घोषित हो जाने के बाद पचास लाख लोगों का सेना में भर्ती हो जाना एक महत्वपूर्ण साहसी व राष्ट्र-प्रेम पूर्ण कदम था। यही नहीं, नौ सेना भी अपनी पूर्ण क्षमतानुसार तैयार हो गई। किंतु दो कमियाँ, जो फ्राँसीसी पराजय के लिए उत्तरदायी थीं- वे थीं बख्तरबंद टैंकों का अभाव तथा वायुनासेना की अयोग्यता। जर्मनी ने इन्हीं विशेष विधाओं अथवा सेना के अंगों में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके तथा दोनों के संपृक्त सुनियोजित आक्रमण-तकनीक से युद्ध जीतने की कला का विकास कर लिया था। किंतु, इन सबसे अधिक घातक थी निष्क्रियता की यह भावना, जिसके चलते गैम्लिन के सैन्य-नेतृत्व में, फ्राँसीसी सेनाएँ, जर्मनी की आक्रमणकारी सेनाओं की प्रतीक्षा कर रहीं थीं।

एक अकेला व्यक्ति जो निरन्तर सेना के यंत्रीकरण पर बल दे रहा था और जिससे रूढ़िवादी सैन्य-नेतृत्व असहमत था-वह दि गौल था। उसने अपने युद्ध कौशल, सैन्य-प्रशिक्षण व सामरिक समझ का प्रदर्शन एकोले दि ग्यूरे में कर दिखाया था तथा प्रमाणित किया, कि, सुरक्षात्मक युद्ध सदैव लाभप्रद नहीं होता। उसकी सलाह के अनुसार यदि फ्राँसीसी सेना का यंत्रीकरण व तकनीकी विकास होता, तो सम्भवतः, 1940 ई० में हिटलर की सेनाओं का फ्राँस के रक्षा-कवच में प्रवेश इतना सुलभ न होता। दि गौल की तो यह दृढ़ मान्यता थी, कि, निष्क्रियता एवं सुरक्षात्मकता का अर्थ होता है पराजय एवं हताशा ! अतः सितम्बर 3, 1939 ई० से लेकर मई 1940 ई० तक फ्राँस व ब्रिटेन, हिटलर की शुरूआत की प्रतीक्षा करते रहे-जब वे बेल्जियम व हौलैण्ड की घेराबंदी करके, रौटरडैम विनष्ट करते हुए, फ्राँस में उतर पड़े। मई-जून 1940 ई० के कुछ सप्ताहों में ही यह आक्रमणकारी जर्मन सेना, फ्राँसीसी सेनाओं को पराजित

करती हुई, फ्राँस में प्रविष्ट होने में सफल हो गई। जून 14, 1940 ई० में तो पेरिस भी विजित हो गया ! सरकार व प्रशासन तक पराजय, हताशा एवं उलझन ग्रस्त हो, मात्र टू 'वर्स से बार्दो स्थानांतरित हो गई। एकमात्र गौल ने ही प्रदर्शित एवं प्रमाणित किया, कि, इन प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आक्रामकता ही सही तकनीक है। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विन्सट्न चर्चिल ने फ्राँस के उत्साह-वर्धन हेतु टू 'वर्स की विमान-यात्रा की एवं युद्ध में संलग्न रहने व ब्रिटेन के साथ सहयोग से युद्ध करने का आहवान किया। विदा होने से पूर्व चर्चिल ने दि गौल को 'फ्राँस का भविष्य' सम्बोधित कर उसके प्रति सम्मान भी प्रकट किया

इन परिस्थितियों में तृतीय गणतंत्र की अंतिम सरकार ढ़ह गई। रेनौं ने त्याग-पत्र सौंपकर, राष्ट्रपति लेब्रुन को सलाह दी कि वे पेटेन से विमर्श कर लें। पेटेन एवं वेगैन्ड ने तुरन्त हिटलर के साथ युद्ध-विराम कर लिया (जून 16, 1940 ई०)। इसी के दो दिन पश्चात्, दि गौल को विमान द्वारा बौर्द्यू से ब्रिटेन पर्हुचाया गया। वहाँ से उसका संदेश अपने देशवासियों के प्रति प्रसारित हुआ, कि, जो भी फ्रांसीसी युद्ध में संलग्न रहने का इच्छुक है-उन्हें वह सदैव नेतृत्व व सहायता प्रदान करता रहेगा। जून 21, 1940 ई० को फ्राँस के साथ युद्ध-विराम संधि पर उसी स्थल पर हस्ताक्षर हुआ, जहाँ जर्मनी को अपमानित संधि पर 1918 ई० में हस्ताक्षर करवाए गए थे-सभी राष्ट्र-प्रेमी फ्राँसीसी कराह उठे ! उधर, जब हिटलर ने ब्रिटेन को भी युद्ध-विराम का प्रस्ताव प्रेषित किया तो उसके प्रत्युत्तर में, ब्रिटेन ने दि गौल को स्वतंत्र फ्राँस के संपूर्ण भाग व फ्राँसीसियों के नेता के रूप में मान्यता प्रदान कर दी ! किंतु, दूसरी ओर, फ्राँस की संसद ने हिटलर के साथ युद्ध-विराम की संधि की पुष्टि कर दी एवं 569 सदस्यों ने तो अपने मत द्वारा पेटेन को समस्त अधिकार सौंप दिए ! इस प्रकार से विचि शासन को वैधानिक अधिकार प्राप्त हो गया। इस काल की एकमात्र विशेषता थी उसकी सुस्पष्ट नीति, किंतु, यह नीति अपनी स्पष्टता विस्तृत होते ही युद्ध के वातावरण में खो बैठी ! फिर भी, जब जर्मनी से युद्ध की विभीषिका ब्रिटेन, रूस एवं संयुक्त राज्य अमरीका ने झेली, विचि शासन ने कम से कम, फ्राँस को संरक्षित तो रखा ही, भले ही, जर्मनी के साथ शर्मनाक एवं अपमानजनक युद्ध-विराम के ही द्वारा। अतः उनकी नीति आत्म-सम्मान की न सही, किंतु, आत्म-संरक्षण की तो थी ही।

आत्म-सम्मान की नीति का अनुसरण करने वाले दि गौल के अनुयायी थे, जिनका आधार अब ब्रिटेन में था ; वे सीमान्त ग्राम्यवासी, जो एलाइड सैनिकों

को सुरक्षा प्रदान कर रहे थे अपने जीवन का मोह त्याग किए हुए थे; वे फ्राँसीसी लोग, जो बावजूद जर्मनी के उत्पीड़न के, अपना प्रतिरोध बनाए रखने में सफल रहे ; और वे फ्राँसीसी राष्ट्रवादी भी जो चैनल पार कर के, ब्रिटेन जैसे अन्तिम यूरोपीय दुर्ग में सुरक्षा प्राप्त कर रहे थे। और ये सभी तत्व उस स्वतंत्रता के दिवस का आधार तैयार कर रहे थे। जून 6,1944 ई० को जर्मनी की पराजय हुई तथा अगस्त 23, 1944 ई० को एलाइज़ की सेनाएँ पेरिस में प्रविष्ट हो गई थीं एवं फ्राँस शीघ्र ही स्वतंत्र भी हो गया !

□

[14]

द्वितीय विश्व-युद्धोत्तर काल-
चतुर्थ फ्राँसीसी गणतंत्र की स्थापना व अन्त

1940 ई० में नात्सियों की सशास्त्र टुकड़ियों के समक्ष परेशान तृतीय फ्राँसीसी गणतंत्र दम तोड़ चुका था। द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान फ्राँस नात्सी-समर्थक व नात्सी-विरोधी खेमों में विभक्त रहा। प्रथम की सरकार फ्राँस में कायम थी तो दूसरे की ग्रेट ब्रिटेन में ! जो फ्राँसीसी सरकार का समर्थन कर रहे थे, वे निराशावादी तथा पलायनवादी माने जाते थे तथा, जो विद्रोह एवं तोड़-फोड़ की गतिविधियों में संलग्न थे, वे क्राँतिकारी व राष्ट्रवादी माने जाते थे। अतः फ्राँसीसी समाज में विभाजन स्पष्ट था। जब फ्राँस नात्सियों से मुक्त हो गया, तब फ्राँसीसी दि गौल जैसे चुम्बकीय व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द एकत्रित होने लगे, जिसका नाम ही एक स्वतंत्र व सुदृढ़ सरकार की स्थापना का पर्याय हो गया था। नात्सियों के पलायन के बाद उनके समर्थकों को दण्डित और अपमानित किया गया और यह प्रतिशोध स्वाभाविक भी था। फ्राँस के कुछ क्षेत्रों में, स्थानीय प्रतिरोधी गुटों ने जर्मन पलायन के बाद-अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। इन गुटों में साम्यवादी प्रमुख रूप से उपस्थित थे किंतु, शीघ्र ही, गौल समर्थकों का प्रभुत्व स्थापित व मान्य हो गया।

एल्जियर्स में दि गौल द्वारा स्थापित निर्वासित सरकार 1944 ई० में वापस पेरिस आ गई। और यह अगले चौदह माह तक सत्ता में रही। इसी सरकार ने अक्टूबर 1945 ई० में एक जनमत कराया, जिसमें पहली बार महिलाओं को भी मताधिकार प्राप्त हुआ था और छियान्बे प्रतिशत (96%) मतदाताओं ने एक नवीन संविधान सभा की माँग करते हुए, तृतीय फ्राँसीसी गणतंत्र को अस्वीकार कर दिया। इस संविधान सभा में साम्यवादियों का बहुमत हो गया था। साम्यवादियों को पच्चीस प्रतिशत (25%) तथा समाजवादियों को तेईस प्रतिशत (23%) सीटें प्राप्त हुईं। एक नए राजनीतिक दल एम. आर. पी-'मूवमेंट रिपब्लिक पोप्यूल्येर' जो, दि गौल के दृष्टिकोण के सर्वाधिक निकट थी-को चौबीस प्रतिशत (24%)

मत प्राप्त हुए।

जब संविधान सभा की बैठक हुई, दि गौल अन्तरिम सरकार के राष्ट्रपति बन गए। किंतु, वे अपने अनुभव, स्वभाव व राजनीतिक दृष्टिकोण के चलते, इस भूमिका के लिए तैयार नहीं थे। सभा में सबसे बड़े दल होने के बावजूद भी, दि गौल ने उन्हें सरकार में सम्मिलित नहीं किया, अतः साम्यवादी-समाजवादी गठबंधन से सरकार का निरन्तर टकराव होता रहा। स्थिति को और विस्फोटक बना दिया, स्वयं दि गौल व उनके अपने विदेश मंत्री जौर्ज्स बिदौल्त के मध्य के विबाद और मतभेद ने ! दि गौल एक सशक्त कार्यकारिणी वाली सरकार के इच्छुक थे किंतु, साम्यवादी व समाजवादी गठबंधन संसद के प्रभुत्व को स्थापित करने के इच्छुक व पक्षधर थे। तथा उनके विचारानुसार, राष्ट्रीय नीति विभिन्न राजनीतिक दलों के मतभेदों के समझौतों व मतैक्यों के रूप में-संसद में उभर कर आए व निर्धारित हो ! जनवरी 1946 ई० में जब दि गौल को अपनी दाल गलती नजर नहीं आई तो उसने त्याग-पत्र देना ही श्रेयस्कर समझा और इसके कुछ माह पश्चात् मताधिकारियों ने एक वामपंथी संविधान भी अस्वीकार कर दिया, जिसने राष्ट्रपति को संसद की मात्र एक कठपुतली के रूप में परिवर्तित करने का प्रावधान कर दिया था ! अतः जून 1946 ई० में एक नई संविधान-सभा निर्वाचित हुई। और इस बार साम्यवादी एवं समाजवादी पराजित हुए तथा एम. आर. पी. सबसे बड़े राजनीतिक दल के रूप में उभरा ! किंतु, जो संविधान अक्टूबर 1946 ई० को पारित हुआ, उसमें राष्ट्रपति तुलनात्मक रूप से क्षीण व संसद शक्तिशाली निर्धारित हुई।

अतः दिसम्बर 1946 ई० मं चतुर्थ गणतंत्र औपचारिक रूप से निर्मित हुआ तथा जनवरी 1947 ई० में राष्ट्रपति के रूप में, समाजवादी विन्सेन्ट औरि 'ओल को चुना गया। उसने अपने राजनीतिक अनुभव व प्रशिक्षण के आधार पर, प्रतयक्ष एवं परोक्ष रूप से, अपने समस्त काल में (1947 से 1954 ई० तक) एक अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करी, किंतु फिर भी, वह स्थायित्व प्रदान नहीं कर सका। उसका उत्तराधिकारी रेने् कौटी तो और अप्रभावी साबित हुआ। तथा फ्रॉंसीसी आदतानुसार, राजनीतिक आस्थिरता भी बनी रही। दिसम्बर 1946 ई० से जून 1951 ई० के मध्य आठ मंत्रालयों ने बारी-बारी से दायित्व सम्भाला था और प्रत्येक की अवधि औसतन सात माह थी। किंतु, सौभाग्यवश, विदेश मंत्रालय दो एम. आर. पी. मंत्रियों-जौर्ज्स बिदौल्त व रौबर्ट स्कूमान् के अधीन रहा।[49]

1947 ई० में, चतुर्थ गणतंत्र के प्रारम्भिक दिनों में, एम. आर. पी., समाजवादियों एवं साम्यवादियों ने सत्ता में भगीदारी करी। किंतु, मुद्रास्फीति के कारण हुई राष्ट्र-व्यापी हड़तालों का वैचारिक समर्थन साम्यवादियों ने किया। समाजवादी प्रधानमंत्री पौल रैमेदियर ने एक अजीबो-गरीब सा कदम उठाया। स्वयं त्याग-पत्र न सौंपकर, उसने साम्यवादी मंत्रियों को पदच्युत कर दिया। अतः अब एम. आर. पी. व समाजवादी एक ओर तथा साम्यवादी दूसरी ओर हो गए। और यह विवाद मारशैल प्लान जारी होने के समय 1947 ई० के लगभग अन्त में, अपने निर्णायक दौर में पहुँचा, क्योंकि, फ्राँसीसी साम्यवादियों ने संयुक्त राज्य अमेरिका के स्थान पर सोवियत संघ से सहायता माँगे जाने पर जोर दिया। किंतु, आम नागरिक भी इस समय यह समझ रहा था, कि, आर्थिक सहायता आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है और इस प्रकार की सहायता मात्र अमरीका से ही पूर्ण हो सकती है। अतः वामपंथियों के प्रचार व हड़तालों के बावजूद भी, मतदाता का रूख दक्षिणपंथी हो गया और एम. आर. पी. एवं उत्कट् समाजवादियों के ही प्रधानमंत्री इन पदों पर आसीन हो सके।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, फ्राँस के तीनों प्रमुख राजनीतिक दलों के पारस्परिक मतभेद कटु होते चले गए और आर्थिक अस्थिरता ने राजनीति को और अधिक अस्थिर कर दिया। जैसे ही 1951 ई० के मध्य में नवीन चुनावों का समय निकट आ रहा था, मध्यम-मार्गी राजनीतिक दल एक ही निर्णय पर पहुँच रहे थे, कि, जहाँ एक ओर, वामपंथियों को सत्ता के बाहर रखने का प्रयास करना होगा, वहीं, दूसरी ओर, धुर-दक्षिण-पंथी गौलवादियों को भी सत्ता मे नहीं आने देना है, अतः एक तृतीय शक्ति के रूप में, एम. आर. पी., समाजवादियों एवं उत्कट वादियों का संयुक्त गठबंधन बासठ दशमलव पाँच प्रतिशत (62.5%) सीटें प्राप्तकर के, सत्ता में आ गया ! जहाँ गौल-समर्थकों को 19.6% सीटें प्राप्त हुईं, वहीं साम्यवादियों को 17.8% सीटें प्राप्त हुई।

1952 ई० के पश्चात् भी दक्षिणपंथ की ओर मतदाताओं का झुकाव जारी रहा तथा अनेक नए प्रधानमंत्रियों को सामने आने का अवसर प्राप्त हुआ। किंतु, 1954 ई० तक इस अस्थिरता के बावजूद भी विदेश मंत्रालय में स्थायित्व पूर्व-वर्णित मंत्रियों के कारण बना रहा। साथ ही, जीन मोनेट के अनुभवी हाथों में आने के कारण, 1952 से 1954 ई० तक आर्थिक मंत्रालय, अतः अर्थ-तंत्र में भी स्थायित्व दृष्टिगोचर होने लगा !

नवम्बर 1955 ई० में अल्जीरिया के औपनिवेशिक युद्ध के प्रश्न पर

चतुर्थ गणतंत्र टूट के कगार पर पहुँच गया। सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित हो गया एवं राष्ट्रीय-सभा विघटित कर दी गयी। उसके पश्चात् हुए चुनावों ने भी न तो समकालीन राजनीति को स्थिरता और न ही गरिमा प्रदान की। हाँ, कुछ उपलब्धियों तो हुईं - दिसम्बर 1956 ई० में जर्मनी को सार-क्षेत्र वापस सौंपकर, उसके साथ सीमा-विवाद का सफलापूर्वक अन्त किया। तथा, जनवरी 1957 ई० में चतुर्थ गणतंत्र ने यूरोप साझाा बाजार में सम्मिलित होने की कार्यवाही का श्रीगणेश किया। फ्राँस में आर्थिक व सामाजिक सुधारों का सिलसिला भी इसी काल में प्रारम्भ हुआ था।

हाँलाकि फ्राँस ने मार्च 1956 ई० में उत्तरी अफ्रीका के अपने प्रभुत्व-वाले कुछ क्षेत्रों - जैसे मोरक्को एवं ट्यूनेसिया को स्वतंत्र कर दिया था, वैसे ही जून माह में, अपने अन्य अफ्रीकी उपनिवेशों की भावी स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुए, एक सीमा तक, स्वायस्त-शासी बना दिया था, किन्तु, फिर भी, एल्जीरिया के विवाद का हल नहीं हो पाया और वहाँ फ्राँस विरोधी आतंकवाद ने घर बना लिया, जिसकी गूँज फ्राँस तक सुनाई देने लगी। जैसे-जैसे आतंकवाद का प्रसार हुआ, वैसे-वैसे फ्राँस द्वारा उसे नियंत्रित करने के लिए और अधिक सेनाएँ भेजी गईं और फ्राँसीसी सैनिकों की हत्याओं एवं युद्धों-संघर्षों में मृत्यु ने गृह-संसद में तूफान को जंम दे दिया और सरकार की अलोकप्रियता एवं निन्दा बढ़ती ही गई। 1957 ई० की शीत-ऋतु में तो एक अवसर ऐसा भी आया, कि, पर्याप्त समर्थन के अभाव में, कोई राजनीतिक दल सरकार नहीं बना सका और पाँच सप्ताहों तक फ्राँस बिना मंत्रीमंडलीय सरकार के रहा। इसी प्रकार, अप्रैल 1958 ई० में भी अपदस्थ सरकार के स्थान पर दूसरी सरकार के गठन में पूरा एक माह लग गया था।

कोई भी प्रधानमंत्री इस औपनिवेशिक युद्ध के चलते, अपनी लोकप्रियता नहीं बना सकता था। किंतु, दूसरी ओर, यदि फ्राँस अल्जीरिया पर अपना प्रभुत्व समाप्त कर देता, तो वहाँ के विदेशी (फ्राँसीसी व यूरोपिय) 'कोलोन्' एवं सेना व सैन्य-नेतृत्व स्पष्टतः नाराज व असन्तुष्ट हो जाते किंतु, संयोगवश, ऐसा एक व्यक्ति फ्राँस का तत्कालीन प्रधानमंत्री पियरे् पिफ़्लिमलिन था, जो अल्जीरिया से फ्राँसीसी सेनाओं की वापसी का पक्षधर था। अतः उसके सत्ता में आते ही, गृह-युद्ध के बादल फ्राँसीसी आकाश पर मँडराने लगे। उसे मई 13, 1958 ई० को अपना मंत्रीमंडल सभा के समक्ष प्रस्तुत करना था। दि गौल ने फ्राँस को इस दुष्चक्र से बचाने की धोषणा की एवं राष्ट्रपति रेने कोटी ने पिफ़्लिमलिन

का त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया और दि गौल को निमंत्रित किया। दि गौल ने छह माह तक आज्ञप्ति का अधिकार माँगने के साथ, यह शर्त रखी, कि, इस छह माह की अवधि के पश्चात् एक नवीन संविधान निर्मित करके, राष्ट्र के सम्मुख जनमत-संग्रह के लिए प्रस्तुत किया जाए।

दि गौल ने अपने प्रधानमंत्रित्व के छह माह के काल में राष्ट्र में पूरी तरह से आवश्यक सुधार पारित किए व समकालीन अवश्यकताओं के अनुरूप एक संविधान का भी प्ररूप तैयार किया, जो सितम्बर 1958 ई० को जनमत हेतु प्रस्तुत किया गया एवं जिसे अस्सी प्रतिशत (80%) मतदाताओं के बहुमत ने स्वीकार भी कर लिया। इस नवीन संविधान के अनुसार संसदीय शक्ति प्रधानमंत्री के हाथों में स्थानांतरित कर दी गई तथा प्रधान-मंत्री नियुक्त करने का अधिकार राष्ट्रपति को प्रदान किया गया। राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि के रूप में स्थानीय निकायों द्वारा निर्वाचन का प्रावधान था। इन सुधारों का अभिप्राय संसद की तुलना में, राष्ट्रपति को अधिक अधिकार प्रदान करना का। इस संविधान के जनमत द्वारा स्वीकार किए जाने के बाद, दि गौल था निर्वाचन नए राष्ट्रपति के रूप में हो गया-और उसने जनवरी 8, 1959 ई० में सत्ता ग्रहण करी। इस प्रकार, चतुर्थ गणतंत्र का अन्त एवं पंचम गणतंत्र का श्रीगणेश हुआ !

□

[15]

पंचम गणतंत्र के आधीन फ्राँस

वस्तुत: चतुर्थ गणतंत्र में ऐसे व्यक्तित्वों का बाहुल्य रहा था, जिनका राजनीतिक चरित्र, तृतीय गणतंत्र के दौरान निर्मित हुआ था। किंतु, पंचम गणतंत्र के सरकार में ऐसे व्यक्ति एवं व्यक्तित्व सम्मिलित थे, जिनके प्रशासनिक दृष्टिकोण पूर्ववर्ती प्रशासकों से पूर्णत: भिन्न थे। अत: पंचम गणतंत्र को स्थापित करने वाली गौलवादी विजय ने फ्राँस में मूलभूत परिवर्तनों की प्रक्रिया को जंम दिया। और, सबसे बड़ा परिवर्तन तो था राष्ट्रीपति एवं संसदीय सदस्यों के मध्य विवादों का अन्त।[50] राष्ट्रीय विश्वास की इसी प्रकार 1961 ई० में पुन: अभिव्यक्ति हुई, जब गौल समर्थकों को पचहत्तर प्रतिशत मत प्राप्त हुए। उनके विरोध में चौबीस प्रतिशत मत साम्यवाद के समर्थकों के थे।

पंचम गणतंत्र के नवीन संवैधानिक नियमों के फलस्वरूप, पश्चिमी व भूमध्यवर्ती अफ्रीका के पंद्रह राज्यों को स्वायत्त-शासित क्षेत्रों में परिवर्तित कर दिया गया। मैडागास्कर को भी स्वायत्त-शासन प्रदान किया गया। दि गौल तो इन्हें स्वतंत्रता प्रदान करने को तत्पर था, जिसके लिए तब मात्र गुइन्या (Guinea) ही तैयार हुआ। इसी प्रकार, उसने अल्जीरिया में हो रही आक्रामकता को समाप्त करने के भी अनेक प्रयास किए। इसीके अन्तर्गत सितम्बर 1959 ई० में, फ्राँसीसी राष्ट्रपति ने उन्हें आत्म - निर्धारण का अधिकार प्रदान कर दिया। कोलोन्स, जो कि, दि गौल को अपना पक्षधर मान रहे थे, निराशा में उसके विरोधी हो गए। जनवरी 1961 ई० में हुए जनमत-संग्रह में दि गौल को फ्राँसीसियों व अल्जीरियाई दोनों का समर्थन, इस नीति-विशेष के लिए प्राप्त हो गया। इसी बीच, अप्रैल 21, 1961 ई० को अल्जीरिया में सैनिक विद्रोह ने सत्ता पलट दी। अंतत: एवियान में मार्च 18, 1962 ई० में युद्ध विराम द्वारा आठ - वर्षीय औपनिवेशिक युद्ध का अन्त हुआ और इस युद्ध-विराम का नब्बे प्रतिशत फ्राँसीसियों ने अप्रैल 8, 1992 ई० के जनमत - संग्रह में समर्थन किया। तथा जुलाई 5, 1962 ई० को अल्जीरिया स्वतंत्र हुआ व वहाँ से लगभग नौ लाख यूरोपीय मूल के निवासी 1962 व 1963 ई० के मध्य, फ्राँस आकर बस गए। तथा, इस प्रकार, युद्धोत्तर काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या का अन्त हुआ।

अक्टूबर 1962 ई० में, दि गौल ने एक संवैधानिक संशोधन प्रस्तुत किया, जिसके प्रावधान के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन भी प्रत्यक्ष रूप से मतदाताओं द्वारा किया जाए। यह प्रस्ताव भी पारित हो गया। अतः 1960 के दशक में हम पाते हैं, कि, जनमत के समर्थन वाले राष्ट्रपति को एक आज्ञाकारी मंत्रिमंडल सहायकों के दल के रूप में प्राप्त हो गया, जिसका नेतृत्व प्रधामंत्री मिचेल देब्रे कर रहे थे। अतः आन्तरिक व बाह्य सभी नीतियाँ, स्वयं दि गौल द्वारा निर्धारित थीं। 1962 के बसंत में उसका स्थान जौर्ज्स पौम्पिद्यू ने ले लिया, जो प्रधानमंत्री जैसे महत्वपूर्ण दायित्व के लिए पूर्णतः अनुभवहीन था। फ्राँस के अनेक सांसदों, समाचारपत्रों व पत्रिकाओं ने इसे, दि गौल के अधिनायकवाद के रूप में देखा व उसकी भर्त्सना की, किंतु, जैसा कि ऊपर स्पष्ट हो चुका है, जनमत-संग्रह में दि गौल विजयी रहे। यही नहीं, नई संसद के गठन हेतु आयोजित चुनावों में भी, बावजूद जबर्दस्त विरोध के, दि गौल के दल को संसद की 482 में से 267 सीटें प्राप्त हो गईं। साठ के दशक के मध्य में, दि गौल का सबसे बड़ा शत्रु था समाजवादी दल का सांसद एवं मार्सील का सुधारवादी नगर-प्रमुख गेस्टन डेफ्रे, जो नाटो गुट का समर्थक भी था। उसके नेतृत्व में समाजवादियों ने गौल के विरूद्ध नाटों को नष्ट करने, तथा, निर्वाचित गणतंत्र को 'निर्वाचित राजतंत्र' में परिवर्तित करने के आरोप लगाए। इन्हीं सबके परिणामस्वरूप, 1965 ई0 के राष्ट्रपति चुनावों में समाजवादी फ्रैंकोइस मित्राँ के विरूद्ध, वह अति बारीक बहुमत से विजयी हो सका - उसे मात्र पचपन प्रतिशत मत प्राप्त हो सके थे। इसी प्रकार, 1967 ई० के आम-चुनावों में भी उसके समर्थकों व अनुयायियों को संसद में क्षीण बहुमत ही प्राप्त हो सका।

किंतु, फ्राँसीसी समाज के अनेक क्षेत्रों में असंतोष में निरन्तर वृद्धि होती रही। मई 1968 ई० में तो अनेक फैक्ट्रियों पर श्रमिकों का एवं निश्वविद्यालयों पर छात्रों का अधिकार हो गया। विश्वविद्यालयों में क्रान्तिकारी समितियों का गठन करके, संपूर्ण फ्राँसीसी समाज को मूलतः एवं पूर्णतः परिवर्तित कर देने की माँग उठ रही थी। और, जहाँ तक, औद्योगिक श्रमिक वर्ग का प्रश्न था, वे अधिक वेतन, कम घंटे का कार्य, तथा अपने निर्णयों में श्रमिक-भागीदारी की माँग कर रहे थे जबकि, फ्राँस की नौकरशाही उनकी वैधानिक माँगों का पूर्णतः अनदेखा करता रही। दि गौल ने अपनी चिर-परिचित शैली में उत्तर देते हुए एक जनमत-संग्रह की घोषणा कर दी; ताकि उसके मौलिक सुधारों को कार्यान्वित करने के लिए और अधिक शक्ति प्राप्त हो सके तथा, ऐसा न होने

पर, पद-त्यागने की चेतावनी भी दे दी !

इधर हड़तालें तथा हड़तालियों एवं गौल-समर्थकों; सरकारी कर्मचारियों के मध्य सड़क मुठभेड़ें आम बात हो गईं। अन्ततः, परेशान दि गौल ने संसद भंग करके, चुनावों की घोषणा करना ही श्रेयस्कर समझा। किंतु, इस अशाँति ने गौल-समर्थकों की ही सहायता की। क्योंकि, असुरक्षा व सम्पत्ति के भय से लोग साम्यवादी-विरोधी व गौल के पक्षधर होने लगे ! अतः जून 1968 के चुनावों में, जहाँ दि गौल की यू. डी. आर. पार्टी को 294 सीटों के साथ पूर्ण बहुमत प्राप्त हो सका; वहीं, उसके सहयोगी दलों को कुल मिलाकर 487 में से 357 सीटों पर अधिकार प्राप्त हुआ; साम्यवादियों की सीटें 73 से घटकर 34; तथा, मित्राँ के वामपंथी गठबंधन की संख्या 118 से घटकर 57 रह गई थी। किंतु, इस बहुमत से आंशिक रूप से संतुष्ट हुए, दि गौल ने पाँचवें जनमत-संग्रह की घोषणा अप्रैल 1969 ई० में कर दी, जिसमें अपने लिए अधिक अधिकारों के साथ, संसद के उच्च सदन की शक्ति क्षीण करने का प्रावधान भी सम्मिलित था। किंतु, अपने स्वभाव के अनुसार, बहुमत प्राप्त न करने पर त्याग-पत्र देने की धमकी पुनः थी। किंतु जनमत में त्रेपन प्रतिशत (53%) मतदाताओं ने उसे अस्वीकार कर दिया। अतः अपने वचन के प्रति निष्ठा-व्यक्त करते हुए, दि गौल ने राष्ट्रपति का पद भी त्याग दिया ! अतः इस प्रकार, एक अनावश्यक से शक्ति-परीक्षण में उसने राजनीतिक आत्म-हत्या कर डाली ! जून 1969 ई० के राष्ट्रपति चुनाव में पूर्व प्रधानमंत्री जौर्ज्स पौम्पीद्यू पंचम गणतंत्र के द्वितीय राष्ट्रपति निर्वाचित हो गए !

□

संदर्भ व पाद टिप्पणी :
(References and Foot-notes) :

1. Marie-Madeleine Martin, **The Making of France,** Eng. tr. by Barbara & Robert North; Eyre & Spottiswoode, London, 1951, p. 17.
   (The original book **"Histoire de l'unite Francaise,"** was published in 1948 in Paris).
2. Georges Poisson, **Les Aryens,** Paris, 1934.
3. Marie-M. Martin, Op. Cit., p. 17.
4. Camille Julian **Histoire de la Gaule,** t. I & II, Paris, 1908 Cited in Marie-Martin, pp. 18-19.
5. Lucien Romier, **A History of France** (Translated & Completed by A. L. Rowse), Macmillan, 1953; p. 21. (The book as published in France, under the title, **L' Ancienne France : des Origines a la Revolution)**
6. Ibid, p. 22.
7. Ibid, p. 23.
8. Camille Julian, Op. Cit.
9. Marie-M. Martin; Op. Cit.; p. 24.
10. Ibid; p. 28.
11. Lucien Romier, Op. Cit., pp. 47-49.
12. Ibid, p. 50.
13. Ibid, pp. 56-57.
14. Marie M. Martin; Op. Cit; p. 77.
15. Ibid, p. 80.
16. Ibid, p. 82.
17. Ibid, pp. 83-85.
18. Ibid, p. 89.
19. Lucien Romier (Eng. Tr. by A.L. Rowse), Op. Cit., p. 168.

20. Marie-Madeleine Martin, **The Making of France**, (Eng. Tr. by Barbara & Robert North), Eyre & Spottis woode, London, 1951; p. 133.

21. Lucien Romier, Op. Cit, p. 218

22. Ibid, p. 243.

23. Ibid, p. 254.

24. Ibid, p. 271.

25. Ibid, p. 301.

26. James Edgar Swaine, **A History of World Civilization**, McGraw Hill, New York & London, 1947; p. 471.

27. Denis Richards, **An Illustrated History of Modern Europe**, Longman, 1977, p. 16.

28. David Thomson, **Europe Since Napoleon**, Penguin Books, 1975 (Edn.), pp. 24-27.

29. Scbevill, **History of Europe, From the Reformation to the Present Day**, Bell (Year Etc. not given); p. 371-372.

30. Lucien Romier, Op. Cit., p. 331.

31. H.A.L. Fisher, **Napoleon**, OUP, Delhi, 1979, p. 69

32. Ibid.

33. Ibid, p. 80.

34. College Level World History, Part-2 (Western Civilization) prepared by the Social Science Editorial Staff, Monarch Press, Inc., New York, 1963, p. 28.

35. Ibid, p. 28.

36. David Thomson Op. Cit., pp. 62-63; H.A.L. Fisher; Op. Cit., pp. 128-140.

37. David Thomson Op. Cit; pp. 62-63; H.A.L. Fisher; Op. Cit. pp. 159-182.

38. David Thomson Op. Cit. p. 62.

40. Denis Richards, Op. Cit; p. 53; David Thomson, Op. Cit. pp. 73-75; Scbevill, Op. Cit; pp. 418-419.

40. Prof. L. Mukerjee, Notes on Modern Europe and the World,

pp. 274-276.

41. Lucien Romier, Op. Cit., p. 450.

42. Ibid, p. 451.

43. Ibid, p. 452.

44. Ibid.

45. Ibid, p. 458.

46. A.J.P. Taylor, **Origins of the Second World War**, Penguin,

47. Lucien Romier, Op. Cit, p. 471.

48. Ibid.

49. Walter C. Langsam & Otis C. Mitchell, **The World Since 1919**, Surject Publications, 1971, p. 568.

50. Ibid, p. 574.

संदर्भ पुस्तक सूची (Bibliography) :

1. A. Cobban, **A History of Modern France**, London, 1962.
2. A. Cobban, **Aspects of the French Revolution**, New York, 1970.
3. A. Cobban, **The Nation-State and National Self-Determi nation**, Collins, 1969.
4. A. J. Grant, **A History of Europe**, 3 Parts, Longman, 1930.
5. A.J.P. Taylor, **Struggle for Mastery in Europe, 1848-1918**, New York, 1954.
6. A.J.P. Taylor, **The Origins of the Second World War**, Penguin, 1961.
7. A.J.P. Taylor, **Europe : Grandeur And Decline**, Penguin, 1967.
8. A. L. Gerard, **Napoleon III**, New York, 1958.
9. Andre Fontaine, **History of the Cold War**, New York, 1970-71, 2 Vols.
10. A. Siegfired, **France, A Study in Nationality**, New Haven, 1930.
11. **The Cambridge Modern History**, 14 Volumes.
12. Camille Julian, **Histoire de la Gaul**, I & II, Paris, 1908.
13. C. G. Starr, **A History of the Ancient World**, New York, 1964.
14. Charles H. Haskins, **The Normans in European History** Boston, 1915.
15. C. J. H. Hayes, **Modern Europe**, 2 Volumes, Delhi, 1977.
16. **College Level World History** Pts. I & II, Prepared by The Social Science Editorial Staff, New York, 1963.
17. C. V. Wedgewood, **Richelieu and the French Monarchy**, New York, 1950.
18. C. W. Hollister, **Medieval Europe : A Short History**, New York, 1964.
19. David Ogg, **Europe of the Ancien Regime**, Fontana, 1965.
20. David Thomson, **Europe Since Napoleon**, Penguin, 1975.
21. Denis Richards, **An Illustrated History of Modern Europe** Longman, 1977.
22. D. W. Brogan, **The Development of Modern France, 1870-**

1939, Harrish Hamilton, 1940.

23. **Economic History of Europe,** ed. Carlo M. Cipolla, Fontana, Six Volumes.
24. E. H. Carr, **International Relations Between Two World Wars,** 1947.
25. E. Lipson, **Europe in the Nineteenth and Twentieth Centuries,** E.L.B.S., 1960.
26. E.M. Burns & P. L. Ralph, **World Civilizations,** 2. Vols, New York, 1974.
27. F.A. Ogg & W.R. Sharp, **Economic Development of Modern Europe,** New York, 1929.
28. F.A. Simpson, **The Rise of Louis Napoleon,** New York, 1925.
29. F. B. Artz, **The Enlightenment in France,** Ohio, 1968.
30. F. M. Robertson ed. **Origins of the Second World War,** New York, 1970.
31. Funck-Brentano, **Les Origines,** or **The Eariest Times,** Eng. Translation by E.F. Buckley, London, 1927.
32. Funck-Brentano, **The Old Regime in France,** Eng. Trans lation by Herbert Wilson, London.
33. Francois Louis G., **Frankish Institutions Under Charlemagne,** Providence, 1968.
34. G. B. Adams, **Growth of the French Nation,** 1896.
35. G. M. Wrong, **The Rise and Fall of New France,** 2 Volumes, New York, 1928.
36. G. P. Gooch, **History of Modern Europe,** 1878-1919, London, 1939.
37. George, Lefebvre, **The Coming of the French Revolution,** Princeton 1947.
38. George Lichtheim, **Imperialism,** Pelican, 1971.
39. George Poisson, **Les Aryens,** Paris, 1934.
40. George Rude, **Revolutionary Europe,** Fontana, 1964.
41. G.R. Elton, **Reformation Europe,** Fontana, 1963.
42. H.A.L. Fisher, **History of Europe.**
43. H.A.L. Fisher, **Napoleon,** OUP, 1979.
44. H.A.L. Fisher, **Bonapartism.**
45. Herbert Heaton, **Economic History of Europe,** New York,

1936.
46. H.S. Lucas, **The Renaissance and the Reformation**, New York, 1930.
47. J.A. Hobson, **Imperialism : A Study**, Allen & Unwin, 1948 (revised edition).
48. J.A.O. Larsen, **Representative Government in Greek and Roman History.**
49. J.B. Bury, **The Invasion of Europe by the Barbarians**, London, 1928.
50. Jacques Bainville, **History of France**, 1926.
51. James E. Swaine, **A History of World Civilization**, London 1947.
52. J. Lough, **An Introduction To Eighteenth Century France**, London, 1960.
53. J.M. Thompson, **Louis Napoleon and the Second Empire**, Oxford, 1954.
54. J.M. Thompson, **Robespierre and the French Revolution**, New York, 1962.
55. J. P. Plamenatz, **The Revolutionary Movement in France, 1815-1871**, London, 1952.
56. J.P.T. Bury, **France, 1814-1940**, London, 1959.
57. L.B. Packard, **The Commercial Revolution**, New York, 1927.
58. L.C.B. Seaman, **From Vienna to Versailles**, Metheun & Co. Ltd.
59. Leo Gershoy, **The French Revolution**, New York, 1932.
60. Livius (Titus), **The History of Rome**, 2 Vols. Oxford, 1844.
61. L.R. Gottschalk, **The Era of French Revolution**, Princeton, 1947.
62. Lucien Romier, **A History of France**, Translated by A.L. Rowse, MacMillan, 1953.
63. Margaret Deanesley, **A History of Early Medieval Europe**, New York, 1960.
64. Marie-Madeleine Martin, **The Making of France**, Eng. Translation by Barbara and Roberth North, London, 1951.
65. Mary A. Hollings, **Europe in Renaissance and Reformation 1453-1660**, Pelican.

66. R. B. Mowat, **A History of European Diplomacy, 1914-1925,** Calcutta, 1961.
67. Richard Koebner, **Empire,** Cambridge University Press, 1966.
68. Robert Fawtier, **The Capetian Kings of France,** New York, 1960.
69. Robert Heilbroner, **The Future As History,** New York, 1959.
70. Ronald Syme, **The Roman Revolution,** OUP, 1939.
71. R.R. Palmer, **The World of the French Revolution,** 1970.
72. S.B. Fay, **The Origins of the World War,** New York.
73. Scbevill, **History of Europe from the Reformation to the Present Day,** Bell.
74. Walter C. Langsam & Otis C. Mitchell, **The World Since 1919,** Delhi, 1971.
75. Walter E. Kaegi, **Byzantium and the Decline of Rome,** Princeton, 1968.
76. W. C. Bank, **Origins of the Medieval World,** Stanford, 1958.
77. W.F. Church, **The Influence of the Enlightenment on the French Revolution,** New York, 1964.

फ्रांस के शासकों / शासनों की सूची

List of Rulers/Governments of France

The Early Kings

Pepin, Mayor of the Palace, 714 A.D.
Charles Martel, Mayor of the Palace, 715 A.D.-741 A.D.
Pepin I, Mayor of the Palace, 741 A.D.
Pepin I, King 751 A.D.-768 A.D.
Charlemagne, King 768 A.D.-814 A.D.
Charlemagne, Emperor 800 A.D.-814 A.D.
Louis the Pious, Emperor 814 A.D. - 840 A.D.

West Francia

Charles the Bold, King 840 A.D. - 877 A.D.
Charles the Bold, Emperor 875 A.D.-877 A.D.
Louis II, King 877 A.D.-879 A.D.
Louis III, King 879 A.D. - 882 A.D.

Carloman, King 882 A.D. - 884 A.D.

Middle Kingdoms

Lothair, Emperor, 840 A.D. - 855 A.D.
Louis (Italy), Emperor 855 A.D.-875 A.D.
Charles (Provence), King 855 A.D.-863 A.D.
Lothair II (Lorraine) King 855 A.D.-869 A.D.

East Francia

Ludwig, King 840 A.D.-876 A.D.
Carloman, King 876 A.D.-880 A.D.
Ludwig, King 876 A.D.-882 A.D.
Charles the Fat, Emperor 876 A.D.-887 A.D.

Capetian Kings

1. Hugh Capet, 987 A.D.-996 A.D.
2. Robert II, 996 A.D.-1031 A.D.
3. Henry I, 1031 A.D.-1060 A.D.
4. Philip I, 1060 A.D. - 1108 A.D.
5. Louis VI, 1108 A.D.-1137 A.D.
6. Louis VII, 1137 A.D.-1180 A.D.
7. Philip II (Augustus), 1180 A.D.-1223 A.D.
8. Louis VIII, 1223 A.D.-1226 A.D.
9. Louis IX, 1226 A.D.-1270 A.D.
10. Philip III, 1270 A.D.-1285 A.D.
11. Philip IV, 1285 A.D.-1314 A.D.
12. Louis X, 1314 A.D.-1316 A.D.
13. Philip V, 1316 A.D.-1322 A.D.
14. Charles IV, 1322 A.D.-1328 A.D.

House of Valois

1. Philip VI, 1328 A.D.-1350 A.D.
2. John, 1350 A.D.-1364 A.D.
3. Charles V, 1364 A.D.-1380 A.D.
4. Charles VI, 1380 A.D.-1422 A.D.
5. Charles VII, 1422 A.D.-1461 A.D.
6. Louis XI, 1461 A.D.-1483 A.D.
7. Charles VIII, 1483 A.D.-1498 A.D.
8. Louis XII, 1498 A.D.-1515 A.D.
9. Francis I, 1515 A.D.-1547 A.D.

10. Henry II, 1547 A.D.-1559 A.D.
11. Francis II, 1559 A.D.-1560 A.D.
12. Charles IX, 1560 A.D.-1574 A.D.
13. Henry III, 1574 A.D.-1589 A.D.

Bourbon Dynasty

1. Henry IV, 1589 A.D.-1610 A.D.
2. Louis XIII, 1610 A.D. - 1643 A.D.
3. Louis XIV, 1643 A.D.-1715 A.D.
4. Louis XV, 1715 A.D.-1774 A.D.
5. Louis XVI, 1774 A.D.-1792 A.D.

Post-Revolution (-1789) France : Its Rulers/Governments :

1. First Republic, 1792 A.D.-1799 A.D.
2. Napoleon Bonaparte, I Consul, 1799 A.D. - 1804 A.D. Napoleon, I, Emperor 1804 A.D.-1814 A.D.
3. Louis XVIII (Bourbon Dynasty) 1814 A.D.-1824 A.D.
4. Charles X (Bourbon Dynasty) 1824 A.D.-1830 A.D.
5. Louis Philippe, 1830 A.D.-1848 A.D.
6. Second Republic, 1848 A.D.-1852 A.D.
7. Napoleon, III, Emperor, 1852 A.D.-1870 A.D.
8. Third Republic, 1870 A.D.-1940 A.D.
9. Petain Regimne, 1940 A.D.-1944 A.D.
10. Provisional Government, 1944 A.D.-1946 A.D.
11. Fourth Republic, 1946 A.D.-1958 A.D.
12. Fifth Republic, 1958 A.D.